

प्रोफेसर पूर्ण सिंह

एक साहित्यिक रेखांकन

नवरत्न कपूर

पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

प्रोफेसर पूर्ण सिंह
एक साहित्यिक रेखांकन

डॉ. नवरत्न कपूर



पब्लिकेशन ब्यूरो
पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला

PROF. PURAN SINGH—EK SAHAYTIK REKHANKAN

by

DR. NAVRATNA KAPOOR
Post-graduate Department of Hindi,
Mahendra (Government) College,
Patiala

1983
प्रथम संस्करण : 1100
मूल्य : 28.00

सरदार गुरबचन सिंह एम. एस-सी., रजिस्ट्रार, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला द्वारा प्रकाशित तथा फुलकियां प्रैस, पटियाला द्वारा मुद्रित ।

अनुग्रह-ज्ञापन

प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह हिन्दी निबन्ध-माला को आधी दर्जन उज्ज्वल विचार-मणियां समर्पित करके कालजयी हो गए। प्रोफ़ेसर साहब की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में मेरी तुच्छ-सी श्रद्धांजलि के रूप में 'प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह : एक साहित्यिक रेखांकन' पुस्तक प्रस्तुत है। इसकी मूल प्रेरणा मेरे गुरुदेव डॉ.भगत सिंह जी (भूतपूर्व उप-कुलपति: पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला) की स्नेह-वत्सलता में निहित है। शब्द-रहित मौन-अभिव्यक्ति सहित मैं इनके समक्ष सम्मानपूर्वक शिरोनत हूं।

"प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह : एक साहित्यिक रेखांकन" की आद्याक्षरी ही मेरे लक्ष्य की बोधक है। पूर्ण सिंह जी आरम्भ से अन्त तक 'एक-सा रहे'। इसी तथ्य की ज्योति में मैंने इनके साहित्य का जीवन के संदर्भ में 'एक्सरे' करने का लघु-सा प्रयास किया है।

पारिवारिक उत्तरदायित्वों में घिसते-पिसते, वैज्ञानिक खोजों में डूबते-उतराते पूर्ण सिंह साहित्य-साधना करते समय राजनीति से अलग-थलग से ही रहे। प्रोफ़ेसर साहब वेदांत-मार्ग को त्यागकर गुरमति की ओर क्यों बढ़े? रुण्ड-मुण्ड साधु के स्थान पर गुर-सिक्ख क्यों बने? इस प्रसंग को लेकर इनके व्यक्तित्व को एक ख़ास रंग के चश्मे से निरीक्षण-परीक्षण की प्रवृत्ति निरन्तर चली आ रही है। यद्यपि इतिहास इस दिशा में चुप्पी साधे है, तथापि मैंने इस मधावी साहित्यकार को लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, अरविन्द घोष और लाला हरदयाल की सफ़ में बैठाकर इनके चरित्र का मूल्यांकन करने की विनम्र-सी चेष्टा की है। स्वाधीनता सेनानियों के व्यक्तिगत जीवन की धूमिल गाथाओं की टूटी कड़ियाँ जोड़कर मैंने पूर्ण सिंह जी की साहित्यिक कृतियों एवं समसामयिक परिस्थितियों से सामंजस्य-मात्र बैठा दिया है।

मेरी दृष्टि में आप ग़दर पार्टी के संस्थापक लाला हरदयाल के

साथ शरीरांत तक जुड़े रहे। लाला जी के गुरु श्री अमीरचन्द के कारण प्रोफ़ेसर साहब को कुछ मानसिक क्लेश भी झेलने पड़े। शायद इसमें दोनों महानुभावों का कोई हाथ न था, केवल पुलिस के हथकण्डे थे। इसीलिए आपको अत्यन्त विश्वसनीय मानकर हरदयाल जी ने आपसे नैतिक और साहित्यिक योगदान प्राप्त करने में कदापि संकोच नहीं किया। प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह अपने समकालीन राजनीतिज्ञों की भांति खम ठोंककर आज़ादी की लड़ाई में नहीं कूदे। अन्य आज़ादी के परवानों की तरह इन्होंने न तो अपना घर फूंककर तमाशा देखा और न ही दूसरों का जलता देखकर हाथ सेंकने की कोशिश की। 'अपनी-अपनी ढपली अपना-अपना राग' के वातावरण में भी इन्होंने डटकर क्रांतिकारियों को संरक्षण प्रदान किया। गांधी जी से आप सदा कटे-कटे रहे, फलतः गुरद्वारा सुधार आन्दोलन के समय प्रोफ़ेसर साहब की सहानुभूति 'बब्बर अकाली लहर' के प्रति रही, जिसके अधिकांश कार्यकर्ता ग़दर पार्टी के ही पुराने पंजाबी महानुभाव थे।

एक सजग साहित्यकार प्रो. पूर्ण सिंह की यह अभिरुचि इनके दृष्टिकोण को एकांगी नहीं बनाती। आपका समूचा साहित्य मानवीयता का उद्घोष करता है। इन्होंने प्रयोगधर्मिता का सहारा लेकर आदर्शारूढ़ यथार्थ की स्थापना ही अपनी कृतियों में की है। लोकविश्रुत ऐतिहासिक युगपुरुषों के व्यक्तित्व के अनुरूप प्रतीक अवश्य बदलते रहे हैं, किन्तु समकालीन व्यक्तियों एवं संस्थाओं के प्रपंच के प्रति कटाक्षों की कटुता में कमी नहीं आने पाई। इस प्रकार पूर्ण सिंह सचमुच पूर्ण साहसी बनकर ही उभरे हैं। बचपन से योगी बनने के उत्सुक प्रो. पूर्ण सिंह का जीवन ध्येय रहा—कर्म में विनयपूर्वक निष्ठा से 'योग' को 'विनियोग' में परिणत करना। तभी इनकी कृतियों में गृहस्थ जीवन की सुख-शांति की भूमि में पनपती हुई मानवीयता की बेल सतत पल्लवित एवं पुष्पित हुई है।

मेरे इस कार्य में प्रो. कृपाल सिंह कसेल की सहायता अविस्मरणीय है। कसेल साहब ने अपने निजी पुस्तकालय में सुरक्षित पाण्डुलिपियों के आलोड़न-विलोड़न की आज्ञा देकर मुझे इधर-उधर की भटकन से बचा दिया। पुस्तक की रूपरेखा तैयार करते समय पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के पंजाबी योजना एवं विकास विभाग के निदेशक सरदार

अमरजीत सिंह ढिल्लों यदि मेरा ध्यान 'पूर्ण सिंह की पटियाला यात्रा' की ओर विशेषरूपेण आकृष्ट न करते तो सम्भवतः मेरा यह सारा कार्य अधूरा ही रह जाता। ढिल्लों साहब द्वारा संकलित 'साहित्त सागर प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ : इक शरधांजली' शीर्षक पंजाबी पुस्तक के शोध पत्रों के विद्वान लेखकों की साधना ने मेरे मार्ग को काफ़ी प्रशस्त बना दिया है।

साठ-सत्तर वर्ष पुराने पंजाब की परिस्थितियों से पूर्ण सिंह जी के जीवन एवं साहित्य की समरसता लाने में मेरी क्षुद्र बुद्धि बहुधा कुंठित होती रही है। एतदर्थ पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के डॉ. प्रेम प्रकाश सिंह (अध्यक्ष, पंजाबी विभाग), डॉ. रत्न सिंह जग्गी (अध्यक्ष, पंजाबी साहित्य अध्ययन विभाग), सरदार हज़ारा सिंह (प्रकाशन तथा विक्रय अधिकारी) तथा महेन्द्रा कॉलेज, पटियाला के मेरे सहयोगीजन सर्वश्री हरमंदर सिंह, प्रितपाल सिंह, इन्द्रनाथ चावला, मनमोहन सिंह, भगवान सिंह एवं पंजाब भाषा विभाग के सहायक निदेशक श्री प्रेम भूषण गोयल के साथ विचार-विमर्श से मेरी अनेक गुत्थियां सुलझती गई हैं। अलभ्य पुस्तकें जुटाने के लिए सर्वश्री सुखदेव सिंह सेखों, केवल कृष्ण शर्मा, राजेन्द्र वर्मा, हरनामसिंह, लालचन्द शर्मा, महेन्द्रपाल, बहिन सतवंत कौर और पण्डित श्रीराम के अतिरिक्त पंजाबी विश्वविद्यालय के शोध सहायक श्री सतीश वर्मा सदैव मेरे लिए अनथक परिश्रम करते रहे हैं।

इन सभी महानुभावों के अत्यन्त स्नेह के लिए मैं हृदय से आभार प्रकट करता हूं।

विनीत
नवरत्न कपूर

स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
महेन्द्रा (गवर्मेण्ट) कॉलेज,
पटियाला।

अनुक्रम

जीवन झलक

शेष स्मृतियां : "जीवेत् शरदः शतम्"—सूक्ति द्वारा भारतीय ऋषियों ने सौ वर्ष तक जीवन-यापन की अभिलाषा प्रकट की है। प्रकृति के पंचभूतों से निर्मित मानव शरीर की जीवन यात्रा को हमारे प्राचीन ऋषियों ने चार आश्रमों में व्यवस्थित किया। मनुष्य की चरम गति के प्रत्येक चरण को बराबर-बराबर पच्चीस वर्ष की अवधि में विभाजित करके क्रमशः ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वाणप्रस्थ और संन्यास नामक, मानव की इहलौकिक लीला के चार पाद निर्धारित किए गए।

कालगति को मापने के लिए भारतीय ज्योतिषज्ञों द्वारा कल्प, मन्वन्तरों, युगों, संवत्सरों (वर्ष), महीनों, पक्षों और दिनों की अवधारणा की गई। सूर्य की गति को लक्षित करके 'सौर वर्ष' और चन्द्रमा की चाल को ध्यान में रखकर 'चांद्रवर्ष' की स्थापना की गई। चान्द्र वर्ष के अनुसार महीने के दो पाख—कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष—निश्चित किए गए। पहले पखवाड़े की इतिश्री को 'अमावस्या' और दूसरे पंद्रहवाड़े की परिसमाप्ति को 'पूर्णिमा' की संज्ञा प्रदान की गई। मानो अन्तर्यामी अकालपुरुष की महिमा की तुलना में मनुष्य-जीवन की क्षणभंगुरता के कारण समय का लघुतर सीमांकन किया गया हो।

पंजाबी, हिन्दी और अंग्रेज़ी के मेधावी विद्वान, गहन चिंतक एवं मानवतावाद के पोषक प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'गृहस्थाश्रम' को मानव जीवन की धुरी माना। मानव के इसी स्वाभाविक धर्म को केन्द्र बिन्दु मानकर विश्व संस्कृतियों और आध्यात्मिक दर्शनों के समन्वय के साधन जुटाते हुए पूर्ण सिंह ने नामानुरूप गुणशील 'पूर्ण-युग पुरुष' बनने का साहस दिखाया। किन्तु वाह री विधि की विडंबना! सन् 1881 ईस्वी में हम एक ओर 17 फरवरी को इनकी जन्म शताब्दी के समारोहों का आयोजन करने जा रहे हैं; वहाँ दूसरी ओर 31 मार्च को उनकी विश्रामधाम-यात्रा की अर्द्धशताब्दी भी साहित्य रसिकों के श्रद्धा-सुमनों

का मुंह जोह रही है। संत सिपाही के कर्मठ शिष्य 'कलम के सिपाही' बनकर नफ़ी, जमा, गुना, भाग की रत्ती भर गुंजायश नहीं छोड़ते। वित्त वर्ष के अन्त पर जीवन–खाते का ख़ूब हिसाब-किताब ! 'लेन' में 'फ़क़ीर' और 'देन' में 'शाहदिल' ![1] वाह रे, दरवेश ! सरदार पूर्ण सिंह :

देदा दे लैदे थकि पाहि।
जुगा जुगंतरि खाही खाहि ॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु।
नानक, विगसै वेपरवाहु ॥
साचा साहिबु, साचु नाइ, भाखिआ भाउ अपारु।
आखहि मंगहि देहि देहि, दाति करे दातारु ॥

(जपु जी साहिब, पउड़ी 3–4)

'वसुधैव कुटुम्बकम्' के प्रतिष्ठापक और वित्तैषणा के प्रति एकदम विरक्त, प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के श्रीमती मायादेवी के साथ जन्म जन्मान्तर के प्रेमपूर्ण जूड़ी संयोग, कर्मठ गृहस्थ जीवन तथा अंततः जोत से जोत मिलन की प्रसादान्त गाथा के रहस्य को जगन्नियंता ही

1(i) I read my Bible afterwards. But I knew long before that when the guests come, we had to take up our brass vessels full of water & wash the feet of our guests. ....We paid them the reverence due to Gods. Their arrival gave us joy & their going away made our eyes full of tears.
—Puran Singh : *On Paths of Life*, page 43.

(ii) इस बात की चिंता नहीं थे करते कि कल कहाँ से आएगा। रुपिया जमा करने के बारे में कहते थे, जैसे गंदगी जमा करना है, वैसे रुपिया जमा करना है। ... ... गिनतियां गिनने वाले रुपये को कैसे लुटा सकते हैं। ... ... कभी-कभी धूप की ओर इशारा करके कहते, "देख माया ! धूप की लूट देखो। गुफाओं-कंदराओं में आपा लुटा देती है। इस लिए हर प्रकार लूट बनाए रखो :

गर मरद हैं तू आशिक़
कौड़ी न रख कफ़न को।"

—डॉ महिन्दर सिंघ रंधावा ; पूरनसिंघ जीवनी ते कविता।
[जीवनी : पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादाँ, माइआ देवी पूरन सिंघ], पृष्ठ 77

जानता है। गुरुवाणी के अनुसार :—

(क) सबदि मरै सो मुआ जापै ॥ कालु न जापै दुखु न संतापै
जोति विचि मिलि जोति समाणी सुणि मन सचि समावणिआ ॥
(माझ म. 3, पन्ना 111, तुक 16)

(ख) तेरा कीता जातो नाहीं मैनो जोगु कीतोई ॥
मैं निरगुणिआरे को गुणु नाही आपे तरसु पइ ओई ॥

(मुंदावाणी म. 5,पन्ना1429 तुक 10)

प्रकृति के चिरतन सत्य को विश्लेषण–विह्वल वैज्ञानिक भी मौन स्वीकृति प्रदान करते हैं। इसके शाश्वत यथार्थ के समक्ष नतमस्तक होकर कविगण प्रकृति और मानव की एकरूपता स्थापित करने की काल्पनिक उड़ाने भरते हैं। दार्शनिक भी वस्तुस्थिति को समझाने के लिए आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक नामक त्रिगुणमयी शब्दावलि गढ़ता है।

भाव जगत् को मोम की नाक की तरह मोड़ने की चेष्टाएं जब सर्वत्र हो रही हों तो प्रकृति की चन्द्रगति के पूर्वार्द्ध में आने वाले अंधकार के अंतराल को 'अमावस्या' की संज्ञा देकर भारतीय चिंतन में वर्तमान सत्यं, शिवं, सुदरं की मंजुल भावना की अवमानता कैसे की जा सकती है ? 'पूर्णिमा' तो सोलह कलापूर्ण चंद्रमा की स्पष्ट अभिव्यक्ति है ही। सोमवती अमावस्या के नाम से भारतीय जीवन की सुखांत दृष्टि को क्यों न चरितार्थ किया जाए।

'ब्रह्मकांति' की पूर्णिमा से सम्पन्न, श्रमगौरव-प्रतिपादित गृहस्थी के सुख का 'कुंभ' लेकर उपस्थित पूर्णसिंह की दिवंगत आत्मा—नीलाम्बरी जामा पहन कर पांच दशकों के बाद पुण्यस्मृतियों की सोमवती अमावस्या के रूप में—अवतरित हो रही है। मानो सत्य, रज और तम स्वरूप त्रिवेणी के संगम पर 'नयनों की गंगा' में स्नान करके पवित्र होने के लिए आमंत्रित कर रही हो। ऐसा प्रतीत होता है जैसे सांसारिकों की दृष्टि में लुप्त 'सरस्वती' स्वरलहरियों में गूंजती वीणावादिनी बनकर आत्म में अनात्म, पुरुष में स्त्री और स्त्री में पुरुष की एकलीनता को हृदयंगम करवाने में तत्पर है, यथा:

मैं तां निरोल रूह हां सरणदेही[2]
मैं हां हीरा जिहड़ा कदी न टुट्टदा[3]
मैं कुल हनेरे चीरदो[4]
'इह मरद है', 'इह तीमी' [5]
इह की कमीना हनेरा है दुवल्ली दा[6]
मैं आई हनेरा सभ भज्जिआ[7]
मैं दोवें मरद ते तीमीं हाँ
तोमीं विच मैं मरद पूरा
मरद विच मैं तीमी पूरी हां
मैं हां दोवां विच नंगी—'इनसानियत'[8]
मैं हां दोहां विच 'इक—रब्बानीयत'[9]
झल्ले सारे देखरण नांह[10]
मैं सदा नंगा सच हां
अग्गे ब्रह्म दे देश वी,[11]
रूह ही नंगा जाउंदा
जारणन नांह[12], मैं मौत दी दीवार दे पिच्छे दी सवेर हां[13]
मैं कल्ह आरण वाली हाँ, अज्ज दा घुंड लाह आइ हाँ ।[14]

(गारगी—खुल्हे मैदान)

---

2. मैं तो शरीर मुक्त विशुद्ध जीवात्मा हूं ;
3. मैं तो कभी न टूटने वाला हीरा हूं ;
4. मैं सभी अंधेरों (अज्ञानों) को चीरने वाली हूं ;
5. यह पुरुष है यह स्त्री ;
6. द्वैत भाव (उभयलिंगा) ;
7. सारा अंधकार (अज्ञान) भाग गया ;
8. दोनों में नग्न मानवीयता (Naked Humanity) ;
9. अभाज्य ईश्वरीय रूप ;
10 मूर्खों का सारा संसार देखता नहीं ;
11. आगे ब्रह्मदेश मे भी ;
12. अपरिचित हैं ;
13, मैं मृत्यु की दीवार के पीछे (छिपी हुई) सुबह हूँ ।
14. मैं कल लौटने वाली हूं, आज का घूंघट उतार आई हूं ।

ब्रह्मवेत्ता प्रो. पूर्ण सिंह ने सभी मानव प्राणियों को जीव के आवागमन संबंधी नग्न-सत्य (Naked Truth)—अर्थात जीवन की वस्तुस्थिति—को बड़े आशामयी ढंग से हृदयंगम करवा दिया है।

वंश-परिचय : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के पूर्वज ज़िला रावलपिंडी की तहसील कहुटा के गांव 'डेरा खालसा' (वर्तमान पाकिस्तान) के मूल निवासी थे। प्रोफ़ेसर साहब का ननिहाल भी इसी गांव में था। श्रीमती माया देवी का कथन है कि यह गांव पूर्ण सिंह जी के ननिहाल के किसी पूर्वज को किसी अच्छे कारनामे के उपलक्ष्य में पुरस्कार रूप मिला था।[15] अंग्रेज़ी सरकार अपने सैनिकों को उनकी बहादुरी के उपलक्ष्य में प्रायः उनके अवकाश प्राप्ति के समय इस प्रकार की जागीरें दिया करती थी।[16] आश्चर्य नहीं कि किसी युद्ध में वीरता दिखाने के फलस्वरूप उस अज्ञातनामा बुज़ुर्ग को एक बड़ा भूमिखंड इनाम में मिला हो। उस वयोवृद्ध के परिश्रम से उपजाऊ बने उस भूक्षेत्र के आस-पास किसान मज़दूरों के आवास के कारण बस्ती का रूप धारण कर लेने पर 'डेरा खालसा' नामक गांव सरकारी काग़ज़ों में उभर आया हो।

पूर्ण सिंह जी के दादा और ननिहाल दोनों ही वंशों का संबन्ध मलिक गोत्र से था। आजकल इन्हें आहलुवालिया कहा जाता है। श्री गुरु गोविन्द सिंह के प्रभावाधीन प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के पूर्वज सिक्ख बन गए थे। वे समाज में अत्यन्त प्रतिष्ठित थे।

प्रोफ़ेसर साहब के बाबा का नाम मलिक ज्वाला सिंह था। वे

---

15. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ—जीवनी ते कविता [माइआ देवी पूरन सिंघ का लेख—जीवनी : पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादाँ], (पृष्ठ 80)
16. The prosperity ushered in by the development of the canal colonies and the preference shown towards the Sikhs in recruitment to the Imperial army had an important bearing on the future and the caste complex of the community........ With new avenues of employment, many belonging to these castes abandoned their hereditary callings to become soldiers as farmers—and began to lay claim to equal status with other soldiers & farmers.
—Khushwant Singh : *A History of the Sikhs*, Vol. II, Page 119-20.

छरहरे शरीर के सात फुट लम्बे क़द के एक बलिष्ठ व्यक्ति थे। वे घर के बुने हुए कपड़े का बना हुग्रा चौड़े पहुँचों वाला कुर्ता पहनते थे। दोनों ग्रार लोहे से मढ़े हुए दंडधारी उन महानुभाव को देखकर डर-सा लगता था। वे छोटी सी सफ़ेद पगड़ी धारण किए रहते थे। उनकी लंबी सफ़ेद दाढ़ी एवं चमकते-दमकते चेहरे से एक स्वाभिमानी सिक्ख नेता की ग्राभा झलकती थी।[17]

इस प्रकार पूर्ण सिंह जी को धन एवं ऐश्वर्य की अपेक्षा सुंदरता एवं नेतृत्व की ग्रतिशयता बपौती में मिली थी। भरी जवानी में इनके सौंदर्य एवं ग्रद्भुत व्यक्तित्व की प्रशंसा डॉ. काशी प्रशाद जायसवाल ने इन शब्दों में की है :—

"वेदांती पूर्ण सिंह का विचित्र व्यक्तित्व था। मैंने पहले पहल उनसे उसी रूप में परिचय प्राप्त किया। एक निर्दोष, इकहरा शरीर, साफ़ छटी हुई मूछ-दाढ़ी, शांत ग्रौर ग्रसाधारण सौंदर्य, दिव्य मुखमंडल था, जिस पर योग की ज्योति जगमगाया करती थी। नवयुवक पूर्ण की वाणी में बिजली भरी थी। जब वे बात करते थे तो सब को वश में कर लेते थे।........वे ग्रपने ग्रंतर में ही परब्रह्म को पाने का यत्न

---

17. Behind his poetry there loom up the impressive, unusal forms of Sikh warriors and Sikh Gurus.........and Sardar like Malek Jawala Singh. It is to Malek's grandson, the translator of this book that we owe a sketch of that Sirdar's imposing figure. He was about seven feet tall, a slim wiry figure that always carried a huge bamboo staff shod with iron rings at both ends; as he passed, he inspired awe in every one who saw him. His apparel was in the style of old Sikhs. A small white turban was bound about his head, covering his long Sikh tresses, he wore, generally two wide sleeved kurtas of home spun tide by cords of the same cloth—one thicker and wider worn over one that was narrower and shorter. His face seemed fairly to glow with the fire of his Sikh ancestory. His long white beard & his deep set black eyes, his smiling profile, had all the majesty & dignity of the characteristic sikh leader.

—Puran Singh : *Nargas* (Foreword by Ernst Rhys), Page X.

करते थे। जो कोई भी पूर्ण सिंह की बातें सुनता था उसे ऐसा ज्ञान होता था, मानो कोई गुरु बात कर रहा हो...... मुझे उनके व्याख्यान से यह बात समझ में आ गई कि किस प्रकार महान् लोग जनता से कहते हैं—'मेरा अनुसरण करो' और किस प्रकार जनता उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करती है।''[18]

भ्रमणशीलता : पूर्ण सिंह जी के पिता सरदार करतार सिंह माल विभाग में कानूनगो थे। फलतः बदलियों के कारण यह परिवार एक जगह टिक कर नहीं रह सका। बड़ी बेटी लाजां के बाद पूर्णसिंह ही परमा देवी के पहले पुत्र थे।[19] 17 फ़रवरी, सन् 1881 को इस बेटे के जन्म के समय यह परिवार एबटाबाद (ज़िले का मुख्य स्थान) के समीप सलहड (तत्कालीन भारत का उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त; अब पाकिस्तान) में निवास करता था।[20]

पूर्ण सिंह का बचपन अधिकांशतः ननिहाल में बीता। मामा जय सिंह मलिक को भांजे पूर्ण से अगाध स्नेह था। जय सिंह साधु-सन्तों की संगति में रहते और पूर्ण सिंह भी परछाईं की भाँति मामा का पीछा न छोड़ते थे। कुंभी कुमिआली नामक दो पहाड़ियों के मध्य में एक नाला बहता था। छोटी-छोटी नहरों के कारण यह सारा इलाक़ा बहुत उर्वर था। मेवों और फलों के पौष्टिक आहार की भूमि, पंजाब के पोठोहारी[21] ग्राम डेरा खालसा में प्राप्त होने वाले निश्छल स्नेह ने

---

18. प्रभात शास्त्री : सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबन्ध, पृष्ठ 18
19. पूर्णसिंह की गंगा नामक छोटी बहन के अतिरिक्त दो भाई वज़ीर सिंह और रामसिंह भी उत्पन्न हुए। ये अपने पिता को 'लाला जी', माता को 'बेजी' और दादा को 'बापू जी' की संज्ञाओं से संबोधित करते थे।
    —डा. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता, पृष्ठ 46
20. Puran Singh: *The Spirit of Oriental Poetry* (Foreword Portion, Page IV by M.S. Randhawa.)
21. भाई कान्हसिंह जी नाभा अपने 'महान कोश' में पोठोहार की हदबंदी संक्षेप में इस प्रकार करते हैं...........' जेहलम और सिंध नदी का मध्यवर्ती क्षेत्र, जिसका अधिकाँश भाग ज़िला रावलपिंडी में है।'......

(Contd. on page 8)

बालक पूर्ण सिंह के हृदय में अतीत की गरिमा का सौंदर्याभास, विभिन्न संस्कृतियों के मिलन पर आधारित विश्वजनीनता का बीजांकुर किया :

The Pothohar, the mother-country of both of my parents attracted me. There were in those days kith & kin whose main business was as it seems to me, to receive us, love us and drink and dine with us.........the little human touches, embraces and warmths and tears and smiles and sharing of joys and sorrows made life an interesting religion. Even today the Margalla Pass, the holy Nanak Fountain, Panjasahib, the bleak dry hill of vali Qandhar and that portion of Margalla of the great Trunk Road running from Calcutta to Peshawar, Connecting India with Western Asia, inspires me..........their magic effect is a rejuvenation for me every time.

Here lies Taxila, the great University to which came the whole of the East & West to learn the spirituality of the great, truly great Buddhist humanity........And there on this spot I still think the East as East ceases and the West as West ceases and both mingle in the rectified humanity, in one great civilized, truly civilized humanity, in an everlasting fellowship of the love of man. ....I still fancy this is the spot where the Divinity of Guru Nanak would mingle

---

Contd. from pre-page)

कई लेखक 'पोठोहार' को 'पुठवारा' भी लिखते हैं। भाई कान्ह सिंह जी ने अपने कोश में इसको 'पोठोहार लिखा है, क्योंकि पोठोहार का इलाक़ा ऊंचा नीचा है और इस प्रकार के ऊचे-नीचे इलाक़े को 'पठार' कहा जाता है। इसलिए यह भी संभव है कि पोठोहार 'शब्द' 'पुठवार' से ही व्युत्पन्न हो। यदि हम इस शब्द की निरुक्ति करें तो (पोठोहार=पीठ=पुठ्ठ+ओ+हार) होगा—जिसका अर्थ है पुठ्ठ वाला। पशु की पुठ्ठ (पृष्ठ=पीठ का पंजाबी रूप) आस पास के शेष भाग से कुछ अधिक ऊंची होती है। स्व. प्रिंसिपल तेजासिंह जी ने इस इलाक़े की धरती को समुद्र तट से 1994 फुट ऊंचा बताया है, जबकि जेहलम की धरती समुद्री तल से केवल 765 फुट ऊंची है। इस से स्पष्ट है कि पोठोहार-क्षेत्र अपने आस-पास के क्षेत्रों से ऊंचा है और इसी ऊंचाई के कारण इस भौगोलिक क्षेत्र का नाम 'पुठाहार' अथवा 'पुठवार' से 'पोठोहार' पड़ गया।

—पोठोहारी शब्द कोश, भूमिका पृष्ठ 'अ'।

with the great humanity of Buddha and here would assemble Heaven. The international Universities would people with soul—culture."[22]

कुछ वर्षों के बाद पिता के स्थानांतरण के कारण पूर्ण सिंह का परिवार हवेलियाँ ग्राम में रहने लगा। यहीं पर इन्होंने सन् 1886-1890 तक आरम्भ में मस्जिद के मौलवी से उर्दू का ज्ञान प्राप्त किया। तदनन्तर इन्हें गांव की धर्मशाला में भाई बेला सिंह से गुरुमुखी सीखने के लिए भेजा गया। सन् 1890 से 1895 तक इन्होंने हरिपुर के म्यूनिसिपल बोर्ड स्कूल में शिक्षा प्राप्त करके फ़ारसी विषय के साथ मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। निम्न मध्य श्रेणी के परिवार के परस्पर सहयोग भरे जीवन, अपने सौंदर्य तथा पुष्प-प्रेम का परिचय लेखक ने इस प्रकार दिया है :—

"Haripur is a British Tehsil in the Hazara District, the head-quarters of a revenue-collecting assistant, the Tehsildar ....We lived in a mud house with a joint courtyard where many other families lived together. This living together was essential as a safeguard against thieves and dacoits, especially when my father for most days was out on tour. Our mother cooked for us and we children sat round her heath-fire chatting nonsense and partaking her gifts and laughing at nothing. We had no servant, the common servant a *mehra*—the Hindu water carrier filled our pitchers with fresh well water & came twice a day to scrub our brass and white metal Hindu Vessels.

The cool shades of the gardens and the flowing canals of Haripur, a little poor man's paradise in hot summer. In this illusion town of gardens I myself was a little garden of good features & lively colours.

I was tempted by boys older than myself to go out roaming with them as they found my company pleasant, and they tempted me out by the merest trifles. They just promised me a boquet of roses, the rose is my flower, though I am exclusively hers. So much was my fondness for roses that I wandered gladly for them from garden to garden. And I came home with them almost like a

---

22. Puran Singh : *On Paths of Life*, Page 5-6.

victor and ornamented my little mud room with my roses. I was made happy when I saw my roses smiling at me. They looked so entrancingly at me from the little brass bowls, the poor accommodation that I could give them.[23]

परिवार के कठिन जीवन में भी पूर्णसिंह आगे बढ़ते ही गए। इन्होंने सन् 1897 में रावलपिंडी के मिशन हाई स्कूल से पंजाब विश्वविद्यालय की मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। अंग्रेज़ी, गणित, संस्कृत और रसायन विषयों के साथ डी. ए. वी. (दयानंद एंग्लो वैदिक) कॉलेज, लाहौर से वहीं पर स्थित पंजाब विश्वविद्यालय की एफ. ए. परीक्षा में सफलता प्राप्त कर ली। गांव से आए निर्धन, किशोर पूर्ण सिंह को लाहौर वासियों के जीवन की कृत्रिमता के कारण नागरिक तड़क-भड़क एकदम नहीं भायी। अपनी आत्मकथा में साहित्यकार लिखता है :

The Hindu Bride in her beautiful apparel & decoration was the only piece of relief against the humdrum dread of the daily life of Lahore........In the Lahore streets, however, one rarely met young women. In a night it seemed they become old and bent. Poor Anarkali's tomb did cast its shadow on Lahore, and one almost felt that every Lahore-husband was a little Akbar and the women of Lahore were buried alive in the high walls of Lahore for one stray furtive glance of life.[24]

ये अभी लाहौर के डी. ए. वी. कॉलेज में बी. ए. के छात्र ही थे कि इनके दूर के रिश्ते के भाई भक्त गोकल चंद ने—जो कि पंजाब विश्वविद्यालय से एम. ए. पास और पूर्ण सिंह जी के हाई स्कूल में अध्यापक थे—मलिक बिरादरी के दो लड़कों को जापान भेजने का निश्चय किया।[25] अभ्यर्थियों की प्रतिभा-परीक्षण के लिए 'एकता के

23. Puran Singh : *On Paths of Life*, Page 14-15.
24. Ibid. Page 31.
25. (क) Ibid. Page 48
(ख) डा० (भाई) जोध सिंह ने छात्रवृत्ति देने वाले सज्जन का नाम राय बहादुर बूटा सिंह बताया है। पूर्णसिंह इन्हीं राय बहादुर के कहने पर ढाई मील दूर की दौड़ लगाकर प्रतियोगिता स्थल पर उनकी ऐनक लाए थे। संभव है गुरुद्वारे में उपस्थित इस चयन मंडल के बूटा सिंह जी भी सदस्य रहे हों, किन्तु इतना अवश्य है कि उन दिनों पजाब में हिन्दू-सिक्ख का कोई भेदभाव नहीं था।

गुणों' पर भाषण करने के लिए कहा गया। पूर्ण सिंह जी की बारी आने पर इन्होंने मेज से फूलों का गुलदस्ता उठाकर गुलाब के खिले हुए फूलों की ओर इशारा करते हुए कहा—'देखिए फूल किस प्रकार जुड़े हुए हैं। यदि ये अलग-अगल होते तो पंखुड़ियों में बंट जाते।" इस प्रकार के उदाहरण देकर इन्होंने एक घंटा व्याख्यान किया। फलतः पूर्ण सिंह जी और इनसे अवस्था में एक बड़े लड़के दामोदर सिंह को छात्रवृत्ति के लिए चुन लिया गया।

भारत से जाते समय इनका जहाज़ हांगकांग रुका। वहां पर मेमार और बढ़ई का काम करने वाले सिक्खों ने इन दोनों पंजाबी किशोरों का राजकुमारों से कहीं बढ़कर स्वागत किया। वहां के गुरुद्वारे में पूर्ण सिंह जी ने भाषण भी किया। टोकियो पहुंच कर इन्होंने अप्रैल से सितंबर, 1900 तक जर्मन और जापानी भाषाएं सीखीं। 28 सितंबर को टोकियो की शाही यूनिवर्सिटी में भेषज-रसायन (Pharmaceutical Chemistry) के विशिष्ट छात्रों के रूप में इन दोनों सिक्ख किशोरों का पंजीकरण हुआ। पूरे तीन वर्ष के बाद पूर्ण सिंह जी ने 28 सितंबर, 1903 को इसी विषय में उच्चतम उपाधि प्राप्त कर ली।

जापान-यात्रा में पूर्ण सिंह जी को अनेक विचित्र अनुभव हुए। सितंबर 1901 से दिसंबर, 1902 तक इन्होंने योकोहामा की यात्रा की। यहीं ओरियेण्टल एसोसिएशन के सदस्य बनकर इन्होंने भारत की स्वतंत्रता के विषय में वक्तृताएं दीं। सन् 1902 की जनवरी-फरवरी में इन्हें 'टाइफाइड' ज्वर हो गया। जापानी डॉक्टरों ने इनके मित्र दामोदर सिंह की सम्मति से इनके केश काट दिए। ओरियेंटल एसोसिएशन (ऑफ दि पेट्रिऑट्स आफ़ एशिया) के तत्वाधान में इनकी भेंट जापान के प्रसिद्ध कलाकार ओकाकुरा के 'बिजितसुएन' नामक कलाशाला (Bijitsuen—School of Art) में जापानी कला-नमूनों को सीखने के लिए आई हुई स्वामी विवेकानंद की शिष्या कुमारी मैक्लॉइड, एक रूसी सुंदरी सकेरसवस्की तथा कुछेक अन्य अमेरिकन स्त्रियों से हुई। जापानी चाय, जापानियों के कला कौशल, पुष्पप्रेम, जापानी अधिकारियों के सभ्य व्यवहार[26] और महात्मा बुद्ध की दया, सहिष्णुता एवं सौजन्य की सजीव

26. Our steamer after leaving Hongkong sailed straight to Moji...
Contd.

प्रतिमाओं ने अपने भरपूर ममत्व से पूर्ण सिंह के हृदय पर चुंबकीय प्रभाव डाला। फलतः इन्होंने बौद्ध बनने की मनोरम गाथा का विवरण इस प्रकार दिया है :—

I learnt my Buddhism from the Japanese women, the wives and daughters of my Japanese friends like Messers Hirai, Hara, Yuasa, Kawakami Watanabe, Sakurai and others. They were bodiless angles. And I can now remember them only as life givers with golden pitchers on their shoulders pouring the water of life down from the rivers. I still see before my vision Mrs. Hirai as the smiling statute of the supreme philosophic Buddhist sadness......... Truly I have never seen such unconscious kindness, not even in my mother. Every Japanese woman with whom I came into contact had a halo of holiness round her person and she diffused this light whenever she stood or sat[27]."

जापान में ही डॉ. ताकाकुत्सु, सर्वश्री सकुर, हीराई, तानाका, यामगाटा मुराई होण्डा, युआसा तथा कुछ अन्य मित्रों की सहायता से पूर्ण सिंह जी एक 'इण्डो–जैपेनीज क्लब' बनाने में सफल हुए। इन्हें ही इसका मंत्री नियुक्त किया गया। क्लब की ओर से भारतीय अतिथियों का स्वागत किया जाता था और जापान में अध्ययनशील भारतीय

Continued from previous page

It was for the first time we, young Indians, understood what a truly sympathetic Government meant. How soothing was the treatment accorded to us by the Japanese Health officer as contrasted with the irresponsible administration in India...... Here at Moji we understood the literal meaning of public service...... All passengers then assembled in a common room where we had the first sip of that delightful beverage, Japanese tea, on which Okakura has written a new gospel (The Book of Tea by Okakura Kakuzo). In that aromatic association with the Japanese officers of having a cup of holy companionship I was learning the (new) alphabet of a wholly new culture and art of social romanticism—never seen in the spiritual form—Puran Singh : *On Paths of Life*, Page 85-86.

27. Ibid., Page 131.

विद्यार्थियों के विकास के संबंध में चर्चाएं होती थीं। स्वामी रामतीर्थ से प्रथम भेंट और 'बौद्ध दीक्षांत-समारोह' के अवसर पर की गई ट्राम यात्रा के दौरान एक पंजाबी संन्यासी का जिज्ञासापूर्ण वर्णन इनकी आत्मकथा में इस प्रकार मिलता है :–

"It was here that I was one day surprised by the visit of an angelic Indian Monk, whose face I loved at first sight but whose name I knew not. But as he entered, his presence was resonant with song : his very flesh sounded like a flowing stream. There was a sweet divine *murmur* round him.... Where he sat or slept, the murmurs were still audible.

"I have come to seek you. Your name was on my lips on deck of the steamer. I was singing of the Infinite. And you are the Infinite." This is how he accosted me. I felt like a woman agitated with passion for a strange great man.

In a tram-car, I sat on a lench opposite to the orange-robed monk. But I did not look at him. I threw my head against the pane and began *dying* in the sound of "O—O—O—mum, OO, You, Sum—or OIM," as his very presence recited it. I *died* all the way in it. When the destination came the conductor touched me. I got down & so did Swami Rama Tirath of the Panjab—this was his name."[28]

---

28. (क) Puran Singh : *On Paths of Life*, Page 111-112.

(ख) प्रो. पूर्ण सिंह ने इस वक्तव्य के अंग्रेज़ी शब्द Murmur (बुड़बड़ाना) के समध्वनि पंजाबी शब्द 'मर' का बड़ा सुन्दर अंग्रेज़ीकरण dying और died के अर्थ में किया है। किसी की मोहिनी मूरत पर मस्त होकर पंजाबी लोग लाक्षणिक भाषा में कह देते हैं—'ओ सोहणिआ, मार सुट्टिया' (ओ सुन्दर व्यक्ति ! तुमने तो मार ही डाला=पूरी तरह मुग्ध कर लिया)।

'Mum' शब्द का अर्थ है 'चुप' मौन। किन्तु संस्कृत शब्द 'मम' का अर्थ है 'मेरा/मेरी'। 'You' का अर्थ है 'तुम'; Sum का अर्थ है जोड़। इस प्रकार स्वामी राम के OIM (ओं) शब्द के उच्चारण में पूर्ण सिंह जी को 'तुम' और 'मैं' का जोड़ 'ओह ! मैं (I) हूं (M=am) अर्थात् हम दोनों एक हैं ध्वनित होता प्रतीत हुआ।

यही स्वामी रामतीर्थ फोर्मेन क्रिस्चियन कॉलेज, लाहौर में गणित के लेक्चरार के पद से इस्तीफ़ा देकर वेदांती संन्यासी बनकर टोकियो में आए थे। दीक्षांत समारोह के अवसर पर भाषण के समय सभा-मंच पर पूर्ण सिंह जी को स्वामी जी का परिचय करवाने का सौभाग्य प्रदान किया गया। भाषण के बाद लौटते समय रामतीर्थ जी ने इन प्रशंसा भरे शब्दों द्वारा पूर्ण सिंह जी को मुग्ध करके अपना शिष्यत्व ग्रहण करने की प्रेरणा दी :—

"………I had a great gift of dying & then waking up with strange powers. He was, he said, in search of men of such gifts. "You be mine", said he, "it is wonderful how you were in a trance in the tram car and how volcanic in eloquence on the platform. Your oration was unpremediated but it was a treat.

I bowed down and said, "I am yours, for you are so beautiful."[29]

पत्रकार और प्राचार्य : स्वामी रामतीर्थ से भेंट के उपरांत एक बड़ी विचित्र घटना ने पूर्ण सिंह जी को संपादक बना दिया। श्रीमती वैलमैन नामक एक अमेरिकन वृद्धा अपनी पुत्रवधू एवं पुत्र के कठोर व्यवहार से दुःखी होकर स्वामी विवेकानन्द की शरण में पहुँची। किन्तु उसे इनसे कोई मानसिक सांत्वना न मिली। अन्ततः वह स्वामी राम तीर्थ की सेवा में पहुँची, जिन्होंने उसकी सारी करुण गाथा को आंखें मूंद कर सुना। जैसे ही सारा वृत्तांत समाप्त होने पर स्वामी रामतीर्थ ने आंखें खोलकर श्रीमती वैलमैन को 'मां' कहा तो मानो उसके सारे मानसिक रोष ही धुल गए; और उसे 'शाँति के भीतरी प्रभात' का आभास हुआ। श्रीमती वैलमैन ने यह सारा विवरण पूर्ण सिंह जी को सुनाया और शब्दों की पकड़ में निपुण सम्पादक को अपने पत्र का नाम घर बैठे ही मिल गया। तत्संबंधी कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं :—

"But as he opened hls eyes, the clouds vanished, the Sun shone, she saw the clear sky & felt a strange ecstacy……he looked at her full in the eyes and said just one word, "Mother". And she told me she felt she was "The Mother of the whole universe."

29. Puran Singh : *On Faths of Life*, P. 113.

"This Inner Dawn of peace was his gift to me", she said, "and I am more a song than a person.[30]"

जापान में पूर्ण सिंह जी द्वारा संपादित 'थंडरिंग डॉन' पत्रिका बहुचर्चित रही। इसके नाम और संपादकीय टिप्पणियों पर अनेक प्रकार की प्रतिक्रियाएं हुईं।[31] नारी में मातृत्व भाव के समर्थक स्वामी रामतीर्थ के चरणचिह्नों पर चलने वाले स्वामी पूर्ण जी ने इस भावनात्मक नाम को अपनाए रखा।

संयोग से जून-जुलाई 1904 में श्रीमती वैलमैन वशिष्ठ आश्रम में स्वामी रामतीर्थ को दोबारा मिलने आई। पूर्ण सिंह जी ने इस भेंट के उपरान्त लाहौर में 'थंडरिंग डॉन' का पुन: प्रकाशन आरंभ कर दिया। इस मासिक पत्र के छपते ही पाठकों ने दो-दो साल के चंदे पेशगी भेज दिए।[32]

इस पुनर्मिलन के तुरन्त बाद पूर्ण सिंह जी को अगस्त 1904 में लाहौर के 'विक्टोरिया डाइमेण्ड जुबिली हिन्दू टेक्निकल इंस्टीट्यूट' के प्रिंसिपल का पद प्राप्त हो गया। इस कार्यभार को पूरी लग्न के साथ नवंबर, 1906 तक निभाकर इन्होंने नौकरी से इस्तीफ़ा दे दिया।

'थंडरिंग डॉन' ने पूर्ण सिंह जी को लेखक बनाया था। लाहौर के

---

30. Puran Singh : *On Paths of Life*, P. 116.
31. (a) "I had gone mad" after seeing him. I began editing a monthly entitled 'Thundering Dawn'. Many critics said that Dawn never thunders. And others complimented me for the poetic title. Kipling too, they said, had written somewhere "the dawn came thundering all the way." So I went on. —Ibid, Page 114.

    (b) In one of my editorial notes I had remarked—
    "Fujiyama is in my courtyard" and I remember the 'Yokohama Herald' felt delighted at such a large rich possession of mine. —Ibid, Page 115.
32. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता [माइआ देवी पूरन सिंघ : जीवनी : पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादां], पृष्ठ 48

प्राविधिक संस्थान के प्राचार्य (Principal) के रूप में ये पढ़ाते भी रहे होंगे। फलतः हिन्दी में आध्यात्मिक विषयों के निबंधकार पूर्ण सिंह को हिन्दी वालों ने 'अध्यापक' (पूर्ण सिंह) के रूप में अमरत्व प्रदान किया है। पंजाब के आद्याक्षर 'प' को मुख्य रखकर पंजाबी विद्वानों ने आजीविकोपयोगी प्राविधिक पाठ्यक्रम (Professional and Technical Courses) के प्रशिक्षक को अपनी मातृभूमि के साहित्य जगत् में 'प्रोफ़ेसर' (पूर्ण सिंह) के नाम से प्रतिष्ठित करके उनके नाम पर अनुप्रासिकता की सुनहरी पन्नी चढ़ा दी है।

वैज्ञानिक : संन्यासी पूर्ण सितम्बर 1903 में भारत लौटे। माता-पिता ने दौड़ धूप करके कलकत्ता में पुत्र को खोज निकाला। मिन्नत-खुशामद करके घर लाए। छोटी बहन गंगा के अत्यन्त अनुरोध पर अपने बचपन की मंगेतर माया देवी के विवाह संबधी विचारों की प्रत्यक्ष परोक्षा लेकर इन्होंने स्त्रियों की पर्दा–प्रथा के हामी पिछड़े हुए पुरानपंथी पंजाब में नवीन जागृति का श्रीगणेश किया। 5 मार्च, 1904 को मायादेवी से इनका पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ।

विवाहोपरांत पूर्ण सिंह जी पत्नी सहित फिर फ़क़ीर बनने के लिए तैयार हो गए। किन्तु मां के इन शब्दों से बेटे का हृदय पसीज गया :-

"जैसी तुम्हारी इच्छा !......किन्तु अभी तक मैंने तुझ से एक बात नहीं की कि तेरे जाने के बाद मैं कर्ज लेती रही हूँ, इस हौसले पर कि आकर तू सभी कर्ज चुका देगा। मकान भी तुम्हारे चले जाने पर ही बनवाया है........एबटाबाद वाले सेठ चूहड़ामल से 5,000 रुपये उधार ले रखे हैं। 2,000 रुपये सरदार संत सिंह के देने हैं। इसके अतिरिक्त भाई की पढ़ाई का प्रश्न है। बूढ़ा बाप और माँ क्या कर सकते हैं। छोटे बच्चे ख़राब होंगे। तुम दोनों तो माँगकर खा लोगे। हम क्या करेंगे।' [33]

मां की इस दर्द भरी मनुहार ने पूर्ण सिंह जी को कर्मक्षेत्र में कूदने और श्रम गौरव की महत्ता पहचानने का मधुर संदेश दिया। अप्रैल

---

33. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता [माइआ देवी पूरन सिंघ : जीवनी : पूरन सिंघ दीआं कुझ यादाँ], पृष्ठ 36

1904 में इन्हें लाहौर मैं "Essential Oils" विषय पर भाषण करने के लिए आमंत्रित किया गया। इनके भाषण से प्रभावित होकर भक्त ईसर दास और राय बहादुर शिवनाथ ने इन्हें साझीदार बनाकर रोशा घास का खोज केन्द्र स्थापित किया। तदुपरांत कुछ महीनों के बाद इन्होंने थाइमोल और अजवायन के स्फाट (Crystal), सौंफ और खट्टे के तेल—किसी आधुनिक प्रयोगशाला की स्थापना के बिना ही—देसी भट्ठियों और देगचों की सहायता से तैयार कर लिए। वैज्ञानिक खोज का यह महत्वपूर्ण लक्षण है कि प्रत्येक कार्य को तन्मयता से किया जाए। इसी का फल था कि आप इन नए प्रयोगों में पूर्णतया सफल हुए। किन्तु इनके साझीदार बाज़ारी ख़पत और विशेष मुनाफ़े के तराज़ू पर तोल कर ही कोई बड़ा कारख़ाना लगाना चाहते थे। वेदांती प्रकृति के पूर्ण सिंह जी को यह धोखाधड़ी फूटी आँखों नहीं भायी। अनारकली बाज़ार की कोठी में रखे सामान को तोड़ फोड़ और परिवार के पेट पर लात मारकर ये हिमालय की तराई में बसे देहरादून के लिए चल दिए।

वैज्ञानिक शोध के कारण इन की प्रसिद्धि लाहौर भर में हो चुकी थी। अतः एक महीने के बाद ही वहां पर प्रिंसिपल का पदभार संभालने का आदेश मिलने पर ये फिर लाहौर वापिस आ गए। यहीं पर मार्च 1905 में इनके यहाँ पहले बच्चे ने जन्म लिया। इस बिटिया का नाम विख्यात दर्शनवेत्ता विदुषी के आधार पर "गार्गी" रखा गया। प्रिंसिपल के कार्य से त्यागपत्र देने के बाद इन्हें काफ़ी आर्थिक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। किन्तु इन कुछेक महीनों में इन्हें कोई न काम मिलता रहा। अम्बाला में शीशे का एक कारख़ाना था। कारख़ानेदारों को शीशे के पानी के लिए हरे रंग की आवश्यकता थी। क्रोमो ऑक्साइड नामक यह रंग भारत में अप्राप्य था। प्रोफ़ेसर साहब ने इसे तैयार कर के भेजा।[34]

स्वामी रामतीर्थ के एक शिष्य ज्योति स्वरूप को इनकी आर्थिक समस्याओं का ज्ञान हुआ। श्रीमती माया देवी ने लाहौर-निवास के

---

34. डॉ. महिन्दर सिंघ रंधावा ; पूरनसिंघ जीवनी ते कविता।
[जीवनी : पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादाँ, माइआ देवी पूरन सिंघ], पृष्ठ 56

दिनों में श्री विष्णु दिगम्बर से संगीत–कला सीख ली थी। अतः इनकी नियुक्ति ज्योति स्वरूप जो की धर्मपत्नी के नाम पर बनी 'महादेवी कन्या पाठशाला' में 50 रुपए मासिक पर संगीत-शिक्षिका के पद पर हो गई।[35]

दून वादी (Doon Valley) के रमणीय दृश्यों ने इन्हें बहुत आकर्षित किया। वहीं पर देहरादून के समीप डोईवाल नामक स्थान पर इन्होंने लाहौर की प्रिंसिपलशिप छोड़कर स्वामी रामतीर्थ के परम शिष्य, देहरादून निवासी लाला ज्योति स्वरूप की सांझेदारी में साबुन बनाने का कारखाना लगा लिया। टीहरी राज्य में इस सामान की ख़ूब खपत हुई।

नवम्बर, 1905 में बनारस में एक महान औद्योगिक मेला लगा। वहाँ पर पूर्ण सिंह जी ने वैज्ञानिक विषयों पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिए। इसी ख्याति-लाभ के आधार पर प्रोफ़ेसर साहब को मार्च 1907 में देहरादून के 'वन शोध संस्थान' (Forest Research Institute) में अस्थायी रूप में वन रासायनिक (Forest Chemist) का पद मिल गया। कुछ महीनों के उपरान्त आपको स्थायी अधिकारी बना दिया गया। कालान्तर में आप के पद का नाम भी बदलकर रसायन-सलाहकार (Chemical Advisor) कर दिया गया।

यहीं पर 19 अगस्त, 1907 को आप के बड़े सुपुत्र नारायण उर्फ़ मदन मोहन सिंह तथा दूसरे पुत्र सतवन्त सिंह उर्फ़ निरलेप सिंह पहली जनवरी 1910 को उत्पन्न हुए। 15 सितम्बर, 1913 को इनके सब से छोटे बेटे भालू उर्फ़ रामिंदर सिंह का जन्म हुआ।

यही सरकारी नौकरी थी, जिस पर प्रोफ़ेसर साहब लगभग ग्यारह वर्ष टिके रहे। सन् 1918 में इनसे ऊंचे पद पर एक व्यक्ति की सीधी नियुक्ति (Direct Recruitment) हो गई। स्वाभिमानी पूर्ण सिंह जी को यह बात बहुत खली और इन्होंने अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। अपने इस सेवाकाल में इन्होंने विभिन्न रसायनों और विविध प्रकार की लकड़ियों के विषय में 'इण्डियन फॉरेस्ट रिकॉर्डस और इंडियन फॉरेस्ट

---

35. महिन्दर सिंघ रधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता [माइआ देवी पूरन सिंघ : जीवनी : पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादां], पृष्ठ 56

मेमिग्रॉयेस' में बहुत से गवेषणापूर्ण लेख लिखे थे।[36] ऐसे वैज्ञानिक गवेषी को खोना तत्कालीन 'वन संरक्षण अधिकारी' (Conservator of Forests) को नहीं जंचा। काफ़ी समझाने-बुझाने पर भी जब आप न माने तो चार सरकारी डॉक्टरों के परीक्षण-प्रतिवेदन (Medical Check Report) के आधार पर इन्हें पेंशन दे दी गई। जाँच-पड़ताल से डॉक्टरों को पता चला कि आप एल्ब्यूमिन और गाउट के भीषण रोगी थे।[37] किन्तु पारिवारिक बोझ के कारण आप अपने शरीर को किसी न किसी तरह ढोए जा रहे थे; घर के लोगों को इसकी कानो-कान भी ख़बर न थी।

क्रांतिकारियों के संरक्षक : पूर्ण सिंह जी सितम्बर 1900 से दिसम्बर 1901 के दौरान जापान में ओरियेंटल क्लब के सदस्य रहे। इसी क्लब के तत्वावधान में आप भारत की स्वाधीनता के पक्ष में भाषण देने लगे थे। सन् 1902 में भारत में अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए इन्होंने टोकियो में धन-संचय भी किया। सितम्बर, 1903 में भारत लौटने पर इन्होंने कलकत्ता में एक जोशीला भाषण दिया, जिस के कारण तीन महीने क़ैद की सज़ा भी इन्हें भुगतनी पड़ी।

सन् 1904 में ये जब लाहौर में प्रिंसिपल थे, उन्हीं दिनों जापान के एक पुराने सहपाठी, बंगाल के रमाकांत राय, इन्हें मिलने आए। मालिक मकान वकील को एक क्रांतिकारी का पूर्ण सिंह जी के घर पर आना बहुत चुभा। उसने झूठा बहाना करके इनसे मकान ख़ाली करवा लिया। इन्हीं दिनों अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध बोलने वाले चार लड़कों को मैडिकल कॉलेज से निष्कासित कर दिया गया। कॉलेज

---

36. (क) Basant Kumari Singh : *Reminiscences of Puran Singh* Page Vi (An Introduction by Nilambri Singh).

(ख) पुस्तक की लेखिका बसन्त कुमारी सिंह, प्रो. पूर्ण सिंह की सब से बड़ी पुत्रवधू और सरदार मदन मोहन सिंह (निधन : 8 जनवरी, 1965) की विधवा पत्नी हैं। इनके पिता हाफ़िज़ाबाद के प्रतिष्ठित महानुभाव श्री बुलाकी राम चोपड़ा और माता श्रीमती जानकी देवी (विवाह पूर्व Johanne Nielson of Copenhagen, Denmark) से प्रोफ़ेसर साहब के परिवार की मैत्री सन् 1912 से थी।

37. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ जीवनी ते कविता [माइआदेवी पूरन सिंघ : जीवनी—पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादाँ], पृष्ठ 84.

में काफ़ी तोड़-फोड़ हुई। मैडिकल कॉलेज के प्रिंसिपल से यह अनुनय–विनय किया गया कि परीक्षाएँ समीप होने के कारण निष्कासन रद्द कर दिया जाय। किन्तु उनके कान पर जूं न रेंगी। अत: सभी विद्यार्थी पूर्ण सिंह के साथ लाहौर के भद्रकाली मंदिर में रात भर टिके रहे। आख़िर प्रिंसिपल को घुटने टेकने ही पड़े।

मार्च-अप्रैल, 1905 में कांगड़ा में भीषण भूचाल आया। इसका प्रभाव पेशावर और कलकत्ता तक हुआ। पूर्ण सिंह जी ने जगह-जगह भाषण करके भूकम्प पीड़ितों और ज्वालामुखी मन्दिर की मुरम्मत के लिए दान इकट्ठा किया।

श्रीमती पूर्ण सिंह ने अपनी 'कुछ यादों' में लाला हरदयाल, मास्टर अमीरचन्द, मिस्टर चैटर्जी (सम्भवत: काली प्रसन्न चैटर्जी), डॉ. ख़ुदादाद और कुलकर्णी मराठा का अपने पतिदेव के सम्पर्क में आने का उल्लेख किया है।[38] श्री काली प्रसन्न चैटर्जी ने लाहौर के मैडिकल कॉलेज में अध्ययन किया था और लाला हंसराज के साथ मिलकर लाहौर के डी. ए. वी. स्कूल तथा कॉलेज की स्थापना भी वहीं पर की थी। इतना ही नहीं इन्होंने सन् 1896 में लाहौर के डी. ए. वी. स्कूल में कुछ दिनों अध्यापन कार्य भी किया था।[39] पूर्ण सिंह जी सन्

---

38. डॉ. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता (माइआ देवी पूरन सिंघ : जीवनी—पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादां) पृष्ठ 51।

39. Kali prasanna was a man of versatile qualities. Besides being a social reformer interested in popularising widow marriage, he was a philanthropist....... He was actively engaged in relief work and charitable missions at various times and places. He assisted L. Hansraj in founding the Lahore D.A.V. School and College and he himself taught at this institution for sometime in 1896. A Bengali by birth he had taken to the Panjab as his homeland & he so completely identified himself with the people of that province in dress, appearance, language and manners. He was well-versed in Music, painting, literature, botany & zoology. He was the author of a historical novel entitled 'Sikh Samrat O Shatir Abhishap'

(Contd. on page 21)

1897-99 तक लाहौर के डी. ए. वी. कॉलेज के छात्र रहे। कॉलेज के संस्थापक श्री काली प्रसन्न चैटर्जी से मेधावी भाषणकर्ता पूर्ण सिंह की भेंट होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। चैटर्जी सन् 1905 तक लाहौर में अंग्रेज़ी दैनिक 'दि ट्रिब्यून' के सम्पादन विभाग में रहे। अतएव आश्चर्य नहीं है कि भद्रकाली मन्दिर में मैडिकल कॉलेज के विद्यार्थियों को टिकाने तथा ज्वालामुखी के मन्दिर की मुरम्मत के लिए धन-संचय में लाहौर में निवासस्थ प्रिंसिपल पूर्ण सिंह ने, उदारमना पंजाब प्रेमी श्री चैटर्जी एवं अन्य क्रांतिकारियों को तन-मन और धन से सहयोग दिया हो।

जून 1905 में गवर्मेण्ट कॉलेज लाहौर के एम. ए. के एक बंगाली विद्यार्थी 'मित्रा' को टाइफाइड हो गया। सम्भवत: अपने इष्टमित्रों के संकेत के कारण अथवा इसी रोग से अपने छात्रकाल में भुगतभोगी प्रिंसिपल पूर्ण सिंह दयावश इसे अपने घर ले आए। यद्यपि पूर्ण सिंह जी की माता ने इस बात का कड़ा विरोध किया; फिर भी भारत माता के पराधीनता-पाशों को काटने के लिए प्रयत्नशील अपने क्रांतिकारी सहयोगियों के अनुरोध पर 'मित्रा' के प्रति इन्होंने पूरा मानवीय कर्त्तव्य निभाया। इसी संदर्भ में सास के कटुतापूर्ण व्यवहार के बावजूद भी श्रीमती मायादेवी रोगी की सेवा शुश्रूषा में दत्तचित्त रहीं। मातृभूमि और जन्मदात्री माँ के प्रति समान रूपेण कर्त्तव्यपरायण पूर्ण सिंह को इन्होंने कभी भी सास के दुर्व्यवहार की ख़बर कानों कान भी पहुंचने न दी।[40] मायादेवी जी के अनुसार लाला हरदयाल और (डॉ) ख़ुदादाद प्रतिदिन मित्रा का हालचाल पूछने आया करते थे।[41] लाला हरदयाल ने उन्हीं दिनों गवर्मेण्ट कॉलेज, लाहौर से अंग्रेज़ी में एम. ए. करके पंजाब

Contd. from pre-page.

which was serialised a few years after his death in Bengali literary journal the 'Parichay'.

—S. P. Sen (Editor) : *Dictionary of National Biography* (Biographical note by Nemai Sadhan Bose), P. 276.

40-41 डा. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता (माइआ देवी पूरन सिंघ : जीवनी—पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादाँ) पृष्ठ 50-51.

विश्वविद्यालय के सभी कीर्तिमान तोड़ दिए थे ।[43] ज्वालामुखी मन्दिर की मुरम्मत के लिए चन्दा इकट्ठा करवाने[43] और (डॉ) ख़ुदादाद को विदेश में अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति देने के सम्बन्ध में पण्डित श्यामजी कृष्णावर्मा को ऑक्सफ़ोर्ड से 21 जनवरी 1907 को लिखे पत्र[44] से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि लाला हरदयाल का प्रोफ़ेसर साहब से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा ।

पूर्ण सिंह जी नवम्बर 1906 में लाहौर की प्रिंसिपलशिप से त्यागपत्र देकर डोईवाल में आ टिके । सम्भवतः क्रांतिकारियों से मेल जोल इन्हें महंगा पड़ा हो । देहरादून में डॉ. ख़ुदादाद फिर लेखक के पास रहने लगे । श्री काली प्रसन्न चैटर्जी ने भी देहरादून से कुछ दिनों तक 'कॉस्मोपोलिटन' (Cosmopolitan) पत्र का सम्पादन किया ।[45]

---

42. So he left for Lahore and joined the Government College there. In one year he did M.A in English & broke all records for high marks. "His examiners, all English men, gave him virtually hundred percent marks. And it took him only twelve months to do M.A. in History......Hardyal was known as the wonder of his time. He was blessed with a photographic memory. He would read whole pages just once, then reproduce them faultlessly.
—Dharmavira (Ed.) *Letters of Lala Hardyal* , P. 11-12.

43. ज़िला काँगड़ा में भूकम्प के कारण एक हिन्दू मन्दिर (सम्भवतः ज्वालामुखी) के गिरने पर लाला हरदयाल लगातार दो घण्टे तक लाहौर में शिक्षित श्रोताओं के सम्मुख भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीकों के महत्व पर उत्तम अंग्रेज़ी में गरजते रहे ।
—धर्मवीर : लाला हरदयाल, पृष्ठ 18.

44. I was very glad to hear from you. I believe Syed Haidar Raza would like to come to England but I am not certain. I have written to him about the matter. I have also written to another Mohammedan gentleman, a Punjabi Mr. Khudadad B.A., who is also an ardent nationalist.
—Dharmavira (Ed.) *Letters of Lala Hardyal*, Page 32.

45. S.P. Sen (Editor) : *Dictionary of National Biography*, Vol. I (Nemai Sadhan Bose's Biographical Sketch), Page 276.

एम. ए. करने से पूर्व ही लाला हरदयाल मास्टर ग्रमीरचन्द की गुप्त क्रांतिकारी संस्था के सदस्य बन चुके थे।[46] ग्राप दोनों भी डोईवाल (देहरादून) में प्रो. पूर्ण सिंह के घर ग्राने जाने लगे।[47] टीहरी की बाग़ी पार्टी का नेता—जो जापान में प्रोफ़ेसर साहब का सहपाठी था—कुलकर्णी मराठा बहुधा वेश बदल कर ग्रौर दाढ़ी-मूंछ बढ़ाकर रसद तथा माली सहायता के लिए इनके निवास स्थान पर पहुँच जाता था। एक बार तो इसी कारण गुप्तचर विभाग के कर्मचारियों ने पूर्ण सिंह जी का

46. (क) हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 12, पृष्ठ 292

(ख) After Hardyal had left India for Europe Rash Behari Bose took up the work of his party. A meeting of different revolutionary organizations in India formed the Central working committee. ....To help the Indian freedom movement in America, seeds of partriotism in Indian Army & ideas of revolt in the public at large were sown. The inflammable Liberty Pamphlets written and published by Balmukand & Amir Chand found their way into the army stationed at Military station like Dehra Dun, Kasauli & Ambala cantonment. ......On Dec. 29, 1912 (Dec. 23, 1912 !) Rash Behari hurled a bomb at the viceroy, Lord Hardinge..... As a camouflage the daredevil Rash Behari called a public meeting at Dehra Dun and ruthelessly criticised the bomb thrower. In 1915 began the Lahore Conspiracy case......... ... Bhaiji (Parmanand) was arrested in India & Hardyal in the U.S.

—Dharamavira (Ed.) *Letters of Lala Hardyal*, P. 27-28.

47. हरिद्वार से वे देहरादून ग्रपने पुराने मित्र श्री पूर्ण सिंह से मिलने गए। श्रीमती पूर्ण सिंह कहती हैं कि लाला जी एक बात का खास ध्यान रखते थे किसी सरकारी नौकर के यहाँ वे भोजन न करते (पृष्ठ 92) इन्होंने (हरदयाल जी के साथी) डोईवाल से रेलगाड़ी पकड़ने का निश्चय किया। ज्योंही गाड़ी प्लेटफार्म पर ग्राई त्योंही श्री पूर्ण सिंह का संदेशवाहक तार लिए ग्रा पहुंचा। उसमें लाला जी ने लिखा था कि दोनों उन्हें रात को सहारनपुर में मिलें।—धर्मवीर : लाला हरदयाल, पृष्ठ 99.

मकान घेर लिया, किन्तु वे इनके हाथों पिटकर भाग गए।

हरि बी. ए. नामक एक कानपुर निवासी युवक अंग्रेज़ों के अत्याचारों से दुःखी होने के कारण जापान में आश्रय लेना चाहता था। आवश्यक धन-राशि और परिचय-पत्र की व्यवस्था के लिए उसने प्रोफ़ेसर साहिब तक पहुँच की। इन्होंने इस तरुण की भरपूर सहायता की। रावलपिण्डी यात्रा के लिए एक बार मायादेवी रेलवे स्टेशन पहुँचीं। तभी अंग्रेज़ों के विरुद्ध युद्ध में लड़ने के लिए जापान-यात्रा का उत्सुक 'ओ३म्' नामक विद्यार्थी इनके घर टपक पड़ा। पूर्ण सिंह जी ने मायादेवी से चाबियों का गुच्छा मंगवाकर उस युवक की इच्छापूर्ति की।[48]

ख़ुदादाद इनके परिवार का अटूट अंग बन गया था। वह रुड़की के इंजीनियरिंग कॉलेज में काम करता था। देशभक्त तो था ही। एक अंग्रेज़ अधिकारी के द्वारा अपमानित किए जाने पर उस युवक ने नौकरी को लात मार दी। पूर्ण सिंह जी ने डोईवाल के कारख़ाने का 'पूर्णदाद' (पूर्ण सिंह का आरंभिक शब्दांश एवं ख़ुदादाद का अन्तिम शब्दांश जोड़कर) नाम इसी कारण रखा था।

सन् 1908 में स्वाधीनता सेनानियों पर भीषण दमन चक्र चला। लाला हरदयाल के भाषणों से बढ़ रही जोशीले नौजवानों की गति-विधियों के कारण उन्हें गिरफ्तार करने की आशंकाएं बढ़ गईं।[49]

---

48. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता [माइआदेवी—जीवनी: पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादाँ) पृष्ठ 68.

49. His influence on students particularly was very great & a large number of them became his followers. As the situation became tense he left India & reached London in September, 1908.
—Fauja Singh: *Eminent Freedom Fighters of Panjab*, Page 111
(b) हिन्दी विश्वकोश, खण्ड 12, पृष्ठ 292.
(c) Hardyal Lala—Because of his revolutionary view the Government wanted to arrest him in 1908 but he sought asylum at martimque in the West Indies ; left for the United States of America where he edited the Ghaddar (Revolution).
—Dr. Jagdish Saran Sharma : *The National Biographical Dictionary of India*, P. 105.

लाला लाजपतराय के अनुरोध पर हरदयाल जी ने भारत छोड़ने का निश्चय कर लिया। श्री ख़ुदादाद ने उस कायस्थ महिला को, जिसने कभी घर से बाहर क़दम न रखा था—बुरका पहनाकर पतिदेव लाला हरदयाल के दर्शन करवाए और पटियाला में इस देवी को मायके पहुँचाया। इस साहसी घटना से प्रभावित हुए प्रो. पूर्ण सिंह की मनोदशा पठनीय है :

"अक्तूबर मास के कृष्णपक्ष की तारों भरी रात की क्षीण ज्योति में हम तीनों बैठे थे। उस समय हर प्रकार के एकान्त ने दिलों को एकाग्र कर रखा था। स्वामी जी के प्रेम मग्न नैनों से आँसू बह रहे थे। सुना है—'तू हरदयाल की इच्छा पूरी करके आया है। सभी बातें सुना।' वे बातें सुनाते रहे, जिनको सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते थे। स्वामी जी ने मुझ से कहा—'माया! यह फ़क़ीर पुत्र ख़ुदादाद सारी क़ुदरत के सामने तेरी गोदी में डालता हूं।' उसका सिर मेरी गोदी में रख दिया। "तू इसके सिर को प्यार दे।" मालूम नहीं इसी मग्नता में कितनी देर मग्न बैठे रहे। वही भाव सदैव बना रहा। जब तक जीवित रहे इसी भावना में। मां, पुत्र और भाइयों से प्यार रहा। 53 वर्ष एक ही घर में इकट्ठे रहे।"[50]

सन् 1910 में ख़ुदादाद जर्मनी में रसायन की उच्च शिक्षा प्राप्त करने चला गया। किन्तु प्रोफ़ेसर साहब के घर में विद्रोहियों का आना जाना सदा बना रहा। इन्हीं दिनों श्री रास बिहारी बोस नामक प्रसिद्ध क्रांतिकारी प्रोफ़ेसर साहब की प्रयोगशाला में सहायक (Laboratory Assistant) के रूप में कार्यरत थे। श्री बोस ने वहां से पिप्रिक अम्ल (Pipric acid) चुरा लिया, जिसका प्रयोग दिल्ली में लार्ड हार्डिंग पर फेंके गए बम में किया गया। श्री बोस तो इस दुर्घटना के उपरान्त जापान में जा छिपे, किन्तु इसके फलस्वरूप बेचारे पूर्ण सिंह जी को काफ़ी कष्ट झेलने पड़े।[51]

---

50. डा. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता (माइआदेवी पूरन सिंघ : जीवनी—पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादां), पृष्ठ 73–74.
51. Puran Singh : *The Spirit of Oriental Poetry* (M.S. Randhawa's Foreword).

प्रसिद्ध देशभक्त कवि डा. मुहम्मद इक़बाल, भारत कोकिला श्रीमती सरोजिनी नायडू तथा सरस्वती के लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी भी कई बार हवाख़ोरी करने डोईवाल-देहरादून चले आते थे। कोई प्रसिद्ध वकील, किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश और कई एक प्रतिष्ठित समाज सेवी भी घूमते-घूमाते कवि महोदय के दर्शनार्थ पधारते ही रहते थे। ननिहाल-ससुराल और पुराने परिचित साधु-सन्तों का तो इनके यहाँ डेरा जमा रहता था। पूर्ण सिंह जी के दादा, धर्मपत्नी और परिवार के अन्य सदस्य इन 'न नाम लेवा न पानी देवा' पाखंडियों पर बहुधा झल्ला उठते थे।[52]

ग़दर का सम्पादक मण्डल : नवम्बर 1913 में लाला हरदयाल तथा कुछेक अन्य भारतीयों के सहयोग से अमेरिका (सान फ्रांसिसको) से 'ग़दर' अख़बार का प्रकाशन आरम्भ हो गया। इसके सम्पादक मण्डल में लाला हरदयाल के अतिरिक्त अन्य चार सम्पादकों में से एक भाई पूरन सिंह भी थे।[53] ये पूरन सिंह कौन महानुभाव थे, यह एक रहस्य है। स्वाधीनता सेनानियों के जीवनी लेखकों का मत है कि 'ग़दर'

---

52. (क) स्वामी जी के दादाजी, जिन्हें हम बापू जी कहते थे, इस बात को पसंद नहीं करते थे कि कहीं मेरा पोता फिर कभी साधु बन जाए।...बापू जी उन संन्यासियों के साथ बहस करने लग जाते। ...कहते, "गृहस्थी के घर में संन्यासी को एक रात से अधिक नहीं ठहरना चाहिए।" यह सुनकर तीन साधु तो चले गए। एक साधु ब्रह्मानन्द बी. ए. था, वह नहीं गया। ...बापू जी ब्रह्मानन्द के पीछे पड़ गए—'वे तीन चले गए, तुम्हें जूते खाकर जाना है। यह बात संन्यासी को बहुत बुरी लगी।

    —डा. महिन्दर सिंघ रंधावा; पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता (माइआ देवी पूरन सिंघ : जीवनी—पूरन सिंघ दीआँ कुझ यादाँ), पृष्ठ 64.

    (ख) His house overflowed with sanyasis and bhikshus much to the discomfiture of his family who were often taken aback by their sudden and untimely visits.

    —Basant Kumari Singh : *Reminiscences of Puran Singh* (Introduction, Page VIII).

53. सूबा सिंघ : पंजाबी पत्तरकारी दा इतिहास, पृष्ठ 56-60.

अख़बार सरदार करतार सिंह सराभा के मन की सूझ थी। लुधियाना (पंजाब) में जन्मे सराभा जी सन् 1910 में सान फ्रांसिसको (अमेरिका) चले गए थे और दीर्घकाल तक इन्होंने ही इस समाचार पत्र का आर्थिक बोझ ढोया।[54]

'ग़दर' की प्रतिष्ठा के लिए 'पंजाबी' एवं 'वन्दे मातरम्' के भूतपूर्व सम्पादक लाला हरदयाल के अतिरिक्त किसी अन्य नामवर व्यक्ति की खोज भी जारी रही होगी। 'थण्डरिंग डॉन' के भूतपूर्व सम्पादक (हमारे चर्चित लेखक पूर्णसिंह) के नाम से मिलते जुलते व्यक्ति को ढूंढ़ निकाला गया। पूर्ण सिंह नाम के एक विद्यार्थी का परिचय सराभा जी से था। स्वाधीनता आन्दोलन को अग्रसर करने के लिए बंगाल तथा देश के अन्य क्षेत्रों में भी जीशीले छात्रों को सम्मिलित किया जा रहा था।[55] आश्चर्य नहीं, इसी परिप्रेक्ष्य में लुधियाना ज़िले के एस्सेवाल गाँव के सरदार पूरन सिंह (जन्म सन् 1898) में प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के

---

54. Kartar Singh's young & sensitive mind quickly imbibed the influence and he became an ardent nationalist. The Ghaddar newspaper was actually his child and to begin with, he wore the whole of its burden.

—Fauja Singh : *Eminent Freedom Fighters of Panjab*, P. 152.

55. In 1907 when the boy was not yet 12, he was taken to Daulat Khan. He was a student of the Middle English School there for about 2 years. Thereafter for further education he was taken to Comilla and left there under the guardianship of his uncle Bishweshar Chatterji, who was a pleader in Comilla. Here Jogesh Chandra (the boy under reference) came in contact with Biren Chatterji, the famous revolutionary of the Anusilan Samiti and the boy was initiated into the revolutionary Cult & gradually plunged himself deep into the revolutionary movement.

—S. P. Sen (Editor) : *Dictionary of National Biography* (Kshirode Kumar Datt's Biographical Sketch), Page 275.

हमनाम व्यक्ति[56] (स्कूल की पढ़ाई छोड़े हुए पन्द्रह साल का किशोर) को ध्यान में रखकर 'पूरन सिंह' नाम सम्पादक मण्डल में छपता रहा। असम्भव नहीं कि पूर्ण सिंह नामक दोनों ही भारत-स्थित महानुभाव इस तथ्य से अनभिज्ञ रहे हों। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि प्रो. पूर्ण सिंह जब सरकारी नौकरी में रहकर क्रांतिकारी मित्रों की सहायता कर रहे थे तो साहित्यिक सेवा में भी पश्चात्पद नहीं रहे होंगे। अबोध बालक को इस तथ्य से अवगत करवाने की आवश्यकता ही न थी, क्योंकि भेद खुल जाने पर ऐसे मामलों में पहले ही श्री अरविन्द घोष एवं श्री बिपिन चन्द्र पाल को कलकत्ता की अदालत के कठघरे में खड़ा होना पड़ा था।[57] मित्रों को बचाने वाले पाल महोदय को स्वयं जेल की

---

56. Sardar Puran Singh was born in 1898 in a Jat Kisan Family in the village of Esseval in Ludhiana Distt; Panjab While studying he came in contact with Sardar Kartar Singh Sarabha & other members of the Ghadar Party, gave up studies and became an active participant in the national movement, twice suffering imprisonment for six months & four months.

    After his release from prison, he ceased to participate in political activities and came under the influence of religious & reformist Sikh leaders.......... S. Puran Singh went back to Khalsa High School, Ludhiana and passed matriculation examination in 1919.

    —S.P. Sen (Editor) : *Dictionary of National Biography* (Biographical Sketch by S.D. Gajrani), Vol. III Page 413-14.

    (ख) इसी पुस्तक के अगले अध्याय 'प्रणयन शक्ति' के "पंजाबी-साहित्य गगन में दूज का चाँद" भाग के अन्तर्गत प्रो. पूर्ण सिंह की रचनाओं और 'ग़दर' समाचारपत्र की विषयवस्तु की तुलना करके हमने अपने मत की पुष्टि की है।

57. Sri Aurobindo was arrested in 1907 for having published certain articles in the Bande Matram .... Sri Aurobindo was first released on bail and then acquitted. The prosecution was not able to prove that Sri Aurobindo was the Editor of Bande Matram. However, his arrest, trial & acquittal made

(Contd. on p. 29)

यात्रा सहनी पड़ी।[58] कुछ भी हो 'ग़दर' ने बहुभाषज्ञ प्रो. पूर्ण सिंह को पंजाबी भाषा का लेखक तो बना ही दिया। शोधार्थियों के लिए वस्तुतः यह कौतुक का विषय है कि क्या छद्मनामों वाली 'Spirit of the Sikh' ग्रन्थ की रचनाएं उस समय 'ग़दर' के अंग्रेजी संस्करण में तो नहीं छपती रहीं ?

लाहौर षड्यन्त्र कांड : सन् 1914 के 'लाहौर षड्यन्त्र मामले' में सर्वश्री अमीरचन्द, अवध बिहारी, बाल मुकुंद और बसन्त विश्वास को मृत्यु दण्ड दिया गया। इसी मामले में 23 दिसम्बर, 1912 को लॉर्ड हार्डिंग पर गिराए गए बम का भेद एक अभियुक्त दीनानाथ के द्वारा खुला। षड्यन्त्र के मुख्य अभियुक्त श्री रास बिहारी बोस तो भाग गए।[59]

Continued from previous page

him one of the foremost leaders of the Extremist Party of the Indian National Congress.

—Dr. Vidya Dhar Mahajan : *Leaders of the Nationalist Movement*, P. 159.

58. In September 1907, B.C. Pal Voluntarily courted imprisonment in connection with the prosecution of the Bande Matram. He was summoned to the court as a witness to identify a letter under his signature written on 26 May, 1907 to some one connected with the Bande Matram. B.C. Pal refused to answer any question on the ground that the prosecution was "unjust and injurious to the cause of popular freedom." The result was that B C. Pal was prosecuted for contempt of court and awarded six month simple imprisonment. In this connection, Upadhaya wrote thus in Sandhya : This imprisonment of Bipin Chandra will be recorded in history, will remain graven on the hearts of men and women generation after generation.
—Ibid, Page 130.

59. In May 1908, a letter of Rashbehari was alleged to have been found at Manicktala garden with Aurobindo, Barin & others, arrested for Alipore Conspiracy Case. On his colleagues

(Contd. on page 30)

किन्तु अमीरचन्द के घनिष्ठ मित्र होने के कारण प्रो. पूर्ण सिंह को पुलिस ने घेर लिया। इन्होंने मास्टर अमीरचन्द से अपना कोई भी सम्बन्ध न होने का वक्तव्य अदालत में दे दिया। इस प्रकार प्रो. पूर्ण सिंह अभियोग से मुक्त हो गए। प्रस्तुत संदर्भ में श्री प्रभात शास्त्री की तथ्यबोधक टिप्पणी पठनीय है :

"जिस समय ये इन्स्टीटयूट में अध्यापक थे उसी समय उत्तर भारत में क्रांतिकारी आन्दोलन का काफ़ी जोर था। परिणामस्वरूप स्वामी रामतीर्थ के परमभक्त और इनके गुरु भाई मास्टर अमीरचन्द 'देहली षड्यन्त्र' के मुकदमे में सरकार द्वारा पकड़ लिए गए। बाद में पुलिस को पता चला कि अमीरचन्द के घर में पूर्ण सिंह भी आया जाया करते थे, इस कारण पुलिस वालों ने इस मुकदमे में इनकी भी

Contd. from previous page

advice, he went to Dehra Dun as a guardian tutor in the house of Pramatha Nath Tagore. After serving sometime in the Kasauli Pasteure Institute, he joined the Dehra Dun Forest Research Institute. He picked up the revolutionary links formed by Jatin Bannerji (Niralamba Swami) in Punjab & Delhi.

He kept contact with Srish Ghose & Amarendra Nath Chatterji. Rashbehari planned something sensational during the viceroy's state entry into Delhi. On his request Amarendranath sent Basanta Biswas with some bombs to Rashbehari. On Dec. 23, 1912 Basanta threw a bomb on viceregal procession. Rashbehari organized it & was present there. The Government could find no clue ; after two years Dina Nath, on arrest in Delhi, disclosed everything. In the Lahore Conspiracy Case (1914) Rashbehari was an absconding accused; Amir Chand, Avadh Behari, Bal Mukand & Basant Biswas got capital punishment.

—S.P. Sen (Editor) : *Dictionary of National Biography* (Biographical Sketch by Arun Kumar Guha) Vol. I. Page 222.

पेशी करा दी। यह बात कटु सत्य थी कि इनका और मास्टर साहब का घनिष्ठतम सम्बन्ध था। देहली-यात्रा में ये प्रायः इन्हीं के घर ठहरा भी करते थे। इस दशा में पूर्ण सिंह के सामने धर्म-संकट खड़ा हो गया। ये किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गए और अपना कोई विचार स्थिर न कर सके। मुकदमा बहुत गम्भीर था। इधर इनके शुभचिंतकों को यह शंका हुई कि यदि सरदार साहब ने भावना और भावुकता के आवेश में आकर अदालत के सामने अमीरचन्द से अपना सम्बन्ध अणुमात्र भी स्वीकार किया तो ये भी इस जाल में लपेट उठेंगे। इसलिए उन लोगों ने इन्हें मास्टर अमीरचन्द से किसी दशा में भी किसी प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार न करने के लिए सावधान किया। अपने साथियों और सम्बन्धियों के समझाने-बुझाने का सरदार पूर्ण सिंह के ऊपर प्रभाव पड़ गया और इन्होंने न्यायालय के सामने मास्टर अमीरचन्द से अपना किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं स्वीकार किया, यद्यपि यह सब इनकी आत्मा के नितांत विपरीत था। अस्तु, किसी तरह इस मुकदमे से इन्हें छुटकारा तो मिल गया, किन्तु मास्टर अमीरचन्द को फाँसी की सजा हो गई। अतः इस घटना से न्यायप्रिय पूर्ण सिंह को बहुत भयंकर मानसिक धक्का लगा और ये प्रायः उदास रहने लगे। यह घटना संवत् 1971 (अक्टूबर सन् 1914) की है।''[60]

इस लम्बे वक्तव्य में उल्लिखित आरोपों का समाहार आरोपकर्ता के अपने ही शब्दों से हो जाता है। पुलिस तो सदैव झूठे मामले बनाकर अधिकाधिक क्रांतिकारियों को अपने शिकंजे में लाना चाहती थी।

---

60. (क) प्रभात शास्त्री : सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबन्ध, पृष्ठ 11-12.

(ख) Amir Chand........took up the work of L. Hardyal's revolutionary Party in 1907, when the latter left in India, involved in Viceroy Bomb Case, 1912 ; was arrested in February 1914, tried & sentenced to death ; hanged in Central Jail, Delhi on 8th April, 1915.

—Fauja Singh : *Who's Who : Punjab Freedom Fighters*, P. 42.

(ग) प्रो.पूर्ण सिंह के परिवार द्वारा सुरक्षित इनकी पंजियों (files) में अदालत के दो बयान (Evidence of 1914 by S. Puran Singh & Evidence of 1914 by Chatterji) भी विद्यमान हैं।

लाला हरदयाल, डॉ. ख़ुदादाद, रास बिहारी बोस तथा अन्य बीसों क्रांतिकारी पूर्ण सिंह जी के पास आर्थिक सहायता के लिए आते रहते थे। यदि पूर्ण सिंह जी इस तथ्य को प्रकट कर देते कि अमीरचन्द जी से उनकी घनिष्ठता है तो बुढ़िया के अटेरन की तरह मामले और भी उलझते। आश्चर्य नहीं, खोज-बीन से अमीरचन्द एवं पूर्ण सिंह के सम्पर्क में आने वाले अन्य क्रांतिकारियों को भी लेने के देने पड़ जाते। अतः पूर्ण सिंह जी ने परिस्थितियों के अनुकूल पग उठाया। दिल्ली षड्यन्त्र (अथवा लाहौर षड्यन्त्र) से पूर्ण सिंह जी का कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। श्री रास बिहारी बोस के बम वाले मामले[61] में भी इनका कोई योगदान न था। प्रत्युत् इन के प्रति हुए विश्वासघात की सम्भावना हो सकती है। 'आ बैल मुझे मार' का मज़ा बेचारे श्री बिपिन चन्द्र पाल चख ही चुके थे[62]। अतएव इस मामले से पूरी तरह हाथ झाड़ कर पूर्ण सिंह जी ने केवल अपनी जान ही नहीं बचाई, बल्कि स्वाधीनता के बीसों रणबाँकुरों की प्राण-रक्षा भी कर दी।

युगवर्तिनी-चेतना : प्रोफ़ेसर साहब ने अपने सम्पर्क में आने वाले सभी निश्छल हृदय व्यक्तियों के परिवार का ध्यान रखा। स्वामी रामतीर्थ की पत्नी और बच्चों के निराश लौट जाने पर आप मायादेवी को साथ लेकर इन लोगों से मिलने भी गए। लाला हरदयाल की पत्नी की खोज–ख़बर के मन्तव्य से पटियाला भी पहुँचे। ऐसा प्रतीत होता है कि हरदयाल जी जैसे मेधावी व्यक्तियों के ग़दर पार्टी से सम्बद्ध होने के कारण आप इस संस्था से आजीवन जुड़े रहे। ज़िला शेख़ूपुरा में चक नम्बर 73/29 में रोशा घास के कृषि कार्य के समय भी इनका ध्यान पुराने ग़दर आन्दोलन के प्रति रहा हो तो अस्वाभाविक नहीं है। इस

---

61. While in Dehra Dun and Panjab he (Rash Behari Bose) worked with local people, enjoying their full confidence.
—S.P. Sen (Editor) *Dictionary of National Biography* (Biographical Note by Arun Chandra Guha) Vol. I, P. 222.

62 The six months spent by B.C. Pal in prison brought about a great change in his personal life and also in the destiny of the national movement. Upadhyaya Brahmabandhab passed away while the case was pending.......... About B.C. Pal.

सम्बन्ध में हमारा अभिप्राय बाबा-मुराद से है।[63] सन् 1928 में साइमन आयोग (Simon Commission) आया। उस समय भी प्रोफ़ेसर साहब ने 21 अक्तूबर, 1928 को एक खुला पत्र आयोग के नेता सर जॉन साइमन को लिखकर अपना रोष प्रकट किया।

पूर्ण सिंह जी के जीवनकाल में ही 'ग़दर पार्टी' में विघटन का बीजांकुर हो गया था। कुछेक नेता मार्क्सवाद[64] के प्रभाव में आ रहे थे और कई एक नए धार्मिक 'अकाली आन्दोलन' की ओर उन्मुख हो रहे थे। इन आन्दोलनों का पंजाब के कृषकों और सिक्ख धर्म पर विशेष रूप से प्रभाव पड़ रहा था।[65] अतः इन्होंने धर्म एवं क्रांति के सही

63-64. The conversion of the Ghadar Party from xenophobic nationalism to communism came after the war. In 1924 Bolshevic agents working through an American communist, Agnes Smedley, made contacts with the Ghadar organisation in the United States. In 1925 a batch of Ghadrites was sent to Russia, where they received instruction at the Lenin Institute and the Eastern University. Two years later this batch was sent to India via Afghanistan. By then many other Ghadrites in India (now known as Babas—Venerables) were out of goal and had renewed association with their erstwhile colleagues.

—Khushwant Singh : *A History of the Sikhs*, Vol. 2, Page 191

65. The Ghadar Party aimed to drive out the English from India; but no Englishman lost his life at the hand of the Ghadrites... Though the vast majority of the Ghadar party was Sikh (and therefore its literature was printed in Gurmukhi and its meetings held in Gurdwaras), it had nothing whatsoever to do with the revival of Sikhism. The Ghadar party attracted Hindus and Muslims to its fold and later influenced other revolutionary groups in the country to shed their religious bias.

The eruption of the Ghadar movement brought about a radical change in the political outlook of the Sikh community. It marked the beginning of the end of three quarters of a

(Contd. on the next page

स्वरूप की पहचान के लिए कर्मठ लोगों को सजग करने के निमित्त दोनों विचारधाराओं की शल्य-क्रिया करने का बीड़ा अपने सिक्ख साहित्य में उठाया था, यथा :

अकाली आन्दोलन के बारे में विचार

The awe-inspiring scenes of the "Akali" in their present somewhat confused struggle, however misled and misguided from certain points of view—courting death like moths ..dressed in yellow and black, vying with each other to be the first to form the groups of five hundred or a thousand martyrs (page 8). It is not what the small intellects say—'Martyrdom'—sacrifice and call these mighty truths of the exchange of Divine-life-blood by such small names. When God has poured Himself into Man thereby, and for one spark of freedom, a thousand lightnings have to die, it is a cosmic process of making the human spirit live.

(*Spirit of the Sikh, Vol. I*)

साम्यवादियों के लिए सही मार्गदर्शन

Guru Gobind Singh creates his Nam-dyed *Commune* of Saints—The Khalsa—The Brotherhood of exhalted in their noble humanity. (Page 8)...And the mortal fallacies which poison the human thought among the Soviets were avoided by the Khalsa. The Khalsa made democracy its daily practice, driven by the inner feeling, that is reborn of the spirit of Guru, that all men are brothers (P 83). I am on the way to Hari Mandir...O Disciple of the Guru ! ..I hear the song of eternal comradeship in you. (P. 86)

(*Spirit of the Sikh*, Vol. I)

Contd. from previous page)

century of unquestioned loyalty to the British Raj. Though the rebellion was suppressed and submerged in the enthusiasm generated by war it continued to ferment and erupted a few years later during the Akali agitation; Akali terriorists known as the Babbars were largely recruited from the ranks of the Ghadar Party.

—Khuswant Singh : *A History of the Sikhs*, Page 190-91.

वस्तुतः आप तो आध्यात्मिक क्रांति (ग़दर, revolution) के समर्थक थे, जिसका मूल आपको सभी धर्मों में एक समान निहित दिखाई पड़ा, यथा :

"Repeat Christ, Buddha, Guru Nanak, Upanishadas and the Koran, basking in the joy of Soul they give; do so for years and you cannot exhaust their meaning nor effect. Like particles of radium, those words go on forever emitting their rays. Millions daily read the Koran and the Bible, and there is life for millions more in them. Lenins may hang the bishops, but every grass blade will stand up to vindicate the faith of Jesus Christ.

(*The Spirit of Oriental Poetry*, P. 4-5)

वस्तुस्थिति यह है कि गुरुद्वारा मुक्ति आन्दोलन को लेकर सिक्खों में धड़ेबन्दी हो रही थी। यह अकाली आन्दोलन आरम्भ में महात्मा गांधी की अहिंसात्मक नीति का अनुसरण कर रहा था। इसलिए एक ऐसा वर्ग इसे नापसन्द करता था[66]—विशेषतः ग़दर पार्टी से सम्बन्धित

66(a) One of the most striking features of the Gurdwara Reform movement was that it was carried on in the true spirit of non-violence. It confirmed Gandhiji's saying that non-violence is a weapon of the brave only. The movement, however began to fade in 1923. Internal difference of the Akali leadership created a rift in the ranks. The more revolutionary section of the Akalis who did not approve of the non-violent method of struggle, formed a separate organisation to meet the British challenge. Those who did not subscribe to the cult of non-violence held a separate meeting at Hoshiarpur in March 1921...As their field of operations, to begin with was confined to the districts of Jullundur and Hoshiarpur, they called their press organ by the name of Babbar Akali Doaba...Displaying deeds of rare heroism, the Babbars won sympathy and admiration of the people.

—Dr Fauja Singh : Who's who : *Punjab Freedom Fighters*, Page XXII to XXIII.

Contd. on next page

स्वाधीनता सेनानी—जो कि गांधी जी के असहयोग आन्दोलन को नई विचारधारा न मानकर लाला हरदयाल की स्थापनाओं का ही शाब्दिक परिवर्तन मानते थे। पूर्ण सिंह जी इन तथ्यों से परिचित होंगे। इसीलिए इन्होंने अहिंसात्मक आन्दोलन के स्थान पर बब्बर अकाली आन्दोलन के समर्थन में ही सिक्ख गुरुओं की भांति सिक्ख महानुभावों को वीरतापूर्वक 'शहीद' होने (Martyrdom) के लिए प्रेरित किया होगा।

प्रोफ़ेसर साहब की युगवर्तिनी परिस्थितियाँ अंग्रेज़ी दमनचक्र के कारण अन्तर्विरोधी और अस्पष्ट-सी दिखाई पड़ती हैं। बहुत कम ऐसे स्वाधीनता-सेनानी हैं, जिनकी जीवन-गाथाओं का स्पष्ट रूपेण अंकन हुआ हो। अधिकतर इन्हें वेश बदलकर घूमना और अपनी गतिविधियों को नितांत गुप्त रखना पड़ता था, क्योंकि छोटी-सी बात को लेकर पुलिस के जासूसी विभाग से ख़बर मिलते ही इनकी धर-पकड़ शुरू हो जाती थी।

स्वामी सत्यदेव उर्फ़ पूर्ण सिंह

ऐसा प्रतीत होता है कि जीवन के अन्तिम दिन तक पूर्ण सिंह जी के लाला हरदयाल के साथ डॉ॰ ख़ुदादाद की भांति घरेलू सम्बन्ध बने रहे; यह दूसरी बात है कि स्थानीय दूरियों को पाटने के लिए चिट्ठी-पत्रों ने साथ दिया हो। हरदयाल जी के चार पत्र किन्हीं स्वामी सत्यदेव जी को सम्बोधित हैं। इन में से एक पत्र सन् 1921 का है, जो किसी 'लहुसन बादशाह' पुस्तक की भूमिका बना है; यह पत्र स्टॉकहोम (स्वीडन) से लिखा गया है। किन्तु उन दिनों लाला जी कॉलगेन (जर्मनी) में थे। इसी कारण इस पत्र से संबद्ध व्यक्तियों के विषय में सन्देह हो जाता है। हमारे विचार में सन् 1923-24 वाले पत्रों में [Molnlycke (Sweden)] लाला जी ने अत्यन्त घनिष्ठतम

Contd. from previous page)

66(b) Hardayal wanted to establish Swarajya in India through the progressive application of the principle of dissociation from British administration. (It could be said in passing that what Gandhiji preached in 1921, Har Dayal believed and practised fourteen years earlier). Har Dayal called it "Dissociation", Gandhiji named it non-co-operation.

—Dharmavira (Ed.) : *Letters of Lala Hardayal*, Page 16.

संरक्षक को अपने दिल की बातें लिखी हैं । यद्यपि प्राप्तकर्ता का नाम 'स्वामी सत्यदेव जी महाराज' है, फिर भी इसमें प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह का व्यक्तित्व स्पष्ट झांकता है। श्रीमती मायादेवी ने अपनी 'कुछ यादें' में पूर्ण सिंह जी को 'स्वामी जी' ही कहा है। वेदांती साधु का बाना छोड़कर आए प्रोफ़ेसर साहब सम्भवत: अपने मित्रों में भी 'स्वामी जी' के नाम से अभिहित किए जाते रहे हों । आश्चर्य नहीं कि ग़दर अख़बार के सम्पादक मण्डल में सही नाम (पूर्ण सिंह) रखे जाने के लिए अनुरोध करने वाले प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के व्यक्तित्व के अनुकूल ही लाला जी ने 'सत्यदेव' शब्द का विशुद्ध अर्थ में प्रयोग किया हो। अपने कथन की पुष्टि के लिए इन पत्रों से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

(a) I have not married in Sweden. I am already married in India, and my wife and daughter are in Delhi. I hear from them regularly and they may come to Sweden, if circumstances permit. (P. 107).

(b) I am willing to write good books in Hindi and Urdu for the people of India ...Please write to me if you can arrange for the publication of books in Hindi and Urdu. The real reniassance in India requires a large number of good books translated or compiled from different European languages. Don't you think so ? (P. 107-08).

(c) If you know some nationalists, who can spend money on this plan you can write to me. The Indian 'Patriots' have plenty of money, but have lived on the charity of foreign friends and acquaintances. Why do you blame me ? I wished to write these books in 1909, but there was no money for the work.

You can arrange for the publication of the books in India. I leave it entirely to you and your friends. There is no danger in co-operating with me now, as I am not a 'revolutionary' politician now, and this is only literary work of an educational tendency. I correspond with my friends in England and India, and I am a member of scientific societies in England. You can safely carry out this plan, if you like (P. 109)

Molnlycke (Sweden)
25.1.24

Dear Swami Satya Deva ji,

I am very happy to learn that you are willing to help me to publish these books. I wished to stay in London and write this series in 1909...I do not much believe in the popular influence of books and newspapers written in English. Even B.A.'s and M.A.'s enjoy and understand new ideas in their–matri-bhasha (Mother-tongue).

× × ×

I shall first write about ancient Greece and its history etc. That is the first important thing for all Asiatic nations. You know that modern European civilization is based on the modern movement in Italy in the 15th century and freed Europe from mystics, priests, monks and ascetics of the middle ages. That is what has made Europe great and democratic. So I regard it my first task to transfer to Hindi as much as possible about Greece.

× × ×

I wish that you would kindly consider the following points :

1. The books should also be translated there in simple Urdu and Panjabi.

2. Please make special arrangements for the sale of books in Indian states. Kindly send some agents to arrange for the sale through book-sellers or newspaper offices in Patiala, Indore, Srinagar and other towns in the states. Better movements will arise in the half free states than in enslaved British India.

× × ×

More again.

Please buy for me and send me the best and biggest English-Hindi Dictionary that you can get there. I shall need such a dictionary to find new Hindi terms for various English words. I have not read any Hindi book or paper for six years, as I thought that I had cut off all connection with India and Indian movements. Please also send me some books of new Hindi Poetry. I want an English-Hindi dictionary, not a Hindi-English dictionary.

With love.

Yours sincerely,
Har Dayal

---

67. Dharamvira (Ed.) : *Letters of Lala Hardayal*, Page 110-14.

प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह को यह बात ज्ञात थी कि हरदयाल जी की पत्नी सुंदररानी की विदेश यात्रा का विरोध करने वालों में उनके ससुराल के लोग ही थे। इसीलिए डॉ. ख़ुदादाद ने इस देवी को बुर्क़ा पहनाकर पति के अन्तिम दर्शन करवाए थे। पटियाला यात्रा में प्रोफ़ेसर साहब का एक उद्देश्य सुंदररानी की पूछताछ करना भी था। फिर इस पत्र में उल्लिखित व्यक्ति सामान्य साधु नहीं है। वह तो हिन्दी, पंजाबी, उर्दू का कोई अच्छा लेखक है, जिसे विज्ञान में भी अत्यन्त रुचि है। वह तो ऐसा महानुभाव है, जो कि व्यापक सम्पर्क रखता है और पूर्ण विश्वसनीय माना जा सकता है। ऐसा सज्जन प्रो. पूर्ण सिंह के अतिरिक्त भला अन्य कौन हो सकता है?

प्रो. पूर्ण सिंह ने स्वेच्छा से अपना नाम 'ग़दर' के सम्पादक मण्डल में नहीं दिया था। इनके चार छः लेख ही इस में छपे होंगे। लाला हरदयाल के अमेरिका छोड़ जाने के बाद सम्भवतः प्रोफ़ेसर साहब ने भेद खुल जाने के डर से लेखादि भेजने भी बन्द कर दिए हों। किन्तु जिन दिनों लाला जी यूनानी इतिहास एवं संस्कृति की बात कर रहे थे, उन्हीं दिनों प्रोफ़ेसर साहब भी इसी सभ्यता की खोज में निमग्न थे। ये तथ्य प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह और लाला हरदयाल में परस्पर अटूट सम्बन्ध जोड़ते हैं।[68]

राजयोग : दून-वादी के स्वास्थ्यवर्धक वातावरण में दिन काटने वाले पंजाबी सरदार की विशालहृदयता और वात्सल्यभाव का भरपेट लाभ उठाया जा रहा था। बिन बुलाए महमानों का जमघट, ऊपर से वित्तीय झंझट, फलतः घर में रोज़-रोज़ की खटपट। कम्बल को छोड़ना चाहें पर कम्बल न छोड़ने पाए वाली स्थिति। सरकारी नौकरी के बाद का ख़ालीपन। पत्नी की नौकरी और पेंशन की थोड़ी-सी आय से बड़े परिवार के दैनिक ख़र्च ही पूरे न होते थे। साहित्य-प्रकाशन का कई जुगाड़ न मिलने के कारण भावुक हृदय कलाकार मन-मसोस कर

68. Puran used to tell us that this nomadic tribe of the janglis—these people of invincible courage were supposed to be the descendents of the Greek soldiers who came over with Alexander the Great.

—Basant Kumari Singh : *Reminiscences of Puran Singh*, P. 69.

रह जाता। इन सभी कारणों के कसकते कांटों ने कवि के कोमल हृदय को कुरेदा। कर्मपथ से विचलित होकर दोबारा संन्यासी बनने के लिए कदापि नहीं, प्रत्युत् गृहस्थाश्रम के दायित्वों को सच्चे अर्थों में निभाने के निमित्त कुछ कर गुज़रने के उद्देश्य से।

सन् 1912 में स्यालकोट में पांचवीं सिक्ख ऐजूकेशनल कॉन्फ्रेंस में प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह भी सम्मिलित हुए थे। शिक्षा सम्मेलन के प्रधान तत्कालीन पटियाला रियासत के गृहमन्त्री—सरदार जोगिन्दर सिंह ने प्रोफ़ेसर साहब के विभिन्न धर्मों के ज्ञान की भूरि भूरि प्रशंसा की थी। वे इनके सिक्ख धर्म विषयक भाषण से अत्यन्त प्रभावित हुए थे।[69] ऐसे गुणज्ञ से घनिष्ठता बढ़ जाना स्वाभाविक बात थी। सम्भव है प्रोफ़ेसर साहब ने इसी आधार पर सन् 1918 में पटियाला जाने का निश्चय किया हो। प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह जैसे मेधावी और अनुभवी व्यक्ति के लिए उस समय अपने भाग्य-परीक्षण हेतु निम्नलिखित कार्य-क्षेत्र विद्यमान थे :

(i) विद्यादान के लिए सन् 1870 में बना महेन्द्रा कालेज; जो कि लाहौर और दिल्ली के बीच एकमात्र डिग्री कॉलेज था।[70]

(ii) पुस्तक प्रकाशन के लिए प्रसिद्ध मुंशी नवल किशोर का प्रेस।[71]

(iii) सन् 1910 से पटियाला रियासत की ओर से छपने वाले 'पटियाला गज़ट'[72] नामक पंजाबी साप्ताहिक में सम्पादकीय कार्य मिलने की सम्भावना।

---

69. अमरजीत सिंघ ढिल्लों (संपा.) प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ : इक्क शरधाँजली (भाई जोध सिंह : प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ) पृष्ठ 2।

70. (a) Mahendra College Circular.
(b) Mahendra College, Patiala's Prospectus (1970-71).

71. Patiala and its Historical Surroundings, Page 22.

72. सरकार पटियाला का यह गज़ट 16 ज्येष्ठ, संवत् 1967, नानक शाही 441, तदनुसार 29 मई, 1901 को आरंभ हुआ। यह किसी रियासत की ओर से गुरुमुखी अक्षरों में पंजाबी बोली का समाचार पत्र था।
—पंजाबी पत्तर कला, पृष्ठ 46.

(iv) पटियाला के महाराजा श्री भूपेन्द्रसिंह की वेदान्त, दर्शन एवं विज्ञान में विशेष रुचि होने के कारण विभिन्न धर्म-सम्मेलनों में निरन्तर आयोजनों के समय[73] एकत्रित विद्वत्समाज से मिलकर आध्यात्मिक विकास की आकांक्षा ।

(v) पटियाला घराने के संगीतज्ञों[74] के सम्पर्क से मायादेवी को संगीत ज्ञान में विशेष निपुणता प्राप्त होने की अभिलाषा ।

(vi) पटियाला नरेश द्वारा कवियों और लेखकों को विशेष सम्मान देने[75] और राजभाषा पंजाबी होने के आधार पर पंजाबी के लेखक तथा बहुभाषाविज्ञ साहित्यकार को प्रतिभानुकूल कार्यक्षेत्र के प्राप्त होने की अभिलाषा ।

(vii) नौकरी के यथोचित पद की प्राप्ति के साथ-साथ लाला

---

73. The Maharaja used to get absorbed in philosophical, religious and political conferences, which lasted weeks and months, sometimes the whole day and night.

—Diwan Jarmany Dass : *Maharaja,* Page 9.

74. Ever since the days of Baba Ala Singh, the successive rulers have been great patrons of music. As a result of their patronage, a distinctive branch of music, called 'the Patiala Ghrana,' or the Patiala School of Music, came into existance and it has held its own upto the present time...Maharaja Bhupinder Singh (1900-38) opened a new department of music and dance which accompanied the ruler wherever he went on tour.

—*Patiala and its Historical Surroundings*, P. 30.

75. Though the poets of Urdu and Hindi Languages were not so well patronized elsewhere as in the Maharaja's court they were preferred to other guests and were much honoured in every respect.

—Diwan Jarmany Dass : *Maharaja*, P. 8.

हरदयाल की पत्नी की देख-रेख, जिसे वे पटियाला छोड़ गए थे।[76]

सन् 1918 में प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के पटियाला जाने और धन प्राप्त करने का उल्लेख श्रीमती मायादेवी के संस्मरणों में ईदृश हुआ है :

"स्वामी जी पटियाला के राजा के पास जाने के लिए तैयार हुए। किन्तु रियासतें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। मैंने कहा—'न तो मुझे रियासत में जाना है न रियासत का रुपया अपने लिए व्यवहार में लाना है। पर वे किसी की न मानते थे, पटियाला चले ही गए।[77]

'महाराजा' ग्रंथ में भारतीय राजाओं के जीवन, प्रेम और कुचक्रों का कच्चा चिट्ठा खोलने वाले दीवान जरमनी दास उन दिनों महाराजा भूपेन्द्र सिंह के विश्वसनीय मन्त्रियों में से थे। वे कृषि, उद्योग और वन विभागों के अतिरिक्त महाराजा पटियाला के स्वास्थ्य विषयक मामलों और भेंट कार्यों (Minister-in-waiting in charge of Maharaja's health) को भी सम्भालते थे। इन्हीं दीवान साहब ने अपनी पुस्तक में भारत विख्यात, पंजाब के एक प्रसिद्ध कवि द्वारा वित्तीय अनुदान-

---

76. पूना से हरदयाल जी दिल्ली गए और वहाँ से पंजाब। अपने जीवन साथी को वे पटियाला ले गए। दोनों का उनके रिश्तेदारों ने आश्चर्यपूर्ण आँखों से स्वागत किया। अमरीकी मासिक 'ओपन कोर्ट' (मार्च, 1912) के अनुसार अपनी पत्नी से अनुज्ञा लेकर लाला जी ने संन्यासी बनने का निश्चय किया...... वे अपने देशवासियों की नैतिक एवं नागरिक शिक्षा को अपना जीवन समर्पित करना चाहते थे। यह सुनकर लाला जी के ससुराल वालों, विशेषकर ससुर ने आंसू बहाने शुरू किए......श्रीमती सुन्दररानी के प्रथम सन्तान (जो अंतिम सिद्ध हुई) होने वाली थी। परन्तु धोती कुरते में भारतीय राष्ट्रवाद के घुमक्कड़ संन्यासी तो वज्र थे। लाला जी पटियाला से चल दिए......इसके पश्चात् अपने जीवन-साथी से एक बार भी मिलने का अवसर न मिला। अपनी पुत्री का मुख तो वे अपने जीवन में एक बार भी न देख सके।
—धर्मवीर : लाला हरदयाल पृष्ठ 80

77. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता, पृष्ठ 84

याचना के लिए पटियाला के राज दरबार में आने का विस्तृत व्यौरा इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

"एक दिन पंजाब का एक सुप्रसिद्ध कवि, जिसने कविता की ऐसी पुस्तकें लिख रखी थीं जो कि सारे भारत में लोकप्रिय थीं, पटियाला पहुंचा और मुझे बताया कि धनाभाव के कारण वह महाराजा से कुछ वित्तीय सहायता चाहता है। मैंने तत्परता पूर्वक महाराजा को सूचित किया और कवि को भेंट के लिए आमन्त्रित कर लिया गया। कवि चाहता था कि उसे 300 रुपए प्रति मास उपहार के रूप में तीन-चार महीने मिलते रहें, जब तक कि वह अपनी पुस्तकें छाप कर आत्मनिर्भर न हो जाए। महाराजा ने उस से थोड़ी देर बात की और उससे पूछा कि अपने जीवन-यापन के लिए उसे क्या चाहिए। उसने कहा—"श्रीमन्त ! मैं केवल लगभग 300 रुपया चाहता हूं और इतनी ही रक़म काफ़ी होगी।"[78] उसने इसी उपलक्ष में एक कविता पढ़ी। इसे सुनते ही महाराज ने अपने जेब खर्च अधिकारी (Privy Purse Officer) कर्नल गुरदयाल सिंह ढिल्लों को कवि के लिए आजीवन एक हज़ार रुपया प्रति मास देने का आदेश लिखने के निमित्त कहा। महाराजा की इस उदारता पर कवि सकपका गया और धन्यवाद पूर्ण एक कविता और पढ़ दी। महाराजा की मृत्यु पर्यन्त कवि निरन्तर उसी सरकारी खाते से भत्ता प्राप्त करता रहा।"[79]

श्रीमती मायादेवी के संस्मरणों से इस तथ्य का बहिर्साक्ष्य मिल जाता है, यथा :

"पटियाला जा कर दूसरे महीने तीन हज़ार रुपए का बीमा किया हुआ पत्र भेजा। मैंने वापिस कर दिया और एक अलग पत्र लिखा कि मैं रियासती रुपए का प्रयोग नहीं करूंगी।[80]

---

78. 'Your Highness, I only want about Rs. 300/- and that amount will suffice.' से कवि के संतोषी स्वभाव का आभास कराया गया है।

79. Diwan Jarmany Das : *Maharaja*, Page 9-10.

80. (क) महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता, पृष्ठ 84।

(ख) प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह की पटियाला यात्रा के अनुभवों के विषय में देखिए 'प्रणयन शक्ति' शीर्षक अध्याय का 'राजयोग का रहस्योद्घाटन' उपखंड।

इन वर्णनों के तन्तुओं को मिलाने से यह निश्चित हो जाता है कि यह अज्ञातनामा कवि प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ही थे। किन्तु दीवान साहब के 'आजीवन भत्ते' वाले वक्तव्य का निराकरण माया देवी जी के संस्मरणों के निम्नोक्त अंशों से भली भांति हो जाता है :

"स्वामी जी ने पटियाला में दफ्तर आदि खोल दिए थे। नौकर चाकर रख लिए थे। उन सभी को छोड़कर राजा को मिले बिना ही लगभग पाँच महीने में ही वापिस आ गए। आकर कहने लगे— "माया ! तुम सच्ची हो। पटियाला में तो मेरा दम घुट गया था।"

एक दिन दफ्तर के मुंशी का पत्र मिला, "सरदार साहिब जी, सुना था कि शेर का मारा शिकार गीदड़ बहुत दिनों तक खाते रहते हैं। आपने जो शिकार मारा था, आज नौ महीने हो गए हैं, हम मज़े से खा रहे हैं—ना काम ना काज, तनख़ाह (वेतन) ले रहे हैं।"[81]

महाराजा भूपेन्द्र सिंह जहां धार्मिक वृत्ति के उदारहृदय व्यक्ति थे, वहां पंडित प्रकाशानन्द झा की तांत्रिक सिद्धियों में पड़कर हास-विलास में अधिक मत्त रहने लगे थे। इसी कारण सारा राजकाज ठप्प हो गया था।[82] आश्चर्य नहीं कि मायादेवी जी को, इस रियासती वातावरण में पहुँचे पूर्ण सिंह जी के सम्बन्ध में, यह डर बना रहा हो कि कहीं इन्होंने तांत्रिकों के विषय में राजा को कोई उद्दण्डता भरी बात कह दी तो लेने के देने पड़ जाएंगे। किन्तु साधु स्वभाव के पूर्ण सिंह जी 'सुबह का भूला शाम को घर आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते' की उक्ति को चरितार्थ करके सहधर्मिणी की दूरदर्शिता पर मुग्ध हो उठे।

गुर–'सिक्ख' : फरवरी, 1902 से लेकर अक्तूबर 1906 (स्वामी रामतीर्थ के निधन तक) प्रोफ़ेसर साहब का स्वामी जी से अटूट सम्बन्ध बना रहा। स्वामी जी के सान फ्रांसिसको में चले जाने पर जापान निवासी पूर्ण सिंह जी आकार, चिन्तन और भाषण की दृष्टि से हू बहू रामतीर्थ जी के समान अपने आप को आभासित करने लगे थे।[83] भारत लौट आने पर जब भी इन दोनों महानुभावों की कहीं भी परस्पर भेंट

81. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ—जीवनी ते कविता, पृष्ठ 84।
82. Diwan Jarmany Das : *Maharaja*, Page 47.
83. Puran Singh : *On Paths of Life*, Page 114.

होती तो स्वामी जी अपने भक्तों से यही कहते कि "पूर्ण" मेरा ही रूप है। फलतः रामतीर्थ जी के भक्त भी पूर्ण सिंह जी के प्रति उसी प्रकार के भक्तिभाव का प्रदर्शन करते जैसा उनके हृदय में स्वामी जी के लिए था। [84]

पांचवें सिक्ख शैक्षिक सम्मेलन के उपरान्त प्रोफ़ेसर साहब के जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन आ गया। वे नाम के ही पूर्ण सिंह नहीं रहे बल्कि केश-दाढ़ी रखकर 'पूरे सिक्ख' बन गए। जीवन में यह नया मोड़ पंजाबी के प्रसिद्ध लेखक और सम्पादक भाई वीर सिंह के मार्ग-दर्शन का फल था।[85] विवाह के समय बिरादरी के दबाव और लाजां बहन के पति तेजा सिंह की घुड़कियों के बावजूद भी टस से मस न होने वाले प्रोफ़ेसर साहब में एकाएक परिवर्तन उन्हें स्वयमेव एक विचित्र घटना लगी। गुरवाणी की सूक्ति 'आपणा मूल पहिचाण' का अक्षरशः और शब्दानुशब्द अर्थ समझाने वाले भाई वीर सिंह को प्रोफ़ेसर साहब ने प्रशस्तिगीत रूपी जो माला पहनाई उसकी उज्ज्वल मणियां इन काव्य रंगों में मिलती हैं :

इक वेर अचनचेत
मैं ढहि पई साँ।
ढट्ठी सा मैं टुरदी टुरदी
पता नहीं किभ होइआ, ठेडा जिहा वज्जा,

---

84. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता, पृष्ठ 44।

85. अप्रैल 1912 में स्यालकोट की सिक्ख कॉन्फ्रेंस के अवसर पर भाई साहब भाई वीर सिंह जी से भेंट ने उनके दिल में बड़ी तबदीली ला दी।...जब व्याख्यान देकर बैठने लगे तब भाई साहब वीर सिंह जी ने अपने पास बैठा लिया और बहुत खुश होकर सिर पर हाथ फेरने लगे। भाई साहब ने कहा —"तुम्हारे बाल कितने मुलायम हैं। हिन्दुओं के बाल तो कड़े हो जाते हैं। फिर हाथ पकड़ कर अपने ठिकाने पर ले गए और एक-साथ भोजन किया ......जिस रूप रंग में उन्हें स्यालकोट भेजा था, वापिसी पर उस रूप में नहीं थे। किसी चिंता मे डूबे थे। मुझ से कहने लगे—"हम अब बाल नहीं कटवाएंगे। भाई साहब ने मेरे सिर पर हाथ फेरा है, अब में अन्य किसी को केश काटने के लिए हाथ नहीं लगाने दूंगा—वही, पृष्ठ 74-75

मैं ढट्ठी धें दे के,
पर मैंनूं पुड़छिआ
ओस ने आपणी बाहाँ विच्च,
दूरों बाहां खोल्ह के आइआ।
मैं तां लग्ग ओह्दी छाती नाल फड़कदी सां
वांग अचनचेत फड़ी किसी हैरान पशेमान होई घुग्गी दे,
ते डर घुग्गी वांग लग्ग उह्दी छाती, मेरा निक्का
जिहा सीना कम्बदा, फड़कदा, धड़कदा।
मैं ताँ उलझ गई ओथे फड़ी जाल जहे विच्च।
मैं तां इक्क वेरी उहनूं इउं मिली सां।

(खुल्हे मैदान)

भाई वीर सिंह जी और प्रो. पूर्ण सिंह का यह स्नेह-स्निग्ध सूत्र दो सत्संगी भाइयों जैसा था। किन्तु स्वामी रामतीर्थ के परम शिष्य स्वामी आर. एस. नारायणस्वामी ने भाई वीर सिंह को पूर्ण सिंह जी का देहधारी गुरु बना डाला।[86] यह एकदम अनुचित लांछन था। गुरु गोबिन्द सिंह जी के पंच ककारों (कच्छ, केश, कड़ा, कृपाण, कंघा) को धारण करने वाले, 'किरत करो और वंड छक्को' में निष्ठा रखने वाले सच्चे सिक्ख एक मात्र 'श्री गुरु ग्रंथ साहिब जी' को ही गुरु पद पर प्रतिष्ठित करते हैं। वे गुरु नानक देव के स्वरूप दसों गुरुओं के आगे नतमस्तक होते हैं। किसी देहधारी मनुष्य रूप गुरु में उनकी किंचित् भी आस्था नहीं हो सकती। फिर भी पूर्ण सिंह जी के जीवन सम्बन्धी

---

86. Mr. Puran had a dumb devotion towards Rama, and it continued till he was in physical garb dropped off, Puran was, as if clipped of his wings. It was a great shock...his emotional heart was in search of another physical Guru. After four or five years he found one in Sikh religion. Now he became a Sikh through and through. He grew his hair, put on the bangle and began to lead the life of devout Sikh, this marks the beginning of his old age, for now he put on glasses, and began to view as a Sikh rather than a man, devoid of all isms.

—Puran Singh : *The Story of Swami Rama*, Page XVI (Revised Edition 1974).

तथ्यों के भारी अम्बार से हमें आशा रूपी एक तिनका मिला है, जिस का सहारा लेकर हम संदेहों की इस नदी से अपने चरितनायक की दिवंगत आत्मा को पार उतारने का क्षुद्र-सा प्रयास करते हैं। विचारणीय प्रसंग निम्नलिखित हैं :

(क) प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह किशोरावस्था में संन्यास के प्रपंचों को पहचानकर चढ़ती जवानी में गृहस्थी बने थे। अनेकशः आपदाओं को झेलते हुए भी इन्होंने गृहस्थाश्रम को कदापि बोझ न समझा। किन्तु उधर स्वामी रामतीर्थ बसी-बसाई गृहस्थी को उजाड़कर साधु-वृत्ति की ओर उन्मुख हुए थे। जीवट वाले व्यक्ति कर्मठ होते हैं। उन्हें अंधानुकरण-स्वभाव वाला अनुयायी नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि नवम्बर 1905 में जब स्वामी नारायणस्वामी का पत्र मिलने पर पूर्ण सिंह टीहरी के वशिष्ट आश्रम में रामतीर्थ जी के दर्शनार्थ गए, उस समय उनके परिवार-उपेक्षा के काण्ड[87] ने प्रोफ़ेसर साहब के हृदय में वितृष्णा का अवश्यमेव बीजवपन कर दिया था।

---

87. स्वामी जी हैरान रह गए कि एक संन्यासी को परिवार मिलने आ रहा है। स्वामी जी ने कहा, "पूर्ण ! उनको बोलो, कि वोह जहाँ से आए हैं वहाँ चले जाएं।"

स्वामी पूर्ण को क्रोध आ गया। उन्होंने कहा—"स्वामी जी ! यह नहीं हो सकता, आपको उनमें भिन्न भेद क्यों मालूम हुआ। जैसे और सब आपको मिल सकते हैं, क्या वोह इन्सान नहीं हैं ? उनको जरूर मिलना चाहिए। मैं यह बात कभी नहीं होने दूंगा।

स्वामी राम ने कहा—"पूर्ण ! तुम जो कहते हो, अच्छा ! पाँच मिनट के लिए आ जाएं।"

वह पतली दुबली मैले वेश में कांपती हुई बच्चों सहित, स्वामी जी के कमरे में पहुंची और आकर सिर झुकाया। स्वामी राम दूर ही होते गए, कहीं छू ही न जाएं।

स्वामी पूर्ण ने कहा—"स्वामी जी ! आप ने तो जाति का भिन्न भेद दूर कर रखा है, यह क्या ?"

— महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता, पृष्ठ 52।

फिर भी अपने को प्रख्यात करने वाले स्वामी रामतीर्थ के प्रति कृतज्ञतावश इन्होंने किसी प्रकार का अनादर-भाव नहीं दिखाया। पूर्ण सिंह जी की चीख-पुकार पर स्वामी रामतीर्थ जी के नदी में डूबे शव का जल पर तैरने का चामत्कारिक वर्णन उनके प्रति आभार भरपूर स्नेह का सच्चा नमूना ही कहा जाएगा।

(ख) प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह कथनी और करनी की एकरूपता में विश्वास रखते थे। ये अपनी आंखों के सामने इस सिद्धांत की धज्जियाँ उड़ते देख चुके थे।[88] क्या यह सच नहीं कि उनके साथी अंग्रेज़ों के विरुद्ध क्रांति का बीड़ा उठाकर पुलिस और गुप्तचरों की आंखों में धूल झोंकने के लिए मूंछ-दाढ़ी बढ़ाकर 'सिक्खी बाने' का दुरुपयोग कर रहे थे। प्रोफ़ेसर साहब का हृदय स्फटिक मणि के समान स्वच्छ था। उन का देश प्रेम सर्प के शिरोभूषण के समान ज्योतिर्मान था, किन्तु हृदय सर्प के विष से बुझा हुआ वाण न था। ये विचारों से सच्चे सिक्ख थे, इसलिए दिखावा नहीं करना चाहते थे। क्रांति का बिगुल बजाने वालों की वे खुले आम सहायता करते थे, किन्तु सिक्खी सज-धज के साथ लुक छिपकर अंग्रेज़ी साम्राज्य के विरुद्ध कुचक्र चलाना इन्हें एकदम नापसंद था। आश्चर्य नहीं कि 'बोस काण्ड' के कारण राजनीति से इनका मन खट्टा हो गया हो। फलतः ये धीरे धीरे क्रांतिकारियों से कटते चले गए हों। ऐसी स्थिति में भावुक कवि के हृदय पर जन्मजात धार्मिक गुणों का हावी हो जाना नितान्त स्वाभाविक था।

(ग) भले ही पूर्ण सिंह जी बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट रहे हों अथवा रुण्ड मुण्ड वेदांती साधु बने रहे हों, फिर भी सिक्ख धर्म के गुणों का इन्हें निरन्तर स्मरण रहा। विवाह के समय घर में हुए उत्पात के बावजूद भी इन्होंने सिक्ख धर्म पर कभी भी आक्षेप नहीं किया। प्रत्युत्

---

88. मज़दूरी और फ़कीरी का महत्व थोड़ा नहीं। मज़दूरी और फ़कीरी मनुष्य के विकास के लिए परमावश्यक हैं।.........कितने ही उम्र भर बासी फ़कीरी में मग्न रहते हैं; परन्तु इस प्रकार मग्न होना किस काम का? ....निकम्मे बैठे हुए चिन्तन करते रहना, अथवा बिना काम किए, शुद्ध विचार का दावा करना, मानो सोते सोते खुर्राटे मारना है। ('मजदूरी और प्रेम निबन्ध)

इन्होंने तो 'जनम साखिग्रों' की कथाग्रों के हिन्दीकरण द्वारा श्री गुरु नानक देव के संदेशों का प्रचार ग्रौर भी तन्मयता से किया। लाल ग्रौर सफ़ेद वर्णन-योजना के प्रतीकों के ग्राधार पर क्रूरता एवं कोमलता के भाव गहराने के लिए इन्होंने 'मजदूरी ग्रौर प्रेम' (प्रकाशन तिथि, सितम्बर 1912) में मलिक भागो ग्रौर भाई लालो के दृष्टाँत को मुखरित किया। ये ग्रपनी सद्‌गृहस्था पत्नी के मुख से 'जपु साहिब' ग्रौर 'सुखमनी साहिब' के पाठ सुनकर प्रसन्न भी होते रहे।[89]

(घ) भाई वीर सिंह के दर्शन से प्रतिभा-सम्पन्न ग्रौर ग्रार्थिक दृष्टि से विपन्न एक साहित्य-साधक को निष्कपट सहयोगी की प्राप्ति से बढ़कर ग्रौर कौनसा सम्मान जीवन में मिल सकता था ? ग्रधेड़ावस्था के स्वामी रामतीर्थ के जीवन के ग्रभावों[90] से छुटकारा पाने के लिए इन्हें एक सत्संगी सहज मित्र मिल गया था। मुस्टण्डे साधुग्रों को ग्रापसी लट्ठबाज़ी ग्रौर साहित्यकारों के परस्पर सिर फुटौवल का व्यंग्यात्मक चित्र इन्होंने ग्रपने 'सच्ची वीरता' निबन्ध में निम्न प्रकारेण उतारा ही था :

"एक दफ़े दो वीर पुरुष ग्रकबर के दरबार में ग्राए। वे लोग रोजगार की तलाश में थे। ग्रकबर ने कहा—"ग्रपनी-ग्रपनी वीरता का सबूत दो !" बादशाह ने कैसी मूर्खता की। वीरता का भला वे क्या सबूत देते ? परन्तु दोनों ने तलवारें निकाल लीं ग्रौर एक दूसरे को सामने कर उनकी तेज़ धार पर दौड़ गए ग्रौर वहीं राजा

---

89. बेहोश जिहा घड़ा हुंदा जाँदा

× × ×

गहल मेरा चक्क ग्रोहनू घर लै ग्राऊंदी

ते राह सारा गाऊंदा जपु साहिब सारा ते घर मेरे ग्राऊंदी

× × ×

ग्राटा जद छारादी,

ते उचारदा लैग्र नाल सुखमनी साहिब सारा।

("घर की गहल चंगी'—'खुल्हे मैदान' से)

90. Swami Rama died the death of Joan of Arc .....He died having cut himself from the Sat Sang of his own levels, otherwise men like him learn with eternal youth even in old age. —Puran Singh : *The Story of Swami Rama*, Page 272.

के सामने क्षण भर में अपने खून में ढेर हो गए।'

इन्हें नामानुरूप गुण वाले भाई वीर सिंह में परस्पर आत्म-समर्पण के वही गुण लक्षित हुए, जिनके सपने प्रोफ़ेसर साहब ने उनसे भेंट से चार-पाँच वर्ष पहले देखे थे :—

"ऐसे दैवी वीर रुपया, पैसा, माल, धन का दान नहीं दिया करते। जब वे दान देने की इच्छा करते हैं तब अपने आप को हवन कर देते हैं। बुद्ध महाराज ने जब एक राजा को मृग मारते देखा तब अपना शरीर आगे कर दिया जिसमें मृग बच जाय, बुद्ध का शरीर चाहे चला जाय। ऐसे लोग कभी बड़े मौकों का इन्तज़ार नहीं करते, मौकों को ही बड़ा बना देते हैं।"

(सच्ची वीरता)

सचमुच इन दोनों मित्रों ने एकमन-एकचित्त होकर 'छोटे मौक़ों को बड़े मौक़े बना लिया।[91] साहित्यिक भूख की तृप्ति के लिए प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह को भाई वीर सिंह द्वारा संपादित 'खालसा समाचार' (अमृतसर से प्रकाशित पत्र) मिल गया। पंजाबी कवि भाई वीर सिंह को अंग्रेज़ी साहित्य जगत् में स्थान पाने के लिए पूर्ण सिंह जी का भरपूर योगदान उपलब्ध हुआ।[92] परस्पर सहयोग का यह स्नेह-सूत्र सहोदर भ्रातृ-भाव की सीमाएं स्पर्श करने लगा। इसी के फलस्वरूप भाई वीर सिंह के छोटे भाई डॉ. बलबीर सिंह भी इनके पास रहने लगे।

वैज्ञानिक प्रयोगों की दूसरी किश्त : पटियाला से लौटने के बाद आपने बम्बई के एक सेठ के साथ किसी प्राविधिक (Technical) कार्य के लिए इक़रारनामा किया। किन्तु कुछ ही दिनों के बाद इन काग़ज़ात

---

91. His personal and literary friendship with Bhai Vir Singh was a rewarding one that proved fruitful for both the poets and brought out the best in their writings.

—Basant Kumari Singh : *Reminiscences of Puran Singh*, Page VII (Introduction).

92. भाई वीर सिंह के काव्य 'लहिराँ दे हार' की कुछ कविताओं का अनुवाद प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'NARGAS' शीर्षक ग्रंथ में प्रस्तुत किया है।

को फाड़कर फेंक दिया। तदनंतर इन्होंने ग्वालियर रियासत के राजा सिंधिया के यहां सन् 1919-23 तक नौकरी की। वहां रोशा घास और युकलिपटस के वृक्ष उगाए। भारत सरकार के वन विभाग ने पचास वर्ष के बाद इस कार्य में हाथ डालकर प्रोफ़ेसर साहब के वैज्ञानिक सूत्रों के आधार पर यथार्थ उपलब्धियां प्राप्त की हैं। पूर्ण सिंह जी का सर्वप्रसिद्ध आविष्कार खांड साफ़ करने की नई प्रणाली है। यह आविष्कार मजीठिया सरदारों के सरैया स्थित (ज़िला गोरखपुर चीनी के कारखाने में सम्पन्न हुआ। हड्डियों के कारबन का प्रयोग किए बिना खांड साफ़ करने की नई विधि द्वारा इन्होंने 150 वर्ष से चली आ रही प्रणाली को मात दे दी। इस नवीन प्रणाली का एकस्व ((Patent) 'रंग-कप्प' के नामाधीन करवाया गया।[93]

सन् 1926 में ब्रिटिश सरकार ने प्रोफ़ेसर साहब के वैज्ञानिक अनुसंधानों की ख्याति से प्रभावित होकर शेखूपुरा ज़िले (वर्तमान पाकिस्तान) के (मुरब्बाबंदी सूचक) चक नम्बर 73/19 में 169 मुरब्बे भूमि रोशा घास उगाने के लिए मुफ़्त प्रदान कर दी। इस जंगली और ग़ैर आबाद जगह में खेती के द्वारा आपने जंगल में मंगल कर दिया। कहते हैं कि रोशा घास की भारी फ़सल के कारण इस स्थान का 'जड़ां वाला' नाम सचमुच सार्थक हो गया। इस घास से निकाला जाने वाला तेल विदेशों में भी निर्यात होने लगा। यहीं रहकर इन्होंने अपने अधिकांश साहित्य को अंतिम रूप दिया।

सन् 1928 में बाढ़ के कारण इनके पौधों को गहरी हानि पहुंची। खेतों में बाढ़ का पानी घुसने पर आप अपनी पाण्डुलिपियों का ट्रंक उठाकर मकान की छत पर चढ़ गए और बाढ़ उतरने तक घण्टों उनके सुरक्षार्थ बैठे रहे। सम्पत्ति के इस दुर्भाग्यपूर्ण विध्वंस को आपने दार्शनिक रंग में देखा और विशद चिंता-मुक्ति का साधन मानकर अपनी भावनाओं को काव्य-माला में सजा दिया।

सन 1930 में इन्हें क्षय रोग के कारण विवशतावश 'जड़ांवाला'

---

93. सरदार अमरजीत सिंह (संकलित) : प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ—इक्क शरधाँजली, पृष्ठ 101 [हरदेव सिंघ विरक लिखित 'साइंसदान पूरन सिंघ']

छोड़कर देहरादून में अपनी कोठी 'आइवन हो' में आना पड़ा। मानो यह नया निवास स्थान लौकिक शरीर पर आत्मिक विजय की हुँकार का प्रतीक था। ऐक्सरे करवाने पर ज्ञात हुआ कि आप गाउट, एलब्रामेडारिया और डायबेटोज (मधुमेह) रोगों से भी ग्रस्त थे। अनेक उपचारों के बावजूद भी लम्बी बीमारी के बाद इनका देहावसान 31 मार्च, 1931 को हो गया। डॉ. रंधावा के शब्दों में :

"इस प्रकार एक पंजाबी की तूफ़ानी वृत्ति (Stormy Career) का अन्त हो गया, जिसका साहित्यिक दत्तांश (Contribution) उतना ही महान है जितना रवीन्द्र नाथ ठाकुर और मुहम्मद इकबाल का।"[94]

सार–कथन : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह सीधे सादे, पवित्र विचारों के ईमानदार व्यक्ति थे। उनकी पुरानी पंजियों (Files) में ग्वालियर नरेश के यहां सेवाकाल का पड़ताल किया हुआ सन् 1922 के रोशा तेल विभाग का लेखा जोखा अब तक टगा हुआ है। सरदार साहब झूठे आक्षेप सहन नहीं कर पाते थे और अमानत में ख्यानत करने वालों पर बुरी तरह बरस पड़ते थे। भक्त ईसरदास से अनबन के समय सारे सामान की तोड़-फोड़, टीहरी के वज़ीर को साबुन का कारख़ाना बेचने के समय रियासत की ओर से हिसाब चुकता करने के लिए आने वाले इंजीनियर की छाती पर रुपयों की थैली पटक देना—इस बात का प्रमाण है कि आप लल्लो-चप्पो करने में विश्वास नहीं करते थे। संदेहशील ग्वालियर के राजा को 'कानों का कच्चा कहकर खरी-खोटी सुना देना इस साक्ष्य की प्रतिष्ठा करता है कि पूर्ण सिंह जी खुशामद पसंद आदमी नहीं थे।

विशाल हृदय प्रोफ़ेसर साहब आत्म विश्लेषण में आस्था रखते थे। जीवन की अन्तिम घड़ियों में इन्होंने देहरादून के सिविल सर्जन डॉ. दीवान सिंह से क्षमा-याचना करके किसी पुराने रोष का निवारण किया। गृहस्थी का भार वहन करने वाली मायादेवी के प्रति कभी-कभार किए गए अनाप-शनाप और सम्पर्क में आने वाले ज्ञात-अज्ञात व्यक्तियों की ओर की गई अवचेतन मन की कठोरता का प्रायश्चित

94. Puran Singh : *The Spirit of Oriental Poetry* (M.S. Randhawa's Foreword).

इन्होंने 'अचनचेत उडारीआं' नामक गद्यकाव्य में किया है। मानो कर्म बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए एक सच्चे गुर-सिक्ख ने गुरवाणी की इन तुकों की महिमा का प्रतिपादन किया हो :

> गिआन खण्ड महि, गिआनु परचण्डु।
> तिथै, नाद बिनोद कोड अनंदु॥
> सरम खंड की बाणी रूपु।
> तिथै घाड़ति घड़ीए, बहुतु अनूपु॥
> ता की गला, कथीआ न जाहि।
> जो को कहै, पिछै पछुताइ॥
> तिथै घड़ीऐ, सुरति मति मन बुधि।
> तिथै घड़ीऐ, सुरा सिधा की सुधि॥36॥

(जपुजी साहिब)

निःस्वार्थ प्रेम की प्रतिमूर्ति पूर्ण सिंह जी को मां के दूध के साथ स्नेह की गुड़ती मिली थी। सामान्य शिष्टाचार में लोग हाथ से हाथ मिलाकर अथवा सिर तक हाथ उठाकर परस्पर अभिवादन करते हैं। काम काज में सहयोग की सार्थकता स्थापित करने के लिए 'कन्धे-से-कन्धा मिला कर चलना' सूक्ति का प्रचलन हुआ है। किन्तु प्रोफ़ेसर साहब तो स्नेह की अनन्यता को आत्म-समर्पण तक पहुँचा देते थे। जब भी किसी को मिलते गलबाहीं डालकर। आप तो सीने से सीना जुड़ने को ही सच्चे स्नेह का संदर्शन मानते थे। स्वामी रामतीर्थ के प्रथम दर्शन के समय इन्होंने अपने आप को स्त्री रूप में अनुभव किया। भाई वीर सिंह के प्रति उपजे हुए विराट स्नेह को इन्होंने 'उनकी छाती और अपने छोटे-से-सीने' के मिलन भरे प्रतीक द्वारा चरितार्थ किया।

इनकी सांसारिक देह तो एक पुष्प-वाटिका के समान थी, जिसमें हृदय रूपी माली सदा प्रहरी बना रहता था। यही अज्ञान के अंधकार में भटकते मन को पश्चाताप का दीपक जलाकर आश्वस्त करता था। ज्ञान के उजाले में ममत्व, वात्सल्य और सौहार्द की विभिन्न रसायनों

से बनी खाद वाली मिट्टी से अर्जित स्वानुभूति की कमाई से इन्होंने एक मनोरम 'साहित्य-भवन' का निर्माण किया था। 'रूह' और 'स्पिरिट' के सुमेल से बने आध्यात्मिक रंगों से पुते इस सरस्वती केन्द्र के मुख्य द्वार पर बंधा वंदनवार साहित्य संगम के प्रत्येक तीर्थ यात्री के समक्ष इस शाश्वत वाणी का आह्वान करता है—'कला कला के लिए नहीं, कला जीवन के लिए होती है (**Art is not for art's sake, but art is for** life's sake)।

प्रणयन-शक्ति

पृष्ठभूमि : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह को शब्द की व्यंजना शक्ति का आभास बचपन से हो था। उनकी सहधर्मिणी श्रीमती माया देवी ने अपनी सास से जो तत्संबंधी घटना सुनी थी, उसका वर्णन 'जीवनी–पूरन सिंह दीआं यादां' में इस प्रकार किया गया है :—

"बे जी ने बताया कि छोटा-सा 'पूरन' पाँचवीं कक्षा में पढ़ता था। लिखते समय एक काग़ज़ हवा से उड़ गया। बहन से कहा—"वह काग़ज़ पकड़ा दो। बहन ने कहा—'अबे देती हूं (देनीआं वे)।' बस इतना सुनते ही स्वयं उठ खड़ा। बहन पर नाराज़ भी हुआ और पीटा भी।

जब माँ आई तो गंगा रोने लगी कि भापे (भाई !) ने मुझे मारा है। मां बेटों की अपेक्षा बेटियों का अधिक पक्ष लेती है। बेटे पर क्रोध प्रकट करने लगी—'तूने बहन को क्यों मारा ?'

बेटे ने कहा, 'बे ! तू बात तो सुन। लिखते समय मेरा काग़ज़ उड़ गया था। मैंने कहा—'ज़रा काग़ज़ पकड़ा दे, इसने पकड़ाया नहीं। मैंने उठकर काग़ज़ भी उठाया और हल्की-सी चपत भी जमा दी।'

बहन ने कहा—मैंने तो कहा था, देती हूं (देनीआं)।

पुत्र ने कहा—देख बे ! यह झूठ बोलती है। इसने कहा था—अबे ! देती हूं (देनीआं वे)। मतलब यह था मैं नहीं देती।'

× × ×

इस प्रकार कोई भी बात करता हो उसका 'पोला (थोथा) शब्द तुरन्त पकड़ लेते[1]।"

पूर्ण सिंह जी जब जापान में थे, तब इनको भेंट ओकाकुरा से

---

1. महिंदर सिंह रंधावा : पूरन सिंघ –जीवनी ते कविता, पृष्ठ 55

हुई। जापान के उस महान कलाकार ने इन्हें सम्बोधित किया—

"पूरन सान, मैं भारत के लिए हूं।[2]"

स्वामी रामतीर्थ के शब्दों की गुनगुनाहट से ही लेखक ने 'तू और मैं' के समन्वय का आभास प्राप्त करके उन्हें आत्म-समर्पण कर दिया था। किन्तु रामतीर्थ जी से ईर्ष्या करने वाले स्वामी परमतत्व अगम्य की व्यंग्योक्तियों से आत्म-चिंतक पूर्ण सिंह जी को अपने नाम की सार्थकता का विशेष आभास हुआ। एतदर्थ लेखक की 'आत्म कथा' का यह उद्धरण विचारणीय है :—

"तुम कौन हो ?

"पूरन। (पूरन=पूर्ण का संस्कृत में अर्थ है 'अशेष') !

"मूर्खता में पूर्ण ?

"हाँ, श्रीमन् !

"तुम अच्छे वेदांती हो ? मैं स्वामी परमतत्व अगम्य एम. ए. हूं। स्वामी रामतीर्थ मेरा शिष्य है। वह एक जोशीला युवक है। वह बहुत कम जानता है।

'मुझे बाद में ज्ञात हुआ कि यह एम. ए. परसर्ग, स्वामी रामतीर्थ की नक़ल में, उसके ऊंची ध्वनि से भरे लंबे नाम के साथ जोड़ा गया था।[3]

इसी दौरान श्रीमती वैलमेन को स्वामी रामतीर्थ द्वारा उच्चरित शांतिमय 'मां' शब्द से मानसिक सांत्वना प्राप्त हुई। इस महिला ने अपनी धीरज भरी हृदयावस्था को 'भीतरी उषा' (Inner Dawn) की

---

2. Puran San, I am for India.—Puran Singh : On Paths of life, Page 110.

3. Who are you ?"

"Puran", (Puran in Sanskrit means "the perfected")

"Perfected in folly ?"

"Yes Sir !"

"You are a good Vedantin ? I am Swami Paramtatva Aggmaya, M.A. Swami Rama is my disciple. He is a young enthusiast. He knows little."

I afterwards learnt that this M.A. suffixed to his long high sounding name was in imitation of Swami Ram Tirath. —Ibid, P. 117

उपमा प्रदान की थी। मानो एक प्रतिभावान युवक के लिए इन दो शब्दों ने प्रेरणा-दूत का कार्य किया। यही दो शब्द पूर्ण सिंह जी के समक्ष प्रखर ज्ञान के सूर्योदय का प्रतीक बन कर उभरे। फलतः "थंडरिंग डॉन" के संपादन के माध्यम से इनका कवि-हृदय विपुल माधुर्य-रस उंडेलने लगा। इन्होंने उक्त पत्र में प्रकाशित एक कविता में 'बरसते मेंह' (Falling Rain) के विषय में लिखा था—"वर्षा की डोरियां स्वर्ग और पृथ्वी को किंगरी (चेतनता रूपी वीणा की तारों में) बांधती हैं और बहती हवाएँ अपनी गति के साथ संगीत उत्पन्न करती हैं।[4] अन्तरिक्ष (रूपी स्वर्ग) से आने वाली वर्षा (रूपी) सागर की बूंदें पृथ्वी से मिलकर मानो ब्रह्म के चार कला वाले अनंतनाम पाद की सुंदर अभिव्यंजना कर रही हों।[5]

आत्म-प्रेरित कवि को अपनी इन काव्यमयी उक्तियों से यह पूर्ण विश्वास हो गया कि वह सर्वोच्च (Supreme) है और जो कुछ उसने लिखा है वह सही, सुन्दर और अशेष (Perfect) है। मानो यह 'अशेष' शब्द ही स्वामी 'अगम्य' [प्रो.साहब द्वारा प्रयुक्त शब्द Aggmaya=अग्ग (अग्नि)+माया=पैसे की आग (लोभी)] के व्यंग्यपूर्ण शब्द 'Perfected in folly' कटूक्ति का अमर मेधायुक्त उत्तर था। सरस्वती-प्रस्फुटन की यही फुसफुसाहट पूर्ण सिंह जी के लिए जीवन-संदेश बन गई और इन्होंने ज़मीन और आसमान के कलाबे मिलाने—पृथ्वी और आकाश की रिक्तता मिटाने—का संकल्प ले लिया[6]। उपनिषदों के बीजमंत्र ने

---

4. .... the rain strings joined Heaven & earth with the strings of a harp & the passing winds made music as they passed.
—Puran Singh : On Paths of Life, P. 115

5. ......भगवानिति तस्मै होवाच पृथ्वी कलान्तरिक्षं कला द्यौः कला समुद्रः कलैष वै सौम्य चतुष्कलः पादो ब्रह्मणो अनन्तवान्नाम ।।—छान्दोग्योपनिषद, 6/3

6. आकाश किझ इन्हाँ बाहाँ राहीं हिठाहाँ उतरदा ।
ते धरत किझ इन्हाँ बंद नैन राहीं उताहाँ नूं चढ़दी ।
किरत दे पारखी रमज़ाँ गुज्झीआँ छिप्पीआँ नूं टोलदे ।
नैनाँ वाले नैणाँ नाल तक्कदे ।

(बाक़ी अगले पृष्ठ पर)

'ईश्वर-स्वरूपा आत्मा को परमात्मा की संपूर्णता' के समान सर्वगुण सम्पन्न बनाने के लिए वेदांती कवि को आतुर कर दिया । मंगल-पाठ के ये शब्द :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

—अध्यात्मोपनिषद्; मन्त्रिकोपनिषद्

इनके कानों में निरन्तर निनादित होते रहे । ये पल-पल इनके रोम-रोम में फुरहरी पैदा करते और पग-पग पर इनके हृदय में कुछ कर गुज़रने के लिए हलचल मचाते । इसी आन्तरिक आवेग और अदम्य आवेश की पवित्र गंगा बह निकली हिन्दी, पंजाबी एवं अंग्रेज़ी की साहित्य-साधना के लिए कृतसंकल्प हो कर । इस कार्यान्वयन में मेधावी कलाकार का संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी की जलधाराओं से सिंचित विद्यार्थी जीवन का पौधा अपने पूरे जोबन में फलने फूलने लगा ।

साहित्यिक विधाओं के विधाता के रूप में पूर्ण सिंह जी की अवतारणा सर्व प्रथम हिन्दी में हुई । इनके प्रखर ज्ञान की ज्योति क्या थी ! मानो पराधीन भारत के साहित्य पिपासु हिन्दी भक्तों के लिए सच्ची 'ब्रह्मकांति' थी । ऐसी प्रभाज्योति जिसने पूर्व और पश्चिम की सीमाओं का अतिवाहन करके सच्चे श्रम गौरव से समन्वयवाद का तुमुलनाद कर दिया । हिन्दी-सेवी मुक्तकंठ से पूर्ण सिंह जी के प्रशंसा-गीत गाने लगे, यथा :

(i) सरदार पूर्ण सिंह...के इन लेखों की शैली भाव-प्रधान है । इनमें लाक्षणिकता के द्वारा उनकी भाषा की शक्ति और भावों की विभूति की अत्यन्त मनोहर छटा दीख पड़ती है । इस नई शैली के प्रवर्तक प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह थे । अभी तक उनकी समकक्षता करने की

(पिछले पृष्ठ का शेषाँश)

लकीराँ ते रेखाँ ते घूराँ ते मंद मंद निखाणी हासे नूं पछाणदे ।

[आकाश किस प्रकार इस भुजाबल से नीचे उतरता है और पृथ्वी किस प्रकार इन मुंदी (समाधिस्थ) आँखों से ऊपर चढ़ती है । कला-कौशल के पारखी इन गुह्य व्यंग्योक्तियों (संकेतों) की खोज करते हैं । सजग व्यक्ति इसका दर्शन करते हैं । रेखांकित भृकुटियों द्वारा प्रकट हल्की ईश्वरीय मुस्कान को पहचानते हैं ।] —बुद्ध जी दा बुत्त, धिआना बुद्ध : 'खुल्हे घुंड' से

ग्रोर किसी की प्रवृत्ति नहीं दीख पड़ती...हिन्दी निबन्धों में वे एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं।[7]

(ii) उनमें (अध्यापक पूर्ण सिंह के निबन्धों में) विचारों और भावों को एक अनूठे ढंग से मिश्रित करने वाली एक नई शैली मिलती है। उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य-साहित्य में एक नई चीज़ थी... भाषा और भाव की एक नई विभूति उन्होंने सामने रखी।[8]

(iii) प्रो. पूर्ण सिंह सिख जाति के ही नहीं, सम्पूर्ण देश के एक पुरुषरत्न थे। ... ... प्रो. पूर्ण सिंह केवल पंजाबी और इंगलिश के ही उच्चकोटि के लेखक न थे, वह हिन्दी और उर्दू के भी बहुत ही अद्भुत लेखक थे।... जिसका शीर्षक कन्यादान था और जिसका दूसरा नाम 'नयनों की गंगा' है इस लेख की उस समय धूम मच गई थी।[9]

जनवरी–फरवरी, 1909 से मई सन् 1913 के बीच लगभग साढ़े चार वर्ष की अवधि में निबन्धकार महोदय जो छह रचनाएं दे पाए वे उनके पठन, मनन और निदिध्यासन की षट्ऋतु-परक शोभा को चतुर्दिक फैलाने में सक्षम हैं। इन वर्षों में लेखनी की मन्दगति—केवल वैज्ञानिक शोधों, हिन्दीतर भाषाओं की सामर्थ्यवृद्धि और 'भूखे पेट भजन न होय गोपाला' के सिद्धांत पर चलने वाले सद्गृहस्थ की आर्थिक उपलब्धियों पर—डेरा जमाने वाली व्यस्तताओं के कारण ही हो सकती है। अन्यथा इनकी तीव्रगति और विचार-प्रवाह की प्रशंसा इनके सम्पर्क में आने वाले महानुभावों के निम्नोक्त वचन-विलास में निहित है :

(क) एक बार प्रो. पूर्ण सिंह जी भाई साहब जी को मिलने अमृतसर आए। ...रात्रि में प्रोफ़ेसर साहब के बिस्तरे का प्रबन्ध किया, भोजन छकाया और फिर मैंने कहा : आपके लिए गर्म दूध ले आऊं। कहने लगे, पहले कुछ काग़ज़ और क़लम-दवात रख दो। मैंने फुल स्केप (काग़ज़ों) का एक दस्ता और क़लम दवात रख दी और दूध

---

7. डा. श्याम सुंदर दास: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 282
8. पं. रामचन्द्र शुक्ल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 312
9. प्रभात शास्त्री: सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के हिन्दी निबन्ध (पद्मसिंह शर्मा के विचार) पृष्ठ 21।

लाने के लिए अपनी कुटिया में चला गया। थोड़ी देर के बाद जब दूध लेकर लौटा तो आप उन काग़ज़ों पर अत्यन्त तीव्र प्रवाह में और मोटे-मोटे अक्षरों में लिखते जा रहे थे। फुल-स्केप काग़ज़ पूरे खुले हुए थे, पूरे आकार की लम्बी-लम्बी 17 इंच की पंक्तियों का निरन्तर प्रवाह चल रहा था। ... ... जब उनकी क़लम रुकी तो काग़ज़ों का सारा दस्ता लगभग समाप्त हो चुका था। मैंने कहा—'दूध ठण्डा हो गया है, मैं गर्म करवा लाऊँ।' कहने लगे—"ठण्डा ही दो और गिलास मुंह को लगाकर छक गए। और सभी काग़ज़ इकट्ठे करके मुझे सौंपते हुए कहा—"इन्हें कल भाई सेवा सिंह (सम्पादक : खालसा समाचार) को दे देना। वह मुझसे लेख माँगता रहता है, आज मौक़ा मिला था, एक लिख दिया है।

इस लेख का शीर्षक "जीवन मन्त्रां दीआं बेअदबीआं"[10] था। अगली सुबह...वह लेख भाई सेवा सिंह जी को दे दिया। वे बहुत प्रसन्न हुए। वह लेख इतना लंबा था कि भाई सेवा सिंह जी ने खालसा समाचार के दो अंकों में आधा-आधा करके छापा।[11]

आश्चर्य नहीं कि वेदांती गुरु स्वामी रामतीर्थ द्वारा संचालित 'अलिफ' के सम्पादन और लेखन के उत्तरदायित्वों के फलस्वरूप हिन्दी-सेवा की दिशा में इनकी लेखनी मंथरगामिनी बन गई हो।

हिन्दी निबन्धों का कथ्य : यह मानना पड़ेगा कि प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने अपनी साहित्यिक प्रवृत्तियों की स्थापना हिन्दी में लिखित छः निबन्धों—क्रमशः, सच्ची वीरता, कन्यादान, पवित्रता, आचरण की सभ्यता, मजदूरी और प्रेम एवं अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन—में हो कर दी थी। इन रचनाओं का मूल स्वर जीवन के सभी क्षेत्रों में सामंजस्य बनाए रखना है। भावावेश में आकर अन्धानुकरण के कारण जो मौलिक व्यवस्थाएं विकृत हो चुकी हैं, कूपमंडूकता के फलस्वरूप जो मान्यताएं गल-सड़कर सड़ाँध उत्पन्न करने लगी हैं—विषबेल की भांति उनका मूलोच्छेदन कर देने में ही समझदारी है। फिर

---

10. जीवन मंत्रों का निरादर।

11. अमरजीत सिंह (संपा.) प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ—इक शरधाँजली [गिआनी महाँ सिंघ:अक्खीं डिट्ठीआँ ते कन्नी सुणीआँ कुझ अभुल्ल यादाँ] पृष्ठ 5-6।

भी प्रोफ़ेसर साहब संस्कृति के मूल उत्स 'संस्कार' में आस्था रखते हैं, जिसका आरम्भिक अर्थ सुधार है। बिगड़ी को बना लेने में ही बुद्धिमानी है। यह जोड़ने की मनमोहिनी माया है, तोड़ने वाली पीड़ाजनक प्रक्रिया पर पार पाने का यही एकमात्र साधन है।

'मानवीय प्रसन्नता' को साहित्य की धुरी मानकर मानो निबंधकार ने अपनी इन रचनाओं में 'सम्यक् जीवन-दृष्टि' नामक अपने शोध प्रबन्ध की रूपरेखा इस प्रकार निश्चित की है :

(1) अतीत का गरिमा-पान—विभिन्न धर्मों के समन्वय हेतु उनके आचार-व्यवहार में प्रचलित एकरूपता-सूचक शब्दावलियों, सूक्तियों, स्थापनाओं एवं ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन का बोड़ा उठाने की बलवती आकांक्षा। एतदर्थ कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(क)...नयनों की गंगा से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य-जीवन को आग और बर्फ़ से बपतिस्मा मिलता है अर्थात नया जन्म होता है मानो प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिए नयन-नीर के रूप में मसीहा भेजा है, जिससे हर एक नर-नारी कृतार्थ हो सकते हैं। यही वह यज्ञोपवीत है जिसके धारण करने से हर आदमी द्विज हो सकता है।
(कन्यादान)

(ख)...मगर मंसूर ने अपने कलाम को बन्द न किया। पत्थर मार मारकर दुनिया ने उसके शरीर की बुरी दशा की, परन्तु उस मर्द के हर बोल से यही शब्द निकले—"अनलहक"—"अहं ब्रह्मास्मि"—"मैं ही ब्रह्म हूं"। मंसूर का सूली पर चढ़ना उसके लिए सिर्फ़ खेल था।
(सच्ची वीरता)

(ग) इन्द्र की तरह ऐश्वर्यवान् और बलवान् होने पर भी दुनिया के ये छोटे 'जार्ज' बड़े कायर होते हैं। क्यों न हो, इनकी हुकूमत लोगों के दिलों पर नहीं होती। दुनिया के राजाओं के बल की दौड़ लोगों के शरीर तक है। हां, जब कभी किसी अकबर का राज लोगों के दिलों पर होता है तब इन कायरों की बस्ती में मानो एक सच्चा वीर पैदा हुआ।
(सच्ची वीरता)

(घ)...इन मांक (Monk) रुण्ड मुण्ड संन्यासी रूप विद्यालयों को क्यों बना रहे हो? जो बुद्ध और शंकर का, ईसा और चैतन्य का दर्शन न करा सका वह भला मातृरहित, भक्तिरहित, कन्यारहित B.A., M A.

साधारण अध्यापकों की मिट्टी और ईंट के रूखे सूखे घर कब करा सकते हैं। (पवित्रता)

(2) वर्तमान की सुव्यवस्था—उन्होंने गृहस्थी में एक पत्नी व्रत (Monogamy) को जीवन की वरेण्य आचार-संहिता मानकर 'ब्रह्मचर्य' और 'संन्यास' आश्रम-व्यवस्था से सम्बद्ध मनुष्य के अवस्था-भेद के सीमांकन को धत्ता बताने के कारण योगियों, साधुओं, पोंगा पण्डितों और कठमुल्लाओं के वैराग्य के पर्दे में पनपने वाली बुराइयों का भण्डा फोड़ किया, यथा :

(क) ऐसा मालूम होता है कि मौनोगेमी (स्त्री व्रत) का नियम, जो उन लोगों की स्मृतियों और राज-नियमों में पाया जाता है, उस समय बनाया गया था, जब कन्यादान आध्यात्मिक तरीके से वहाँ होता था और गृहस्थों का जीवन सुखमय था।

... ... स्त्री जाति में से एक स्त्री ने इस पुरुष के प्रेम में अपने अपने हृदय की इसलिए आहुति दी है कि उसके हृदय में स्त्री-जाति की पूजा करने के पवित्र भाव उत्पन्न हों, ताकि उसके लिए कुलीन स्त्रियाँ माता समान, भगिनी समान, पुत्री समान, देवी समान हो जाएं...। ज्यों ज्यों सौभाग्यवश (शुद्ध रूप 'संयोगवश' अथवा दुर्भाग्यवश) गृहस्थ जीवन का सुख घटता जाता है, त्यों-त्यों मुल्की और इखलाकी बेचैनी बढ़ती जाती है। (कन्यादान)

(ख) आपको किसने उपदेश दिया था कि आप कपिलवस्तु राजधानी को लात मारकर युवावस्था में ही ब्रह्मकांति की तलाश में—उस अनजानी ज्योति के स्वरूप की तलाश में जंगल जंगल घूम अपने शरीर को सुखा लिया, हड्डियाँ कर दिया, ए भगवन ! आकर अब ज़रा देखिए तो...आपका नाम ही नाम रह गया है, जिसके सहारे कई ईंट पत्थर रोड़े के मन्दिर खड़े हो गए। बुत बन गए परन्तु मनुष्य डूब गया। (पवित्रता)

(3) भविष्य के लिए मार्गदर्शन—उन्होंने 'श्रम-गौरव' पर अटूट आस्था रखकर सृष्टि-पालन और सर्वस्वदान की लालसा के विषय में गुरवाणी की सूक्ति—'किरत करो ते वंड छक्को' का अक्षरानुक्रम एवं शब्दानुशब्द निर्वाह करते हुए 'अध्यातम-दर्शन' का तूर्यनाद किया, उदाहरणार्थ :

(क) हज़ारों साल से धर्म पुस्तकें खुली हुई हैं। अभी तक उनसे तुम्हें कुछ लाभ नहीं हुआ।...अपनी-अपनी कुदाली हाथ में लेकर क्यों आगे नहीं बढ़ते ? पीछे मुड़कर देखने से क्या लाभ ? अब तो खुले जगत् में अपने अश्वमेध का घोड़ा छोड़ दो । तुम में से हर एक को अपना अश्वमेध करना है। चलो तो सही। अपने आप की परीक्षा करो।
(आचरण की सभ्यता)

(ख) कहते हैं ब्रह्माहुति से जगत् पैदा हुआ है। अन्न पैदा करने में किसान भी ब्रह्मा के समान है। खेती उसके ईश्वरी प्रेम का केन्द्र है। उसका सारा जीवन पत्ते-पत्ते में, फूल-फूल में, फल-फल में बिखर रहा है........ यदि कोई इसके घर आ जाता है तो यह उसको मृदुवचन, मीठे जल और अन्न से तृप्त करता है।.........धोखा यह किसी को देता नहीं...... स्त्री इसकी आज्ञाकारिणी है; मकान इसका पुण्य और आनंद का स्थान है.........गुरु नानक ने ठीक ही कहा है—'भोले भाव मिलें रघुराई', भोले भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है। ......जब कभी मैं इन बे-मुकुट के गोपालों के दर्शन करता हूं, मेरा सिर स्वयं झुक जाता है। (मज़दूरी और प्रेम)

(ग) आचरण के विकास के लिए जितने कर्म हैं उन सब को आचरण के संघटनकर्ता धर्म के अंग मानना पड़ेगा। चाहे कोई कितना भी बड़ा महात्मा क्यों न हो, वह निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता कि यों ही करो और किसी तरह नहीं। आचरण की सभ्यता की प्राप्ति के लिए वह सब को एक पथ नहीं बता सकता.........हमें अपना रास्ता अपने जीवन की कुदाली की एक-एक चोट से रात-दिन बनाना पड़ेगा और उसी पर चलना भी पड़ेगा। हर किसी को अपने देशकालानुसार राम प्राप्ति के लिए अपनी नैया आप ही बनानी पड़ेगी और आप ही चलानी भी पड़ेगी। (आचरण की सभ्यता)

भावी–लेखन की स्रोतस्विनी : वैज्ञानिक तो अपने निष्कर्षात्मक सिद्धांतों को स्मरण रखने के लिए प्रमेय बना लेते हैं, जैसे गणितज्ञों ने अपने विज्ञान में प्रयुक्त गणना विधि के मूलचिह्नों की आद्याक्षरी मे 'कोकाभागुजहा' (Bodmas)[11] संकेत समूह बना लिया है। इसी प्रकार

11. कोष्ठक (Brackets), का (Of), भाग (Division), गुणा (Multiplication), जोड़ (Addition), घटाव (Subtraction)।

साहित्यकारों ने भी छंदशास्त्र में गणों की योजना का संदर्शन करवाने के विचार से 'यमाताराजभाणसलगं' सूत्रवाक्य[12] का निर्माण किया है। ठीक इसी प्रकार त्रिकालदर्शी प्रो. पूर्ण सिंह ने अपने सरस्वती मन्दिर की आधार शिला की झांकी इस सूत्रवाक्य द्वारा प्रकट करके अपनी वैज्ञानिक सूझ का उद्घाटन किया है :—

"सृष्टि के विकास के लिए जीवोत्पत्ति आवश्यक है, जिसका पुणीत रूप 'कन्यादान' संस्कार में छिपा है। एक पत्नी व्रत और एक पुरुष व्रत द्वारा हृदय की 'पवित्रता' और 'बाह्याचरण में इसी व्रत का पालन 'आचरण की सभ्यता' (सभ्याचरण) है। यही भाव गृहस्थाश्रम की शांति का वाहक है। गृहस्थी के निर्वाह के लिए 'प्रेम (और)/भरी मजदूरी' (श्रम गौरव) पर अटूट आस्था रखना अत्यावश्यक है। 'सच्ची वीरता' का दम भरने वाले महापुरुष ही समय और स्थिति के अनुसार कथनी और करनी में संतुलन स्थापित[13] करके 'मस्तजोगी' (अमेरिका का...वाल्ट ह्विटमैन) की उपाधि के अधिकारी बन सकते हैं।"

इस लंबी भावमाला को सहर्ष स्वीकार कर लेने वाले लेखक की मौन भावभंगिमा इन्हीं के 'कविता' निबंध में दृष्टिगम्य होती है, यथा :—

"बिना दलीलों और अक्ली समझौतों के सहज-स्वभाव यह प्रतीत होता है कि यह सच है, और इस प्रकार के वचनों को बार बार पढ़ें (तो) वे सदा नई चमक और उज्ज्वलता रूह को देते हैं, बिपदा के समय उन्हें बार-बार छूने को दिल करता है। और उन वचनों के पाठ से रूहों को

---

12. यगण, मगण, तगण, रगण, जगण, भगण, णगण, सगण, लघु, गुरु।

13.(क) हमारे देश के इस पारस्परिक अर्पण का दिव्य-समय (Divine time of mutual self-surrender = परस्पर आत्मसमर्पण का दैवी काल) कुल दुनियाँ के ऐसे समय से अधिक हृदयंगम होता है। (कन्यादान)

(ख) Nothing but a perfect womanhood can call man to purity and sacrifice to manhood and to goodhood.

(कन्यादान)

(ग) The hero is a mind of such balance that no disturbances can shake his will, but pleasantly, and as if it were merrily he advances to his own music alike in frightful alarms and in the tipsy mists of universal dissoluteness. (सच्ची वीरता)

आराम मिलता है।''[14]

हिन्दी निबन्धों में निबद्ध और हमारी लेखनी द्वारा सूत्रवाक्य में संग्रथित विचारधारा को अपनी हिन्दीतर रचनाओं में बार-बार अपना कर तथा पूरी तरह गहरा कर पूर्ण सिंह जी ने एक ओर साहित्य-रस के पारखियों को लुभाया है। उधर दूसरी ओर छिद्रान्वेषी साहित्य-निंदकों को बुरी तरह बौखलाया भी है।

आक्षेप-मार्जन : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के छः निबन्धों के प्रकाशन की सूचनाएं इस प्रकार हैं :—

	शीर्षक	पत्रिका	प्रकाशन तिथि
1.	सच्ची वीरता	सरस्वती	जनवरी-फ़रवरी, 1909
2.	कन्यादान	सरस्वती	अक्तूबर, 1909
3.	पवित्रता	भारतोदय	दिसम्बर, 1909 तथा जनवरी, 1910
4.	आचरण की सभ्यता	सरस्वती	फरवरी-मार्च, 1912
5.	मजदूरी और प्रेम	सरस्वती	सितंबर, 1912
6.	अमेरिका का मस्त जोगी वाल्ट ह्विटमैन	सरस्वती	मई, 1913

सन् 1941 में डॉ. श्यामसुंदर दास ने पहले पांच निबन्धों को एक पुस्तक में संग्रहीत किया। 'वाल्ट ह्विटमैन' से संबद्ध छठे निबंध की खोज-खबर श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने सन् 1954 में लगाई।

पूर्णसिंह जी को हिन्दी-जगत् में प्रतिष्ठित करने का श्रेय 'सरस्वती' के संपादक श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी के अतिरिक्त 'भारतोदय' के संपादक आचार्य पद्मसिंह शर्मा को भी है। शर्मा जी ने इन निबन्धों के सम्बन्ध में कतिपय ऐसे तथ्य प्रकाशित कर दिए हैं, जिनसे कई एक भ्रम उत्पन्न हो गए हैं, यथा—

(क) "......सरस्वती में उनका पहला लेख प्रकाशित हुआ था, जिसका शीर्षक 'कन्यादान' था और जिसका दूसरा नाम 'नयनों की गंगा' है। इस लेख की उस समय धूम मच गई थी। यह लेख सचमुच

14. डा. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंह दी वारतक, पृष्ठ 15

'नयनों की गंगा' है। इसे पढ़कर पाषाण-हृदय भी पिघल उठते हैं...... भारतोदय में उनका 'पवित्रता' शीर्षक लेख छपा है।[15]"

(ख) "आचार्य पंडित पद्मसिंह शर्मा के लेख के अनुसार इनके 'पवित्रता निबन्ध का उत्तरार्द्ध अप्रकाशित है और प्राप्त निबन्ध अधूरा ही है।[16]'

उपर्युक्त सूची से प्रकट हो जाता है कि प्रोफ़ेसर साहब का प्रकाशित निबन्ध 'सच्ची वीरता' ही है। 'कन्यादान' का दूसरा नाम 'नयनों की गंगा' होना अस्वाभाविक नहीं, क्योंकि वेदांती रुण्ड मुण्ड 'पूर्ण' को गृहस्थ पूर्ण सिंह बनाने में इनकी बहन गंगा के अश्रुजल का विशेष हाथ था। किन्तु 'पवित्रता' निबन्ध ने न जाने किस भ्रम के कारण पूर्णसिंह जी की ख्याति को अपवित्र करने के लिए कमर कस ली है। एक तो 'भारतोदय' में इसके प्रकाशन के समय "इति पूर्वार्द्धम्' लिखकर इसके अधूरेपन की डौंडी पीटी गई। दूसरे, इस निबन्ध के कुछेक अशुद्ध रूपों को लक्षित करके मूल निबन्धकार पर यह भी लांछन लगाया गया कि उन्हें शुद्ध नागरी लिपि में लिखना नहीं आता था। इसीलिए वे उर्दू लिपि में अपने लेख लिखा करते थे।[17] पंडित बालकृष्ण शर्मा नवीन के अनुसार पूर्णसिंह जी के हिन्दी लेखों का रूपांतर गणेश शंकर 'विद्यार्थी' करते थे।[18]

हमारे विचार में आचार्य पद्मसिंह शर्मा की मांग पूर्ति के लिए प्रोफ़ेसर साहब ने पहले से उर्दू में लिखा अपना एक निबन्ध उन्हें मूलरूप में दे दिया। व्यस्तता के कारण पूर्णसिंह जो इसका हिन्दी रूपांतर स्वयं न कर पाए और इस भार को श्री गणेश शंकर विद्यार्थी को ओटना पड़ा। आश्चर्य नहीं कि विद्यार्थी जी ने भी पहले रूपांतर के लिए 'पवित्रता' निबन्ध किसी अन्य सज्जन को दे दिया हो और तदनंतर स्वयं सरसरी दृष्टि डालकर संपादक के हवाले कर दिया हो। इस प्रकार नागरी (हिन्दी) विषयक अज्ञान का सारा पोट बेचारे पूर्णसिंह

---

15. प्रभात शास्त्री : सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबंध, पृष्ठ 21
16. वही, पृष्ठ 23
17. वही, पृष्ठ 23
18. डा. देविन्दर सिंघ विदिआरथी : कंनिआदान ते होर लेख, पृष्ठ 57

जी पर आ गिरा। डॉ. विद्यार्थी ने इन दोषों से प्रोफ़ेसर साहब का पिंड छुड़ाने के लिए जो तर्क दिए हैं, वे हमें मान्य हैं यथा :—

'गहराई से परखने पर आश्चर्य होता है कि महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे दृढ़ स्वभाव के संपादक की ओर से कहीं भी इस बात का कोई संकेत नहीं मिलता कि लेखों की भाषा पूर्णसिंह की नहीं, बल्कि गणेश शंकर की है। 'सरस्वती' की हस्त-लिखित पाण्डुलिपियों की जो भी पंजियां नागरी प्रचारिणी सभा में सुरक्षित हैं, उनमें सभी लेख देवनागरी में लिखे हुए मिलते हैं और लिखितांश भी बहुत कुछ संशोधित है। पहले दो लेखों में अक्षर-जोड़ों, मात्राओं की त्रुटियां बहुत हैं। अगले लेखों में वे अशुद्धियां कम ही हैं। पूर्णसिंह ने एफ. ए. में संस्कृत भी पढ़ी थी। इसलिए उन्हें देवनागरी की लेखन-विधि से कोरा तो नहीं समझा जा सकता। अभ्यास की कमी हो जाना स्वाभाविक ही है।'[19]

श्री प्रभात शास्त्री ने अपने संग्रह में 'पवित्रता' निबंध का जो मसौदा प्रस्तुत किया है, उसमें उपलब्ध कोष्ठकांतर्गत संपादकीय सूझ एवं मूल लेखक की प्रयोग-विधि पर विचार कर लेना अत्यावश्यक है। उदाहरणार्थ :—

(क)......ऐसे वैराग्य और त्याग से **जिस्में (जिसमें)** अपनी माताओं, बहिनों, कन्याओं के नग्न शरीरों को नीलाम करके पवित्रता ख़रीदनी है।

(ख) जब तक हम मनुष्य नहीं बन जाते तब तक न कोई गुरु, न कोई वेद, न कोई शास्त्र, न कोई उपदेश तुह्मा [म्हा) रे कल्याण का साधन हो सक्ता (सकता) है।[20]

(ग) विद्या कैसी अच्छी चीज़ है, परन्तु कमीनेपन को (की)[21]

19. डा. देविन्दर सिंघ विदिआरथी : कन्यादान ते होर निबन्ध, पृष्ठ 57

20. प्रभात शास्त्री : सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबंध, पृष्ठ 112

21. 'कमीनेपन' का संबंध 'उन्नति' से है, अत: 'को', कारकचिह्न अशुद्ध नहीं है। 'शस्त्र रूपी दलील और प्रमाण' में रूपक अलंकार की छटा को पहचाने बिना 'शास्त्र' बनाकर प्रभात जी ने भी पूर्ण सिंह की विशेषोक्ति का बंटाधार कर डाला है। 'शस्त्र' का व्यंग्यार्थ 'बल' एवं 'ज़ालिम के हाथ' से स्वत: स्पष्ट है।

विद्या अर्थात केवल पुस्तक पूजा तो अधिक से अधिक उन्नति देती है, चतुरता आती है, कमीनेपन और नीचता के लिए उत्तम से उत्तम शस्त्र (शास्त्र) और दलील प्रमाण मिल जाते हैं, बल कैसी उत्तम चीज़ है, परन्तु एक ज़ालिम के हाथ यह भी तो नीचता को अधिक करता है..........[22]

न जाने किस स्तर पर पूर्ण सिंह की भाषा से खिलवाड़ हो गया ? इसी निबन्ध से थोड़े-से उदाहरण देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि 'सकता' क्रिया रूप का अक्षर-जोड़ भी कई स्थलों पर शुद्ध रूप में उपलब्ध होता है यथा—

(क) अपवित्रता को आंखों में रख कैसे हो **सकता** है वह विद्यादर्शन ?[23]

(ख) चित्रों का, जो लेखक ने अपने इस बुतखाने में रखे हैं, वर्णन तो इस लेख में हो नहीं **सकता** परन्तु जितना हो **सकता** है उतना संक्षेप से अर्पण करता हूं ।[24]

प्रो. पूर्ण सिंह की वर्तनी में यह द्विविधा केवल हिन्दी लेखन में हो सकती है। पूर्ण सिंह जी शब्दों में नया रंग लाने की चेष्टा करते थे, इसलिए बहुलार्थक शब्द को बदरंग भी कर देते थे। 'सकते में आना' (भौंचक्का)[25] मुहावरे के अर्थ से भिन्नता दिखाने के लिए सम्भवतः ये कभी-कभी 'सक्ता'[26] का प्रयोग अशुद्ध होने पर भी करते रहे हों। उर्दू में अर्द्धाक्षर पंजाबी भाषा की भांति हैं ही नहीं। यदि हम इस निबन्ध को श्री गणेश शंकर विद्यार्थी का अनुवाद मान लें तो वर्तनी-दोष अनुवादक के मत्थे मढ़ना पड़ेगा। अतः पूर्णसिंह जी को नागरी

---

22. प्रभात शास्त्री : सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबंध, पृष्ठ 114
23. वही, पृष्ठ 90
24. वही, पृष्ठ 92
25. उसने कहा—"हाल्ट" (ठहरो)। तमाम फ़ौज निस्तब्ध होकर सकते की हालत में खड़ी हो गई।—(सच्ची वीरता)।
26. शक्ति (सामर्थ्य) से क्रियारूप 'सकता' (अर्द्धाक्षर साम्य) को ध्यान में रखने से भी ऐसा दोष संभव है।

प्रयोगधर्मी मौलिक रचनाकार का श्रेय प्रदान करते हुए हम इन्हें भाषा-दोष का भागी अवश्य ठहराते हैं। पंजाब-जन्मा पूर्णसिंह जी की मूल रचना और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संशोधित अंश की तुलना द्वारा हम इनकी भाषागत त्रुटियों का एक छोटा-सा नमूना प्रस्तुत करते हैं :

मूल रूप	संशोधित अंश
गेरूए वस्त्र की पूजा छोड़ो। गिरजे की घण्टी सुनते हो ? रविवार क्यों मनाते हो ? पांच वक्त की नमाज़ किस काम की ? दोनों वक्तों की संध्या से क्या लाभ ? मज़दूर के अनाथ नैनों, अनाथ आत्मा और अनाथ जीवन की बोली सीखो, दिन रात का साधारण जीवन एक ईश्वरीय भजन हो जाएगा। मज़दूरी तो मनुष्य का व्यष्टि रूप समष्टि रूप का परिणाम है।	गेरूए वस्त्र की पूजा क्यों करते हो ? गिरजे की घण्टी क्यों सुनते हो ? रविवार क्यों मनाते हो ? पांच वक्त की नमाज़ क्यों पढ़ते हो ? त्रिकाल संध्या क्यों करते हो ? मज़दूर के अनाथ नयनों, अनाथ आत्मा और अनाथ जीवन की बोली सीखो। फिर देखोगे कि तुम्हारा यही साधारण जीवन ईश्वरीय भजन हो जाएगा। मज़दूरी तो मनुष्य के समष्टि रूप का व्यष्टि रूपी परिणाम है।

पूर्णसिंह जी की लेखनी धारावाह चलती थी। अपनी रचनाओं को दोबारा पढ़कर संशोधन करने का इन्हें अवकाश नहीं था। किन्तु पूर्णसिंह के निबन्धों के संकलनकर्ताओं और अनुवादकों ने निबंधकार की इसी कमज़ोरी का लाभ उठाकर 'पवित्रता' के अधूरेपन का फ़तवा दे दिया। विस्मय की बात है कि इनके इस निर्णय में 'दिए तले अंधेरा' वाली उक्ति चरितार्थ होती है। पवित्रता का स्वरूप समझाते हुए प्रोफ़ेसर साहब ने 27 चित्रों में हम सभी हिन्दी वालों को इतना उलझा लिया कि हम उनके—"भगवान् ! तीसरा नेत्र खोलकर ज़रा इस देश के गेरू रंग उपदेशकों के अन्धकार को क्यों नहीं देखते... ब्रह्मज्ञान का

फल यही है ? महाराज सरस्वती देवी से तो आप 6 महीने हारे रहे''[27] —इस व्यंग्य को न पहचानकर 'पवित्रता' के उत्तरार्द्ध की प्राप्ति के लिए आचार्य पद्मसिंह शर्मा की भांति रट लगाते रहे।

'पवित्रता' निबंध के 'ब्रह्मचर्य का उल्टा उपदेश'[28] में ही कूटार्थ भरा है। उससे पहले की उक्ति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि 'ब्रह्मचर्य' के बाद आश्रम व्यवस्था की दूसरी कड़ी 'गृहस्थ' है, जिसका माहात्म्य-बखान 'कन्यादान' में हो चुका है।[29] संयोगवश 'कन्यादान' निबन्ध अक्तूबर 1909 की 'सरस्वती' में प्रकाशित हो गया। अतः विद्वानों की दृष्टि 'कन्यादान' को 'पवित्रता' का उत्तरार्द्ध मानने में धोखा खा गई और दिसम्बर 1909-जनवरी, 1910 में छपे 'पवित्रता' के उतरार्द्ध को तलाश में भटकती रही।

'कन्यादान' निबन्ध ही 'पवित्रता' निबन्ध का पूरक है, एतदर्थ कुछ प्रसंग तुलनार्थ प्रस्तुत हैं—

त्याग, वैराग्य और इनके अनर्थ—ऋषियों का इतना बड़ा आदर्श—**त्याग और वैराग्य का आदर्श** मटियामेल हो गया।......... स्व० राम ने **त्याग** किया, भर्तृहरि ने **त्याग** किया...पूर्णभक्त ने **त्याग** किया, **वैराग्य** का बाना लिया, बस अब किसान भी हल **जोतने को त्याग** उनका सा रूप संवार चले गंगातट को, चले ऋषिकेश को वहां

---

27. आश्चर्य नहीं कि किसी कारण पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी से रुष्ट श्री पद्म सिंह शर्मा ने 'सरस्वती' के ख्यातनामा निबंधकार प्रो. पूर्ण सिंह की किसी रचना को विना छापे लौटा दिया हो। किन्तु पाठक-जगत् में उनके निबंधों की भूरि भूरि प्रशंसा के कारण शिरोनत हुए शर्मा जी ने जब पुनः 'भारतोदय' के लिए कोई रचना माँगी होगी तो स्वाभिमानी पूर्ण सिंह जी ने 'पवित्रता' निबंध का उर्दू मसौदा पद्म सिंह जी को देकर अपना पिण्ड छुड़वाया होगा।
28. श्री प्रभात शास्त्री वाले संग्रह के पृष्ठ 107 के एक अनुच्छेद का शीर्षक।
29. जब तक आर्य कन्या इस देश के घरों और दिलों पर राज्य नहीं करती तब तक इस देश में पवित्रता नहीं आती। जब तक देश में पवित्रता नहीं आती, तब तक बल नहीं आता। ब्रह्मचर्य का प्राचीन आदर्श सुख नहीं दिखलाता, देश में पवित्रता लाने का ए भगवान! अब तो पहिला संस्कार भारत कन्या को राजतिलक देना है। ('पवित्रता' निबंध)

अन्न मुफ़्त मिलता है।...... अपने आप को दान देने को तैयार हैं, बलिदान हो चुका यज्ञ हो गया। स्त्री का मुख देखना पाप है, बड़े-बड़े वैराग्य के ग्रंथ खोल, **गेरू रंग** हम अपनी माता बहिन और **कन्याओं को नग्न** कर करके उनके हड्डी मांस की नस-नस को गिन गिनकर तिरस्कार करते हैं। **क्यों भाई !** बिना इसके भला वैराग्य और ब्रह्मचर्य का पालन कब होता है। (पवित्रता)

मोटे शब्दों की सहायता से लेखक द्वारा निर्दिष्ट त्याग और वैराग्य का सच्चा स्वरूप समझा जा सकता है:—

"कुछ देर में **प्यारे भाई** की बारी आई कि वह अपनी भगिनी के हाथों में मेंहदी लगाए।... उसे इस तरह मेहंदी लगाते समय **कन्या के उस अलौकिक त्याग को देखकर** मेरी आंखों में जल भर आया और मैंने रो दिया। मेरी बहन ! जिस **त्याग** को ढूंढते ढूंढते **सैंकड़ों पुरुषों ने जान हार दी** और **त्याग न कर** सके;...क्या आज तूने उस अद्भुत त्यागादर्श रूपी वस्तु को सचमुच ही पा लिया; शरीर को छोड़ बैठी... तेरे **वैराग्य और त्याग** के यज्ञ को इस मेहंदी के रंग में आज मैं संसार के सामने लाता हूँ। मैं देखूंगा कि इस तेरे मेहंदी के रंग के सामने कितना भी गहरा **गेरू का रंग** मात होता है।...तेरे **त्याग** के माहात्म्य से सारे घर में पवित्रता छा गई। शांति, आनन्द और मंगल हो रहा है। एक कंगाल गृहस्थ का घर इस समय भरा-पूरा मालूम होता है। भूखों को **अन्न मिलता** है।" (कन्यादान)

शैलीगत विशेषताएं : पूर्णसिंह जी के निबन्धों को 'अध्यात्मपरक मानवतावादी' कहा जा सकता है। पूर्णसिंह के इन निबन्धों पर लेखक के व्यक्तित्व की गहरी छाप दिखाई पड़ती है। आप संन्यासी वेश त्यागकर गृहस्थी बने थे। इसीलिए योगियों, साधुओं पर बरसाई गई व्यंग्योक्तियां अत्यन्त पैनी हैं। मानवता के पुजारी होने के कारण आप बाह्याडंबरों से घृणा करते थे। जहां कहीं भी इन्हें प्रदर्शन, पाखंड अथवा दंभ की गंध आई वहाँ इन्होंने प्राचीन और अर्वाचीन की सीमाएं लांघकर एक ही झपेटे में प्रसंगानुकूल अनेक व्यक्तियों को धर-पकड़ करने में संकोच नहीं किया। इनके कथन में शुष्कता का लेशमात्र भी नहीं होता। प्रतीकों, अलंकारों, शब्द-भंगिमा एवं विरोधी भावों से सम्पन्न इनके कटाक्ष कटुता के स्थान पर मनोरंजन की सामग्री ही उपस्थित करते

हैं, यथा—

(क) वीर तो यह समझता है कि मनुष्य का जीवन एक ज़रा-सी चीज़ है। वह सिर्फ़ एक बार के लिए काफ़ी है। मानो इस बन्दूक में एक ही गोली है। हां, कायर पुरुष इसको बड़ा ही कीमती और कभी न टूटने वाला हथियार समझते हैं। हर घड़ी आगे बढ़कर और यह दिखाकर कि हम बड़े हैं, वे फिर पीछे इस गरज से हट जाते हैं कि उनका अनमोल जीवन किसी और भी उत्तम काम के लिए बच जाए। बादल गरज-गरजकर ऐसे ही चले जाते हैं, परन्तु बरसने वाले बादल ज़रा देर में बारह इंच तक बरस जाते है। (सच्ची वीरता)

(ख) वह किसी अंग्रेज़ के दफ्तर के हैडक्लर्क जा रहे हैं। कलम जब चलती है दूसरी का गला काटती है। लिखते तो ठीक मेलट्रेन की तरह हैं, क्यों न हो योग का बल हाथ में है। (पवित्रता)

प्रोफ़ेसर साहब भाषा के विषय में बड़े उदार हैं। ये धड़ल्ले से संस्कृत अरबी और फ़ारसी के तत्सम शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। फिर भी ये सहज और सरल भाषा पर अधिक बल देते हैं। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए ये तद्‌भव शब्दों के प्रयोग को ही वरीयता देते हैं। काव्यांश और अंग्रेज़ी विद्वानों के उद्धरण अथवा नए शब्दों के अंग्रेज़ी पर्याय देने में भी इन्हें संकोच नहीं है। एतदर्थ कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

(क) "हृदय पवित्र है। वायु पवित्र है और देवी-देवताओं की उपस्थिति ने सब को एकाग्र कर दिया है। अब कन्यादान का वक्त है। स्त्रियों ने कन्यादान के माहात्म्य के गीत अलापने शुरू किए हैं। सब के रोम खड़े हो रहे हैं। गले रुक रहे हैं। आंसू चल रहे हैं :—

बिछुड़तो दुलहन वतन से है जब खड़े हैं रोम और गला रुके हैं;
कि फिर न आने की है कोई ढब खड़े हैं रोम और गला रुके हैं;
यह दीनो दुनिया तुम्हें मुबारक हमार दूल्हा हमें सलामत;
पै याद रखना यह आखिरी छवि खड़े हैं रोम और गला रुके हैं।

—स्वामीराम

(कन्यादान)

(ख)...वीर का जीवन तो प्रकृति ने अपनी शक्तियों को एकत्र

संचय (conserve) करने को बनाया है। सम्भव है कि एक और पदार्थ उसने अपनी शक्तियों को (Dessipate) फिजूल खो देने के लिए बनाये हों। कुदरत का यह मरकज हिल नहीं सकता। सूर्य का चक्कर हिल जाए तो कोई बात नहीं परन्तु वीर के दिल में जो दैवी केन्द्र (Divine Centre) है वह अचल है।...वीरों की पालिसी बल को हर तरह इकट्ठा करने और बढ़ाने की होती है। वीर तो अपने अन्दर ही 'मार्च' करते हैं। (सच्ची वीरता)

पूर्णसिंह जी की भाषा में चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। पहले उदाहरण में प्रश्नवाचक और विस्मयबोधक विरामचिह्नों द्वारा चमत्कार–सृष्टि की गई है, यथा :

(क) कहां हैं तुह्मा [म्हा] रे साधु, जिनके हुकुम से हाथ बाँधे ये कलकत्ते के सेठ या पिशावर के ठेकेदार गुलाम फिर रहे हैं, अगर वे साधु हैं तो क्यों नहीं ब्रह्मतेज से इनका शासन करते ? क्यों नहीं ताड़ते ? उल्लुओं के स्वर्ग क्यों बनने देते हैं ? हे राम ! इनको क्या हो गया है...कौनसे क्षेत्रों से ये रोटी खा रहे हैं ? (पवित्रता)

(ख) **पूर्ववर्ती और परवर्ती व्यक्तियों के कठोर कृत्य के वर्णन हेतु कूटस्थ शैली**

"जिस समय बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों से हाफिज़ शोराजी का सीना उलटकर उसे मौन आचरण का दर्शन कराया उस समय फ़ारस में सारे बौद्धों को निर्वाण के दर्शन हुए और सब के सब आचरण की सभ्यता के देश को प्राप्त हो गए।

जब पैगम्बर मुहम्मद ने ब्राह्मण को चीरा और उसके मौन आचरण को नंगा किया तब सारे मुसलमानों को आश्चर्य हुआ कि काफ़िर में मोमिन किस प्रकार गुप्त था। जब शिव ने अपने हाथ से ईसा के शब्दों को परे फेंककर उसकी आत्मा के नगे दर्शन कराए तब हिन्दू चकित हो गए कि वह नग्न करने अथवा नग्न होने वाला उनका कौन–सा शिव था ? हम तो एक दूसरे में छिपे हुए हैं।"[30]

(आचरण की सभ्यता)

---

30. गुह्यार्थ को उद्घाटित करने के लिए लेखक ने कुंजी स्वयं प्रस्तुत की है—
(Cont. on page 74)

(ग) पश्चिमी देशों के आधुनिक जीवन में विवाह से पूर्व प्रचलित प्रेमालाप की निंदा करते हुए भारत के उसी प्रकार के प्राचीन उदाहरणों पर पर्दा डालने के लिए एक विचित्र कूट का प्रयोग किया गया है। अंग्रेज़ी मुहावरे 'Beat about the Bush' का शब्दानुशब्द 'दिल को बेले के किसी झाड़ में छोड़ आती है" अनुवाद करके व्यर्थ के प्रलाप की ओर लेखक का संकेत दृष्टव्य है :—

"राँझा हीर की तलाश में निकलता ज़रूर है, मगर सच्चा योगी वह तभी होता है जब उसके लिए हीर अपने दिल को बेले के किसी झाड़ में छोड़ आती है। शकुंतला जंगल की लता की तरह बेहोशी की अवस्था में ही जवान हो गई। दुष्यन्त को देखकर अपने आप को खो बैठी। राजहंसों से पता पाकर दमयन्ती नल में लीन हो गई। राम के धनुष तोड़ने से पहले ही सीता अपने दिल को हार चुकी। सीता के दिल का बलिदान का ही यह असर था कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम भगवान् वन्-वन् बारह वर्ष तक अपनी प्रियतम के क्लेश-निवारणार्थ रोते फिरे। (कन्यादान)

(घ) 'र' की आवृत्ति के कारण अनुप्रास-योजना, 'तख्त' और 'तख्ते' में यमक-योजना; 'तख्ते हो गए' और 'मिट्टी में मिल गए' (नष्ट होना) में पर्यायोक्ति तथा लोकोक्ति अलंकारों की छटा निम्नोक्त वाक्य में दर्शनीय हैं ;—

"राजाओं के राज्य, राजधानियों की राजधानियां नष्ट हो गईं, वह तख्त जिस पर बैठते थे तख्ते हो गए, मिट्टी में मिल गए।"

(पवित्रता)

(ङ) 'कलकत्ते' का यह नाम क्यों पड़ा ? इस व्युत्पत्ति को स्पष्ट करके कलकत्ता से सम्बद्ध फ़कीर के नाम के विषय में जिज्ञासा उत्पन्न करके देवी माता के भक्त स्वामी रामकृष्ण परमहंस के चरित्र

Cont. from page 73)

"हर एक पदार्थ को परमाणुओं में परिणत करके उसके प्रत्येक परमाणु में अपने आप को ढूंढना—अपने आप को एकत्र करना—अपने आचरण को प्राप्त करना है। आचरण की प्राप्ति एकता की दशा की प्राप्ति है।"

[आचरण की सभ्यता]

की पवित्रता का प्रकाशन, यथा—

"कलकत्ते के पास एक निरक्षर नंगा कालीभक्त है। कालीभक्त क्या ? ब्रह्मकांति का देखने वाला फ़क़ीर है। इसके नेत्र और इसका सिर मेरे तेरे नेत्रों और सिरों से भिन्न हैं। किसी और धातु के बने हुए हैं। मामूली साधु नहीं, जो छू छू करते फिरते हैं। एक कोई स्त्री आई। आप चीखकर उठे। माता कहकर सिर उसके चरणों पर रख दिया। मेरी तेरी निगाहों में यह कंचनी ही थी। पर रामकृष्ण परमहंस की तो जगत्माता निकली।" (पवित्रता)

प्रोफ़ेसर पूर्णसिंह मानव और प्रकृति से भाव-साम्य तथा वर्ण-योजना हरे, सफेद और लाल तिरंगे वाली (शोभा) के सुन्दर भाव-चित्रों के कुशल चितेरे हैं। पहले उदाहरण में जल का मुग्धकारी विविधरूपी प्रभाव एव दूसरे में 'बे' उपसर्ग से जुड़े शब्दों की शृंखला अभावग्रस्त भेड़-पालक के सन्तुष्ट-जीवन की गहराइयां मापने के लिए प्रेरित करते हैं :—

(क) सावन-भादों की वर्षा के बाद वृक्ष जैसे नवीन-नवीन कोंपलें धारण किए हुए एक विचित्र मनमोहिनी छटा दिखाते हैं, उसी तरह इस **प्रेम-स्नान** से मनुष्य की आन्तरिक अवस्था स्वच्छ, कोमल और रसभीनी हो जाती है। **प्रेम-धारा के जल** से सींचा हुआ हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। हृदयस्थलों में पवित्र भावों के पौधे उगते, बढ़ते और फलते हैं। **वर्षा और नदी के जल** से तो अन्न पैदा होता है, परन्तु **नयनों की गंगा** से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य-जीवन को आग और बर्फ़ से बपतिस्मा मिलता है. मानो प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिए **नयन-नीर** के रूप में मसीहा भेजा है। (कन्यादान)

(ख) एक बार मैंने एक बुड्ढे गडरिए को देखा। घना जंगल है। हरे-हरे वृक्षों के नीचे उसकी सफ़ेद ऊनवाली भेड़ें अपना मुंह नीचे किए हुए कोमल कोमल पत्तियां खा रही हैं। गडरिया बैठा आकाश की ओर देख रहा है। ऊन कातता जाता है। उसकी आंखों में प्रेम-लाली छाई हुई है . . . बाल उसके सारे सुफ़ेद हैं। और क्यों न सुफ़ेद हों। सुफ़ेद भेड़ों का मालिक जो ठहरा। उसके कपोलों से लाली फूट रही है। बरफ़ानी देश में वह मानो विष्णु के समान क्षीर-सागर में लेटा है।...

मकान इनका बेमकान है, घर इनका बेघर है, ये लोग बेनाम और बेपता हैं।...इनके मुख, शरीर और अन्तःकरण सुफ़ेद, इनकी बर्फ़, पर्वत और भेड़ें सुफ़ेद। अपनी सुफ़ेद भेड़ों में यह परिवार शुद्ध सफ़ेद ईश्वर के दर्शन करता है। (मजदूरी और प्रेम)

नाद-सौंदर्य के साथ-साथ प्रभातकाल में योगनिद्रा के खुलने, सन्ध्या और नमाज़ की ध्वनियों के एक-साथ कान में पड़ने एवं ब्रह्मकांति के दर्शन से धार्मिक एकता में आस्था रखने वाले किस व्यक्ति का मन-मयूर इस प्रसंग को पढ़कर नाच नहीं उठेगा ? ऐसे दृश्य से आह्लादित होकर प्रो. पूर्णसिंह की लेखनी जादू की लालटेन (Magic Lantren) की फिरकी की तरह घूमती हुई एक के बाद एक चित्र प्रस्तुत करती है :

"अहा हा ! सारा संसार कृतार्थ हुआ। जाग उठा। हाथी चिंघाड़ रहे हैं, दौड़ रहे हैं। शेर गरज रहे हैं, कूद रहे हैं।... दर्शन दीदार का पा रहे हैं। तीतर गा रहे हैं। मुर्ग अपनी छाती को पूरा भरकर कूक रहे हैं। ई, ई, ऊ, ऊ, कू, कू, हू, हू में वेद-ध्वनि, ओ३म् का आलाप हो रहा है। पर्वत भी मारे आनन्द के हवा में उछल नीचे आकाश को फांद रहे हैं। बद्रीनाथ, केदारनाथ, जमनोत्री, गंगोत्री, कंचनगंगा की चोटियां हँस रही हैं। वृक्ष उठ खड़े हुए हैं, इन सब की संध्या हो चुकी है :

थी जिनकी खातिर नाच किया जब मूरत उनकी आएगी।
कहीं आप गया कहीं नाच गया और तान कहीं लहराएगी॥

अर्थात् सबकी नमाज़ कज़ा हो गई। प्यारा नज़र आया। सबकी ईद है। ब्रह्मर्षि 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' पुकार उठा, चीख उठा, योगनिद्रा खुल गई। ब्रह्मकांति के आकर्षण ने दसवां द्वार फोड़कर प्राणों को अपनी ही गति फिर दे दी।" (पवित्रता)

डॉ. हरिवंश लाल शर्मा 'सरदार पूर्णसिंह अध्यापक के निबन्ध' की भूमिका में इन रचनाओं के गुण-दोषों का विवेचन इस प्रकार करते हैं :—

"आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के समान सूत्रात्मक वाक्यों का भी प्रयोग उन्होंने किया है जिनकी व्याख्या सहज नहीं—'मजदूरी तो मनुष्य के

समष्टि रूप का व्यष्टि रूप परिणाम है।"

"मजदूरी करना जीवन यात्रा का आध्यात्मिक नियम है।"

"प्रेम की भाषा शब्दरहित है।"
आदि वाक्य इसी प्रकार के हैं।

× × × ×

लाक्षणिकता इनकी शैली का प्राण है। इस प्रकार का शैलीकार हिन्दी-जगत् में दूसरा नहीं हुआ यह स्वीकार करना ही पड़ेगा। वास्तव में इनकी लाक्षणिकता ऊपर से थोपी गई वस्तु नहीं है अपितु भावों के उमड़ते हुए सागर से शतमुख होकर बह निकलने से उसका समावेश खुद-ब-खुद हो गया है, ठीक उसी तरह जिस तरह उपमा, रूपक, स्मरण, विरोधाभास आदि अनेक अलंकार उनकी रचना में अनजाने ही जड़ गए हैं।

× × × ×

कहीं-कहीं पर उनका सब से बड़ा गुण—भावुकता—ही भावों के मार्ग में आड़ा बनकर अड़ गया है और शैली का सब से बड़ा दोष बन गया है। ऐसे स्थलों पर भाव रहस्यमय से हो गए हैं। कहीं कहीं तो उनकी भावुकता इतनी बढ़ गई है और उसकी 'रमक' इतनी देर तक सवार रहती है कि सन्तुलित भावों वाला पाठक गूढ़ तथा असम्बद्ध-से लम्बे लम्बे भावमय कथनों को 'प्रलाप' जैसा समझने लग जाए तो आश्चर्य नहीं। भाषा विषयक स्खलन भी मिलते हैं। कहीं कहीं पर कारक सूचक विभक्तियों का ऐसा जमघट हो गया है कि मूलभाव तक पहुँचने में पाठक को कठिनाई होती है।

× × × ×

व्याकरण विषयक स्खलन भी यत्र-तत्र मिलते हैं, जैसे—"इसी की उपस्थिति से मन और हृदय की ऋतु बदल जाते हैं।" इस वाक्य में क्रिया का रूप स्त्रीलिंग के स्थान में पुल्लिग प्रयुक्त हुआ है। भाषा-विशेषज्ञों या अलंकार शास्त्रियों को ये दोष बहुत कुछ अखर सकते हैं, परन्तु सच तो यह है कि इन निबन्धों की अनगिनत विशेषताओं में इस प्रकार के स्खलन नगण्य ही हैं—"एकोऽपि दोषो गुणसन्निपाते

निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः ।''[31]

पंजाबी साहित्य—गगन में 'दूज का चांद' : हिन्दी साहित्य-जगत् में प्रोफ़ेसर पूर्णसिंह का आंधी की तरह आना और तूफ़ान की तरह निकल जाना बड़ा रहस्यमय प्रतीत होता है। किन्तु इनके क्रांतिकारी मित्रों की कारगुज़ारियों में इनके साहित्यिक-संन्यास के भेद को ढूंढा जा सकता है।

लाला हरदयाल एम. ए. के साथ प्रोफ़ेसर साहब की दीर्घकाल तक गहरी मित्रता रही। अमेरिका जाने के बाद लाला जी और उनके मित्रों ने मार्च 1913 में वाशिंगटन में एक सभा बुलाई। इसमें कैनेडा और अमेरिका निवासी दो सौ भारतीय प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। वहीं पर 'हिन्दी एसोसिएशन' की स्थापना हुई, जो कालांतर में 'गदर पार्टी' के रूप में प्रख्यात हुई। इस पार्टी का पहला समाचारपत्र 'गदर अख़बार' पहली नवम्बर, 1913 को जारी किया गया। इसका उद्देश्य भारत को स्वतन्त्र करवाने के लिए विद्रोहाग्नि भड़काना था। इस समाचार पत्र के सम्पादक मंडल और विषय-वस्तु का विवरण श्री सूबा सिंह इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं :—

"यह अख़बार उर्दू, हिन्दी, मराठी, पंजाबी में हज़ारों की गिनती में छपकर अर्जनटीना, फिज्जी, इंडोनेशिया, जंजीबार, स्याम, मलाया, जापान, हांगकांग, बर्मा और हिन्दुस्तान के सभी भागों में लाखों की गिनती में छपता और बांटा जाता था। इस प्रकार इसका बग़ावत का संदेश हर सप्ताह नए जोश, नई दलीलों और खून-खौलाने वाली कविताओं सहित सारी दुनिया में पहुंच जाता था। इसका प्रभाव पंजाब में अधिक हुआ क्योंकि बाह्य देशों में पंजाबी ही, ख़ास तौर से सिक्ख गए हुए थे, और उन्हें बुरे सलूक और भेदभाव का शिकार होना पड़ता था। वे गुलामी को अधिक अनुभव करते थे।

× × × ×

इसमें हिन्दुस्तान के सूरमों की दास्तानें और उनके कथन होते। पवित्र गीता, श्री गुरु ग्रंथ साहिब और क़ुरान शरीफ़ में से आजादी के लिए मर मिटने और स्वाभिमान का जीवन बिताने के विषय में उद्धरण

---

31. प्रभात शास्त्री : सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबंध, पृष्ठ 45-49

छापे जाते। विदेशों में हिन्दुस्तानियों की दयनीय दशा के नक्शे खींचे जाते। किस प्रकार हिन्दुस्तान का माल-दौलत अंग्रेज़ लूटकर अपने देश को ले जा रहे थे, उसके आँकड़ों सहित विवरण छापे जाते थे। स्वाधीन देशों के लोगों की खुशहाली के उदाहरण पेश किए जाते।

× × × ×

इसके सम्पादकों में लाला हरदयाल, पण्डित रामचन्द्र, जी. वी. लाल, ज्ञानी भगवान सिंह 'प्रीतम' और भाई पूरनसिंह के नाम विशेष रूपेण उल्लेखनीय हैं। अधिकांश कविताएं स. मुंशा सिंह दुखी जी की होती थीं। इस अख़बार से पंजाबी पत्रकारिता का एक नया लड़ाकू और अंग्रेज़ विरोधी काण्ड आरम्भ होता है।[32]

प्रो. पूर्णसिंह जी सन् 1905 में भाई वीर सिंह के सम्पर्क में आकर सिक्ख बन गए थे। जापान में लम्बे निवास के समय 'थंडरिंग डॉन' के सम्पादन से और विदेश यात्रा के दौरान हाँग-कांग और सिंगापुर के गुरुद्वारों में उनकी भाषणकला एवं सम्पादनकला की धाक जम चुकी थी। अतएव वीरसिंह जी के नाम के आरम्भिक शब्द 'भाई' को जोड़कर भाई पूरनसिंह को इस नए समाचार पत्र के सम्पादक मण्डल में सम्मिलित कर लिया गया। अंग्रेजी शासन के विरोधी उत्साही नवयुवक प्रोफ़ेसर साहब से आर्थिक सहायता प्राप्त करके जापान, अमेरिका आदि देशों में प्रायः जाते रहते थे। ऐसा आभासित होता है कि यही लोग सभी ज्ञात भाषाओं में पूर्णसिंह जी के हाथों लिखी दो-चार महीने के लिए पर्याप्त सामग्री अपने साथ ले जाते थे और किसी न किसी प्रकार 'ग़दर अख़बार' के संचालकों के पास पहुँचा देते थे। भारत में पूर्ण सिंह जी को हिन्दी पत्रकारों ने 'अध्यापक' बना दिया था, अतः किसी को 'भाई' शब्द से यह संदेह ही न होता था कि वाशिंगटन के सम्पादक मण्डल का सदस्य कोई भारतीय भी हो सकता है।

प्रोफ़ेसर साहब के पंजाबी निबन्ध संग्रह में से सामायिक विषयों पर लिखित एक निबन्ध 'वोट ते पालेटिकस' मिला है। उसके कुछ अंशों के पठन से हमारे तर्क की पुष्टि हो जाती है :—

---

32. सूबा सिंघ : पंजाबी पत्तरकारी दा इतिहास, पृष्ठ 56-60

"इसलिए 300 रुपए सालाना एक भारी कमाई करने वाले की आमदनी वहां है जहां नहरों का जल है और भूमि को अभी-अभी उपजाऊ बनाया है . . . इस प्रकार 300 रुपए में ये पाँच जीव, एक बच्चे सहित परिवार थोड़ा-बहुत पलता है, किन्तु आम तौर पर आमदनी की औसत इस तरह की नहीं होती। सूद की देनदारी सवार रहती है और यदि फ़सल ख़राब हो जाए (तो) उनका सूद आदि नाश कर देता है। इसलिए माली रूप में एक काश्तकार मुज़ारे की आमदनी 200 तक रह जाती है, और सारे परिवार को 10 आने प्रति दिहाड़ी मज़दूरी मिली, और यदि पांच आदमियों की नक़द मज़दूरी (अलग-अलग) बाँटो, क्योंकि सारा परिवार खेती के काम में लगा रहता है, इस प्रकार दो आना प्रति व्यक्ति हुआ। अब दो आने रोज़ में कौन भली प्रकार जी सकता है, ऐसी कठिन कमाई का पैसा हुकूमत लेकर राज्य करती है।"

आँकड़ों के द्वारा किसान की कठिन कमाई को करों के द्वारा हड़प जाने वाली अंग्रेज़ी सरकार के कच्चे चिट्ठे के अतिरिक्त मज्हब (धर्म) के स्वरूप-निर्धारण में श्री गुरु नानक देव और उमर खय्याम के कथन धर्म के सच्चे स्वरूप से परिचित करवा कर सर्वधर्म एकता-स्थापन की शिक्षा देते हैं, यथा :—

"गुरु नानक साहिब इस भारत देश में आयु भर घूमते रहे और बड़े-बड़े मन्दिरों में गए, बड़ी-बड़ी मस्जिदों में फिरे, किन्तु सभी जगह अज्ञान की बेहोशी देखी। मज्हब इतना ऊंचा और दिल में छिपाया कोई बहुमूल्य दिव्य भाव है जो गुरु नानक साहिब को कहीं दिखाई न पड़ा। . . . उमर खय्याम ने अपनी एक रुबाई में बताया कि एक लम्बी दाढ़ी वाला मौलवी, हरे रंग का हज़रती लम्बा चोला पहने तसबीह (माला) हाथ में लिए पहलवी गाने वाली एक औरत को मिला :—

मौलवी—तू कौन है ?

गानेवाली—मैं तो जो भी हूं दिखाई पड़ती हूं। तू जो है, ठीक वही हो।

मज्हब (धर्म) जब खोज लिया जाए, तब सहज स्वाभाविक अकपटता प्राप्त हो जाती है।" (मज्हब—पंजाबी निबंध)

इस प्रकार हम इस निश्चय पर पहुंचते हैं कि 'ग़दर' के सम्पादक मण्डल के सदस्य भाई पूरन सिंह हमारे चर्चित लेखक के अतिरिक्त अन्य कोई महानुभाव नहीं हैं। 'ग़दर' से पूर्णसिंह जी के लेखन को एक नई दिशा मिल गई थी। हिन्दी का लब्ध-प्रतिष्ठ गद्यकार पूर्णसिंह अब भारत से बाहर भी पंजाबी का गद्यकार बनकर नाम कमाने लगा था। सही पूरन सिंह कौन है ? प्रेस की आज़ादी पर रोक लगाने वाली अंग्रेज़ी सरकार के सामने अपने नाम का ढिंढोरा पीटने की इन्हें आवश्यकता ही क्या थी !

पंजाबी निबंध-संग्रह : प्रोफ़ेसर पूर्णसिंह के पंजाबी निबन्धों का पहला संग्रह इनके जीवन काल में ही अक्तूबर, 1929 में प्रकाशित हो गया था। इसका नाम इन्होंने 'खुल्हे लेख' रखा था। अब इन निबन्धों का नया संग्रह साहित्य अकादमी, नई दिल्ली ने छापा है। 'पूरन सिंघ दी वारतक' नामक इस ग्रंथ के संकलनकर्ता डॉ: महेन्द्र सिंह रन्धावा 'प्रवेश' में लिखते हैं :—

"पूर्णसिंह के कुछ लेख जो आपने 'खुल्हे लेख' नामक पुस्तक में एकत्र किए थे और जिन्हें अतरचन्द कपूर एण्ड सन्ज, दिल्ली, ने बड़े भद्दे रूप में छापा था, भी इस पुस्तक में सम्मिलित किए जा रहे हैं। 'मुराद' ख़ालसा समाचार नं. 39, जिल्द 17 (24 अगस्त, 1916) से लिया गया है। 'कलगी वाले दी छब्बी' इसी अख़बार के नं. 7, जिल्द 17 (1919) से और 'हंस चोग उत्ते रीवीऊ' नं 35, जिल्द 19, (जुलाई 1915) से लिया गया है। 'कोमल उनर' उस भाषण (Address) का अंश है जो पूर्णसिंह ने नवीं सिक्ख एजूकेशनल कान्फ्रेंस के अवसर पर पढ़ा और जो 'ख़ालसा समाचार' के नं. 23, जिल्द 17 (अप्रैल, 1913) में प्रकाशित हुआ।

'खुल्हे लेख' में "घलोई ग्लेशीअर (काश्मीर) की यात्रा" शीर्षक लेख बीबी दया कौर का लिखा हुआ है; प्रोफ़ेसर पूर्णसिंह का न होने के कारण इसे निकाल दिया है। एक अन्य लेख 'पंजाबी साहितय पर कटाखय' में से भाई वीर सिंह का बहुत लम्बा उद्धरण (Quotation) निकालकर छोटा उद्धरण रखा गया है। पुस्तक के शब्द-जोड़ भी सशोधित किए गए हैं।" (पृष्ठ 8)

अब प्रोफ़ेसर साहब के 17 निबन्ध ही प्रामाणिक माने गए हैं, जिनके शीर्षक इस प्रकार हैं :—(अ) कविता; (ख) कवी दा दिल [कवि का दिल]; (ग) पिआर [प्यार]; (घ) मज्हब [धर्म]; (ङ) आरट [आर्ट =कला]; (च) इक जापानी नाइका दो जोवन कथा [एक जापानी नायिका की जीवन कथा]; (छ) वतन दा पिआर [देश-प्रेम]; (ज) कीरत ते मिट्ठ बोलना [कीर्ति-गान एवं मधुर भाषण]; (झ) आपणे मन नाल गल्लां [अपने मन से बातें=आत्म-चिंतन]; (ञ) किरत [परिश्रम]; (ट) मित्रता (ठ) वोट ते पालेटिकस [मतदान और राजनीति=Vote & Politics]; (ड) पंजाबी साहित्य ते कटाखय [पंजाबी साहित्य पर कटाक्ष]; (ढ) मुराद [कामना]; (ण) कलगीआँ वाले दी छब्बी [कलगियों वाले='गुरु गोबिन्द'-शोभा]; (त) कोमल हुनर [कोमल कला] (थ) हँस चोग उत्ते रीवीऊ [नीर-क्षीर विवेक-समीक्षा]।

इन निबन्धों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है :—

सैद्धांतिक समीक्षा—'कविता' और 'कवि का दिल' में कविता के स्वरूप की चर्चा की गई है। इनमें प्राचीन रसवादियों से भिन्न नए 'अध्यात्म-रस' की विवेचना की गई है। "पंजाबी साहितय पर कटाखय' में पंजाबी भाषा के साहित्य के अभावों और उपलब्धियों की क्षीण-सी झलक मिलती है। 'हँस चोग उत्ते रीवीऊ' में लेखक ने अपनी कविताओं में प्रस्तुत भावों तथा पंजाब के लोक-साहित्य से गृहीत सामग्री के सदुपयोग की एक हल्की-सी झाँकी दिखाई है।

मनोभावत्मक—'पिआर', 'मित्रता,' 'मुराद' और 'कीरत ते मिट्ठा बोलणा' इसी कोटि के निबन्ध हैं।

सामयिक विषयगत—'मज्हब', 'वतन दा पिआर', 'किरत', 'वोट ते पालेटिकस' निबन्ध देश-प्रेम, धार्मिक एकता, अंग्रेज़-कालीन भारत को आर्थिक प्रणालो और 'किरती-किसान' विषयक राजनोतिक लहर से प्रेरित निबन्ध हैं।

जीवनी-परक—'इक जापानी नाइका दी जीवन-कथा'; 'लफ़को-डिओ हेरन' के लेखों से संकलित एक अनूदित रचना है। इसमें पूर्णसिंह द्वारा जापान-यात्रा के समय जापानी स्त्रियों के आंखों देखे

पुणीत स्तीत्व की अमर गाथा विद्यमान है । पुनः सिक्ख धर्म में निष्णात हो जाने पर, गुरु गोबिंद सिंह के प्रति कृतज्ञ, पूर्णसिंह ने दशम गुरु विषयक इतिहास ग्रन्थों के अध्ययन का ब्यौरा 'कलगीआं वाले दी छब्बी' में उपस्थित किया है। 48 वर्ष की अवस्था में रचित 'आपणे मन नाल गल्लां' में 12 वर्ष की अवस्था से लेकर निबन्ध-संग्रह के प्रकाशन तक के जीवन-काल के संकल्प-विकल्प की कथा विद्यमान है।

कला-परक—'आरट' और 'कोमल हुनर' क्रमशः अंग्रेज़ी और संस्कृत विशेषण से जुड़े 'कला' के पर्याय 'हुनर' से सम्बद्ध हैं । पूर्णसिंह जी ने 'कला' को 'किरत' कहा है। यह शब्द कृत्य, सर्जनात्मक कार्य (Creative Work) और उत्पादक (Productive) के अर्थ में ग्रहण किया गया है। निबन्धकार ने 'किरत' शब्द का अर्थ-विस्तार करके चित्र, स्थापत्य, मूर्ति और लेखन को ही नहीं, प्रत्युत् अध्यापन एवं कृषि को भी इसके अन्तर्गत समाविष्ट कर लिया है । ऐसा प्रतीत होता है कि इन्होंने तन और मन की तल्लीनता और भाव तथा विचार की एकाग्रता से किए गए उद्योग—जिसमें कर्म तथा श्रम संनिहित हों को 'कला' माना है।

निष्कर्ष यही है कि पूर्णसिंह जी के निबन्धों में इनके विशाल अनुभव के दर्शन होते हैं। इनके हिन्दी निबन्धों में कथात्मक शैली का प्राधान्य था, जिसमें भाव-विश्लेषण के लिए प्राकृतिक शोभा यौगिक शब्दावलि और वैज्ञानिक दृष्टांतों का बोलबाला था। किन्तु पंजाबी निबन्धों में पारिभाषिक शब्दों की उधेड़-बुन अधिक दिखाई पड़ती है। भावों की व्याख्या के लिए वेदांत की पृष्ठभूमि और गुरवाणी की तुकों से इन्हें विशेष सहायता मिली है। भावावेश के कारण कई स्थलों पर एक ही वाक्य बिना किसी विरामचिह्न के कई कई पृष्ठों तक चलता है। इसी का फल है कि इनकी विषयवस्तु विश्रृंखलित हो जाती है। एक विद्वान के अनुसार—

"पूर्णसिंह की गद्य में भावनाओं और उद्वेगों का बाहुल्य है। यही कारण है कि इनके लेखों में कहीं कहीं श्रृंखला का अभाव है। उनके द्वारा प्रयुक्त अनेक उद्धरण तो उपयुक्त होते हैं, किन्तु कहीं-कहीं काफ़ी लम्बे हो जाते हैं। आपने भाई वीर सिंह के काव्यांश देते समय पूरी

कविता ही उद्धृत कर दी है ।"[33]

वस्तुस्थिति यह है कि पूर्णसिंह से पूर्व पंजाबी गद्य ब्रजभाषा मिश्रित काव्यमयी शैली से मुक्त नहीं हो पाया था। उनके समकालीन अथवा थोड़े से पूर्ववर्ती गद्यकार श्री श्रद्धाराम फिल्लौरी ने अंग्रेज़ों को सिक्ख इतिहास का ज्ञान करवाने के लिए 'सिख राज दी विथिआ' एवं 'पंजाबी बात-चीत' की रचना की थी । श्री बिहारी लाल पुरी रचित लेख संक्षिप्त होने पर भी अत्यधिक उपदेशात्मक थे । भाई वीर सिंह के लेखों पर सिक्ख इतिहास और सिक्ख दर्शन अधिक हावी रहा । इसलिए प्रो. पूर्णसिंह को ही सिक्ख इतिहास और परम्पराओं के समक्ष पूर्णतया नतमस्तक होकर वैज्ञानिक दृष्टि से मनोभावात्मक, आत्मकथा-परक तथा सैद्धांतिक विषयों को पंजाबी में लाने के कारण युग-प्रवर्तक निबन्धकार कहने में अत्युक्ति न होगी । भावोद्वेग के कारण इन के गद्य पर पद्य का हावी हो जाना पूर्णसिंह जी के अपने कवि-व्यक्तित्व की छाप है । 'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' कहकर साहित्याचार्यों ने गद्य-लेखक की कठिनाइयों को स्वीकार किया ही है । इन्होंने अपनी तथा अन्य गद्यकारों की स्थिति का स्पष्टीकरण पंजाबी पाठकों के समक्ष इस प्रकार किया है :—

"पुरातन जनम साखी...के पढ़ने से ज्ञात होता है कि गद्य लिखना कितना कठिन है । कविता में तो तुकबन्दी अथवा राग आलाप की सहायता से साधारण विचार भी पंख लगाकर उड़ने लगते हैं, और कल्पित शब्दों के हेर-फेर और जोड़-तोड़ से कवि कहला सकते हैं, किन्तु गद्य-लिखना कठिन है, क्योंकि यहां पर रूह और दिमाग (आत्मा एवं बुद्धि) का नग्न-चित्र खिंचता है ।

(पंजाबी साहित्य पर कटाक्ष)

वस्तुस्थिति यह है कि गुरुमुखी की वर्णमाला और ध्वनियों की विशिष्टता के कारण इन्हें भावव्यंजक उपयुक्त शब्दावली के व्यवहार में अनेकशः व्यवधानों का सामना करना पड़ा । फिर भी इन्होंने संस्कृत-

---

33. डा. जगजीत सिंघ : चार प्रमुख वारतककार, पृष्ठ 50

हिन्दी,[34] अरबी-फ़ारसी[35] ही नहीं, प्रत्युत् अंग्रेज़ी शब्दों[36] की शरण लेकर पंजाबी भाषा को सुसम्पन्न बनाने की चेष्ट की। उपयुक्त मुहावरे की खोज में लीन रहने पर भी इन्होंने अनेक सूत्रवाक्यों और परिभाषाओं[37] की स्थापना करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। गुरुमुखी की वर्तनी तथा शब्दरूपों में आज तक भी एकरूपता नहीं आ पाई है। इसी कारण इनके निबन्धों में एक ही शब्द के कई-कई रूप मिलते हैं। फिर भी अपने निबन्ध संग्रह के 'मुखबन्द' में प्रोफ़ेसर साहब ने भविष्य में छिद्रान्वेषण करने वालों से उनके प्रति मैत्री भाव दर्शाने के लिए पहले ही विनम्र निवेदन कर दिया है :—

"पंजाबी बोली मैंने माँ के दूध से इतनी नहीं सीखी, अब भी पैंतो (स) के कई अक्षर मुझे लिखने नहीं आते। पर जब मैं घर आया, "बापू ने दिलासा दिया," वह गुरु जी की कृपा का दरवाज़ा जहां से मैं भाग कर गया था, दोबारा खुलहा, मुझे दोबारा अन्दर दाख़िल किया गया। मैं बख़्शा गया, गुरु जी के देश, सिक्खी और गुरु जी के चरणों का प्यार दोबारा मिला। उस सौभाग्य(वान) घड़ी में गुरु जी के दर पर एक महापुरुष के दीदार हुए, और आपके कृपा कटाक्ष से पंजाबी साहित्य का सारा बोध और विचारों की उड़ान आई। कविता भी

---

34. बिहबल (विह्वल); साखयातकार (साक्षात्कार); प्रहिलाद (प्रह्लाद), त्रिशनां (तृष्णा); वैरागय (वैराग्य); निसबासर (निशिवासर), सपरश (स्पर्श); आलिगन, अद्रिषट (अदृष्ट), दिव्य गुण; विद्या (विद्या)

35. करामात, क्रिशमे (क्रिश्मे); हैवानी, आलीशान, फ़ितरत, मज़्हब, सिलसिले-वार, खाशा

36. निरोल ऐब्सोलूट मज़्हब (Absolute Religion); जिओलोजीकल (Geological); तबदीलीआँ (परिवर्तन); डाईनैमिक (Dynamic)

37. (क) अच्छा होणा कोई हछिआई नहीं, जद तक हछिआई किसे जींदे रंग विच चल नहीं रही। (कवी दा दिल)

(ख) पिआर शूनय फिलसफे दे "शूनय" विच मर जाँदा है। (पिआर)

(ग) बस्स फिक्का बोलणा उह नुकताचीनी है, जिहड़ी वड्डीआँ चीज़ाँ नूं निक्का करके दस्सदी है। (कीरत ते मिट्ठ बोलणा)

मिली और उसी मेहर की नज़र (कृपा दृष्टि) में, उसी मीठे साध (साधु) वचन में मुझे पंजाबी बोली अपने आप आ गई।...अपने आप आई चीज़ के अवगुण शख्शी (व्यक्तिगत) होते हैं...इसलिए मैं हूं तो वह निम्न दर (द्वार) का भीख माँगने वाला...और बालक को क्या खबर होती है, क्या है, माँ ने आभूषण पहना दिए, केशों में मेरे मोती चमक रहे हैं।...सखी सहेली ने फूल लटका दिए लटक रहे हैं।..."

हमारे विचार में यदि पाठकगण पूर्णसिंह जी द्वारा प्रयुक्त प्रतीकों, वैज्ञानिक दृष्टांतों, बहुलार्थक और पर्यायवाची शब्दावली रूपी विभिन्न तलों वाली निसेनी पर सम्भलकर डग भरते चले जाएँ तो उन्हें रस-कलश की प्राप्ति अवश्य हो सकती है। इस उदाहरण में दिव्य प्रेम की चर्चा के अन्तर्गत सुगन्धी (संस्कृत—सुगन्धि) और मुशक (फ़ारसी–मुश्क =खुशबू) पर्यायों से भावों का सरलतापूर्वक स्पष्टीकरण हो जाता है :—

"पिआर शूनय फिलसफे दे "शूनय" विच मर जांदा है।...बिना सुहप्पण दे सारे अनेक रूपाँ रंगाँ दी सुगन्धी दे पिआर जी नहीं सकदा पर सुच्चे दिव्य पिआर दा खाशा है...विगसण उहदा आपणे अन्दर दा खेड़ा है, जिहड़ा बाहर नूँ वेख वेख रीझदा है, शोखदा है, मुशकदा है।[38] (पिआर)

पंजाबी निबन्धों में कई एक स्थलों पर हिन्दी निबन्धों के कुछेक वक्तव्यों को दोहराया भी गया है। किन्तु एक ही उक्ति को विभिन्न सन्दर्भों में प्रस्तुत करने वाले प्रोफ़ेसर साहब अनेक भाव-छटाएँ प्रस्तुत करने में कितने कुशल हैं; यह द्रष्टव्य है :—

पंजाबी उद्धरण

"सो कवी चित्त सदा आपमुहारी निस्सलता में होता है, 'भोले

---

38. प्यार शून्य फलसफ़े के "शून्य" में मर जाता है। बिना सौंदर्य के सभी अनेक रूप रंगों की सुगंधि के प्यार जी नहीं सकता...किन्तु पवित्र दिव्य प्यार की विशेषता है...विकास उसका अपने भीतर का आह्लाद है, जो बाहर (की वस्तुओं) को देख-देखकर रीझता है, लालिमा संपन्न होता है, सुगंधित होता है।

भाव मिले रघुराइआ'। उहदे जीवन दी जिगरी लोड़ इह है ते इह सूझ उहनूं रब्ब ने आपमुहारी दित्ती हुंदी है।"[39] (कवी दा दिल)

हिन्दी उद्धरण

"गुरु नानक ने ठीक कहा है—"भोले भाव मिलें रघुराई", भोले भाले किसानों को ईश्वर अपने खुले दीदार का दर्शन देता है।... ये प्रकृति के जवान साधु हैं।" (मज़दूरी और प्रेम)

हिन्दी के कुछेक विद्वान 'आचरण की सभ्यता' निबन्ध की कूटस्थ शैली के मानसरोवर से मोती ढूंढ़ने में अवश्य असमर्थ रहे होंगे। तत्सम्बन्धी गद्यांश उल्लेखनीय हैं :—

"जिस समय बुद्धदेव ने स्वयं अपने हाथों हाफ़िज शीरानी का सीना उलटकर उसे मौन आचरण का दर्शन कराया...हम एक दूसरे में छिपे हुए हैं। हर एक पदार्थ को परमाणुओं में परिणत करके उसके प्रत्येक परमाणु में अपने आप को ढूंढ़ना—अपने आप को एकत्र करना—अपने आचरण को प्राप्त करना है। आचरण की प्राप्ति एकता की दशा की प्राप्ति है।"

यद्यपि पदार्थ और परमाणु के दृष्टांत से लेखक का कथन काफ़ी स्पष्ट हो जाता है, फिर भी वह बहुभाषी पाठकों के समक्ष इस तथ्य को दोहरा-तिहरा कर पंजाबी निबन्धों को हिन्दी निबन्धों का पूरक बनाने में यत्नशील दिखाई पड़ता है, यथा :—

"कवी चित्त इक चित्तर खिच्चण वाली बुत्तशाला है जित्थे मादा जगत, मुरदा ज़िन्दगी रूहानी जगत दी सदा जीवी जोत—जिन्दगी दी सामिग्गरी है। ना सिरफ़ रूप रंग नूं प्रमाणू रूप कर रब्बी गुणां नूँ चुण चुण आपणे अन्दर भरदा है...सभ नूं आपणी हंस वाली शकती दवारा प्रमाणू प्रमाणू कर सुट्टदा है ते उस विच्चों...रब्बी प्रमाणू कड्ढके चुणके आपणे दिल दीआं लुकीआं तैहां विच्च रब्बी चित्र रूप अकट्ठा करदा है।... कवी चित्त करमाँ भोगां, जोगां, ग्रहिसथाँ, पापां,

39. इसलिए कवि का चित्त स्वाभाविक नि:शल्य (निश्चिंत) अवस्था में होता है, 'भोले भाव मिले रघुराइआ'। उसके जीवन की हार्दिक आवश्यकता यही है और यह सूझ उसे ईश्वर ने नैसर्गिक रूप में दी होती है।

पुन्नां विच्चों दी लंघदा आपणे करमाँ नूँ वी प्रमाणू प्रमाणू कर सुट्टदा है, ते केवल रब्बी करम ते प्रमाणू मिकनातीस वांग उस नाल रहिंदे हण, बाकी सभ आप-मुहारे झड़ जांदे हण।[40] (कवी दा दिल)

प्रो. पूर्णसिंह की उदात्त कल्पना, आलंकारिकता, अद्भुत तत्व, शब्द-चित्र एवं नाद-सौंदर्य गद्य लेखकों के लिए स्पृहणीय वस्तुएं हैं। शब्द को तोड़कर और उसी के अक्षरों को जोड़कर नए शब्द बना लेने में इन्होंने बड़ा कमाल दिखाया है। एतदर्थ एक उदाहरण प्रस्तुत है :

"कवी विरला विरला कोई कोई कदी कदी हुंदा है।"[41]

(कवी दा दिल)

जीवन की उपमा प्रायः 'नाटक', 'लीला', 'मायाजाल' अथवा 'मोहचक्र' आदि से दी जाती है। किन्तु जीवन के प्रति आशावादी पूर्णसिंह इसे एक खेलमात्र समझते हैं। 'क्रिकेट' और 'घुड़दौड़' जैसे उपमान चुनकर इन्होंने नव्य जीवनदृष्टि की स्थापना बड़े सुन्दर शब्दों में की है, यथा :—

(क) संकलप चंगे बुरे अन्दर दे मन्दर स्वरगां थीं मल्लो-मल्ली उथान करदे हन, बाहर लिआ सुट्टदे हन ते बस किरकट दी खेड वाली

---

40. कवि का चित्त एक चित्र खींचने वाली मूर्तिशाला है, जहाँ भौतिक जगत्, मृतजीवन (और) आध्यात्मिक जगत् की—सदैव ज्योतिष्मान जीवन—की सामग्री रहती है। न केवल रूप रंग को परमाणु (किसी कथा को छोटे से छोटा अविभाज्य (अंश=Atom) रूप में परिणत करके ईश्वरीय गुणों को चुन-चुनकर अपने भीतर भरता है। सभी को अपनी हंस जैसी (नीर-क्षीर-विवेक) शक्ति के द्वारा परमाणु (कण-कण) में विभक्त कर देता है। और उसमें से ईश्वरीय कण (अंश) ढूंढ़ कर (एवं) चुनकर अपने दिल में छिपी तहों में ईश्वरीय चित्र के सौंदर्य (रूप) को एकत्र करता है।... कवि-चित्त कर्म भोगों, योगों (संयोगों), गृहस्थों के पापों और पुण्यों में से गुज़रता हुआ अपने कर्मों को भी अंशांशी कर देता है, और केवल ईश्वरीय कृपा (कृत्य=श्लेष के कारण द्वयार्थक) से परमाणु चुंबक की भाँति उसके साथ रहते हैं, शेष सभी स्वयं झड़ जाते हैं।

41. कभी-कभी (बहुत कम) उत्पन्न होता है; ['क' तथा 'व' अद्याक्षर दृष्टव्य हैं]

गल्ल है कि सज्जनां सैंटर थीं ज़रा बाहर होया ते मोया। इउँ सारी उमर मर मर के वी हाले जिंदगी दी सोझी नहीं होई...[42]

(आपणे मन नाल गल्लाँ)

(ख) सो है भावें बुढ़ेपे दी गल्ल, पर सच इह है कि बैल बणीए पंजाली पाईए। हूं वी द दा हूं, जिधर खसम दी रज़ा उधर हालीआं हल वाहणा।

मन जी ! आप वी निस्सल हो बहि जाओ। इह घुड़दौड़ छड्डो, बलद दे रूप विच्च जीवन, बाकी ते निरी मौत जे।[43]

(आपणे मन नाल गल्लाँ)

प्रोफ़ेसर पूर्णसिंह ने अपने समकालीन हिन्दी और पंजाबी विद्वानों की रचनाओं की पुस्तक समीक्षाएँ भी लिखी थीं। इन्होंने कई एक प्रतिष्ठित साहित्यकारों के ग्रन्थों की भूमिकाएं भी लिखी थीं। भाई वीर सिंह की काव्य-कृतियों 'मटक हुलारे' और 'प्रीत वीणा' की भूमिकाएं भी इनके समीक्षात्मक निबन्धों में सम्मिलित की जा सकती हैं। 'बिहारी सतसई' पर प. पद्मसिंह शर्मा को 1200 रुपए का मंगला प्रसाद साहित्य पुरस्कार मिला था। उस समय पूर्ण सिंह जी ने अपने इस मित्र की उपलब्धि की प्रशंसा में 'कावय विदया दा रस चमतकार' शीर्षक पुस्तक-समीक्षा लिखी, जो कि खालसा समाचार, अमृतसर के जुलाई-अगस्त, 1923 के अंकों में छपी थी। इसमें बिहारी के शृंगार और प्रकृति वर्णन की कृत्रिमता लक्षित करते हुए 'बिहारी सतसई' की संक्षिप्तता की तुलना जापान की 'होकू' कविता से की गई है। पूर्णसिंह

---

42. संकल्प अच्छे हों या बुरे, हृदय-मंदिर से स्वर्ग तक बरबस उन्नत होते हैं। बाहर ला पटकते हैं। बस ! क्रिकेट की खेल वाली बात है कि हे मित्र ! (रूपी खिलाड़ी) केन्द्र से ज़रा-सा बाहर हुआ तो पिद गया। इस प्रकार सारी आयु मर-खपकर भी अभी तक जीवन-सूझ नहीं मिल सकी।

43. भले ही यह बुढ़ापे का वर्णन है, किन्तु सत्य यह है कि बैल बनें, जुआ उठाएं, ईश्वर रूपी किसान के हाँकने की आवाज़ [हूँ-द-दा-हूँ=मैं बीज (वी का फल=उपज) देने वाला हूँ] जिधर ईश्वर का आदेश उधर किसान को हल चलाना पड़ता है।

जी हिन्दी और संस्कृत कवियों से तुलना करते हुए बिहारी जी का स्थान इस प्रकार निर्धारित करते हैं :—

"सत्तसई नूं जो कविता कहिंदे हन, मैं हैरान हाँ, उहनां कविता नूँ किन्ना नीचे आण सुट्टिआ है। जो इस्त्री 'माँ' रूप ते "वश्शीआं" रूप विच्च फ़रक़ है, सो इस तर्हां अरथात सत्तसई जिही ते उहनूं कवीआं दी मक्कड़ी दे जाल दी बन्दश वाली इउं आखी गई कविता ते कालीदास जी ते तुलसीदासजी ते सूरदास जी दो कविता विच्च फ़रक़ है। अगर दोवें कविता दा नाम रक्खदीआं हन, तां फ़रक़ इहनां विच्च ज़मीन असमान दा है।"[44]

पंजाबी काव्य-ग्रंथ : प्रो. पूर्णसिंह की तीन पद्यमय पंजाबी रचनाएं प्रकाशित हो चुकी हैं। कुछ छिटपुट कविताएं जो अभी तक सग्रहीत नहीं हुईं, उन्हें पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला की 'पूरन सिंघ सट्डीज़' पत्रिका में छापा गया है। डॉ. महेन्द्र सिंह रंधावा द्वारा सम्पादित और साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 'पूरन सिंघ—जीवनी ते कविता' में कवि महोदय की तीन कृतियां उपलब्ध होती हैं। इनका विवरण प्रस्तुत है :—

I. **खुल्हे मैदान** [खुले मैदान] यह संग्रह पांच भागों में विभक्त है। हमारे विचार में यह विभाजन प्रणाली प्रकृति के पांच तत्वों पर अवलम्बित है। पहले खण्ड का शीर्षक 'पूरन नाथ जोगी' है । इसमें

---

44. (क) जो (लोग) सतसई को कविता कहते हैं, मैं हैरान हूँ कि उन्होंने कविता को कितना नीचे ला गिराया है। जो 'माता' रूप स्त्री और वेश्या रूप का अंतर है वही इस प्रकार (का) अर्थात सतसई (वर्णित) स्त्री में है। वह तो कवियों के मकड़ी के जाले वाला बँधन है। इस प्रकार वर्णित (बिहारी की) कविता और कालिदास जी और तुलसीदास जी और सूरदास जी की कविता में अंतर है। यदि दोनों कविता के नाम से पुकारी जाती हैं तो इनमें ज़मीन और आसमान का अंतर है।

(ख) पंजाबी वाला उद्धरण 'Puran Singh Studies' (अंक पहला, जनवरी, 1979 के पृष्ठ 40) से लिया गया है।

राजा शालिवाहन (सालवाहन) के पुत्र पूर्णभक्त के लोक प्रचलित क़िस्से को काव्य रूप प्रदान किया गया है। तपस्या के लिए 'पूरन नाथ' का योगियों का वेश, पूरननाथ को विमाता लूणा को कामग्नि[44a] और पूरननाथ की जन्मदात्री इच्छरां का पुत्र-वियोग 'प्राकृतिक तत्व अग्नि' के प्रतीक बनकर उभरे हैं।

दूसरे खण्ड 'झनां दोआं लहरां' (चनाब नदी की लहरें) से स्वत: ही नवोन भाव-प्रवाह और शीतलतादायक 'जल' का संकेत मिल जाता है। तीसरे खण्ड में कवि की जन्मभूमि पंजाब के लोक जीवन का महिमा गान अनुस्यूत है। इस प्रकार प्रस्तुत खण्ड में 'पृथ्वी तत्व' समाविष्ट है। इसका शीर्षक भी 'देश पिआर पंजाब मेरा' ही रखा गया है।

'चौथे खण्ड' के शीर्षक 'मैं ते उह' के अन्तर्गत संग्रथित कविताओं में अद्भुतता और रहस्यानुभूति के उदात्त भावों के कारण 'आकाश' तत्व की प्रतीति होती है। 'इक जंगली फुल' नामक पाँचवें खण्ड की लम्बी कथात्मक कविता में बे रोक-टोक बहने वाले प्रेम एवं सौंदर्य में निमज्जित भावावेश को 'वायु' के समरूप माना जा सकता है।

इस संग्रह की पहली रचना 'पूरननाथ जोगी' का समारम्भ अपने पुत्र पूरन के प्रति माता इच्छरां की मंगल कामनाओं से होता है। भारतीयों के अज्ञान की सीवन उधेड़ते हुए कवि ने अपने काव्य का श्रीगणेश कुशल क्षेम से भरपूर माता की मौन आकाँक्षाओं को इंगित करते हुए इस प्रकार किया है :—

"सूरज इच्छरां दी गोद चढ़दे सार,[45]
जोतश[46] दे वहिम ने खा लीता,[47]
कई बरसां दा[48] सूरज ग्रहिण लगा,[49]

44a. लूणाँ नाम ओस अग्ग दी पुतली दा [लूणा नाम है उस आग की पुतली का]

45. सूरज रूपी पूर्ण का जन्म होते ही

46. ज्योतिष

47. हड़प लिया

48. कई वर्षों के लिए

49. उत्प्रेक्षालंकार (मानो सूर्य ग्रहण लग गया) पंजाबी रूप 'लग्गा' होना चाहिए।

राजे सालवाहन ने पुत्त भोरिआँ पा दित्ता[50]

× × ×

मां इच्छरां सबर कर ख़ैर पुत्त दा मनाऊंदी सी[51]
आखे मैंनूं ठण्ढी' वा आवे पुत्तर रहे भोरे[52]
मैथीं वध, रब सच्चा उहनूं सम्भालदा ए[53]..."

वात्सल्य-रस से सम्पन्न इस कृति में प्रकारांतर से अनमेल और बहुविवाह के कुप्रभावों का कथानक गढ़ा गया है। वृद्धावस्था के सालवाहन की युवती पत्नी लूणा अपने सौतेले बेटे पूरन की भरपूर जवानी को देखकर कामुकता और ईर्ष्या की आग में जल उठती है। उसका प्रेम तामस भाव का है। राजपुत्री सुन्दराँ का पूरन से प्रेम राजस भाव की अभिव्यक्ति करता है। प्रेम का सात्विक रूप इच्छरां के ममत्व में निहित है, जिसके लिए बालक पूरन और युवक पूरन में रंच मात्र भी अन्तर नहीं है। पवित्र कुक्षि से जन्म देने वाली माता इच्छरां का मातृत्व भाव पूरन को गोद में लेते ही योगियों की समाधि की सीमाएं स्पर्श करने लगता है, यथा :—

"दिन रात पूरन पूरन करदी, रब्ब नूं[54] कूकदी पुकारदी ए।

× × ×

पी दुद्ध[55] बच्चा निस्सल हो[56] झोली विच्च जद सौंदा[57]
मां आपणे सिर नूं[58] इक पासे चरन रब्ब ते सुट्टके[59]

---

50. अनुप्रास की छटा (बेटे को तहखाने में डाल दिया)
51. धैर्य पूर्वक बेटे का कुशलक्षेम सोचती थी।
52. गुफ़ा में टिका हुआ भोला पुत्र सुखी रहे (उसकी ओर से ठंडी हवा आए) यही वह मनाती थी।
53. मुझ से बढ़कर सच्चा भगवान् उसकी (पूर्ण की) रक्षा करता है।
54. भगवान् को
55. दूध पीकर
56. निःशल्य, निश्चिन्त
57. जब गोद में सो जाता
58. अपने सिर को
59. एक ओर भगवान् के चरणों पर डालकर

अक्खां नीवीआं कर,[60] योग नींदर जिही विच्च[61], नीझ ला[62]
वतसल पिआर विच्च डुब्बी मां बच्चे नूं देखदी है[63]..."

कवि ने वात्सल्य रस की अभिव्यक्ति के लिए अवस्था-भेद एवं योग-अयोग कार्यों की कुंठाएं मिटाकर 'योग' शब्द की अनेकार्थक छटाओं की ओर इंगित किया है। मानो वह योग-साधना में स्त्री को बाधक मानने वाले ज्ञानमार्गी सन्तों को मुंह चिढ़ाता हुआ अपनी रचना का सुखांत इन शब्दों द्वारा करता है :—

ओथे ही खड़े खड़े[64], पिआर-समाधी अखण्ड विच्च सुत्ते,[65] शुकर
विच्च सुत्ते[66], रब्ब दे दिल विच्च सुत्ते।

× × ×

उह गभरू जवान पुत्तर[67] मां दी जफ्फी विच्च सुत्ता[68]
बुड्ढी मां पई मुड़ पुत्तर आपणे दी झोली।[69]
योगी माँ दा बच्चा, योगी राज धिआनी,[70]
योग दी तस्वीर, इक दूजे दी जफ्फी विच्च,[71] पूरन योगदी,
इक बुत्त समाधी दा जेहड़ा अमर होया।[72]

---

60. आँखें नीची करके
61. मानो योग निद्रा में
62. एकटक दृष्टि, ध्यानपूर्वक
63. वात्सल्य (प्रेम) में लीन माता (इच्छराँ) बच्चे (पूर्ण) को देखती है।
64. वहीं पर स्थित
65. प्यार की अखंड समाधि में सो गए
66. मानो ईश्वरानुकंपा में ध्यानमग्न हो गए
67. भरपूर यौवन वाला पुत्र (पूर्ण)
68. माँ की गलबाहों में (प्रेमविभोर होकर) सो गया
69. बूढ़ी माँ को दोबारा (अपनी भिक्षु-झोली में) पुत्र मिल गया
70. ध्यानस्थ योगीराज
71. एक दूसरे की गलबाहों में
72. पूर्ण भक्त, पूर्ण योग-साधना (श्लेषालंकार) योगियों की समाधि अवस्था की एक मूर्ति, जो अमर हो गया।

इउं मिले आखर[73]

रब्ब है विछुड़े मिलाण वाला।[74]

कवि महोदय ने तो इस रचना में योग की सारी शब्दावली भर कर मातृत्व को 'पिआर-योग' (प्रेम-योग) की संज्ञा भी दे दी है। पूर्ण सिंह जी तो यही कहते हैं कि माँ बनना ही स्त्री-जीवन की पूर्णता है। बच्चे के रूप को देखते-देखते वह चित्रकार भी बन जाती है। किन्तु सहज स्वाभाविक स्नेह के वितरण से वह हर बालक के लिए भगवान् का नित्य-अवतार बनकर विश्व-जनीनता की मांगलिक भावना का मुक्त-प्रसार करती है।

'इक वन फुल' लोक कथा-परक प्रतीकात्मक रचना है। एक वृद्ध परचूनिए (Grocer) की पत्नी की तरुणाई एवं सौंदर्य जंगली फूल की भांति विकसित होता है। किन्तु उसकी परख करने वाला कोई विरला ही निकलता है। वृक्ष पर स्थित जीव के प्रतीक द्वारा कवि ने विस्तृत प्रेम और यौवन की पारखी एक सच्ची आंख की ओर इशारा किया है। लूणा के कारण अनमेल विवाह ने 'पूरननाथ जोगी' में विलासिता का रूप धारण करने की चेष्टा की थी। यद्यपि लूणा के अनुताप से आत्मशुद्धि के द्वारा ऐतिहासिक तथ्य की सुरक्षा तो हो जाती है, तथापि पूर्णसिंह जी ने प्रेम के क्षेत्र में उपस्थित हो जाने वाली ऐसी कठिन परिस्थितियों पर क़ाबू पाने के लिए 'इक वन फुल' में बहन और भाई के संयमित स्नेह को एकमात्र उपचार के रूप में उपस्थित किया है। पहाड़ी खत्री दुकानदार की सुन्दर पत्नी और क्रूरकर्मा बलोच युवक का भ्राता-भगिनी भाव मानो भरतवाक्य के रूप में समग्र विश्व को धार्मिक एकता, पुनीत प्रेम तथा त्याग का शिक्षादान कर रहा है :—

"उन्हां भरावां वास्ते मैं अग्ग बाली.[75]

रोटी पका रही हां,[76]

---

73. अंतत: माँ बेटे का मिलन इस प्रकार हुआ

74. ईश्वरनिष्ठ कवि की टिप्पणी—"बिछुड़े प्राणियों की भेंट प्रभु-कृपा से ही होती है।"

75. उन भाइयों के लिए मैंने आग सुलगाई है

76. रही हूं

उस वीरे[77] दूर जाणा है।
धुप्प[78] चड़ रही है।
ते ग्रमीर गाहक वल्ल तक्क उची बोली चिलक के[79]
"लउ भरावो ! रोटीग्रां।[80]
ग्राग्रो ! बच्चिउ ! खाउ,[81]
बड़ी देर हो गई है।

पवित्र-प्रेम का यही सागर इस संग्रह की ग्रन्य रचनाग्रों में ठाठें मारता दिखाई पड़ता है। लोक साहित्य-विश्रुत प्रेम पात्र सस्सी-पुन्नूं, सोहनी-महिवाल, हीर-राँझा ग्रादि के क़िस्सों को दोहराने के स्थान पर कवि महोदय ने उनकी झोंपड़ी तथा टिमटिमाते दीपक की लौ में बचे-खुचे स्मृति चिह्नों को जोड़कर स्निग्ध स्नेह का कीर्तिस्तम्भ उसारने की चेष्टा 'सस्सी दी नींद', 'सोहणी दी झुग्गी[82] 'सोहणी दा बुत्त' ग्रौर 'हीर ते रांझा' नामक कविताग्रों में की है। गृहस्थी रूपी रथ के स्त्री-पुरुष नामक दो पहियों की स्वस्थ गति के लिए 'एक ग्रकेला थक जाएगा मिलकर बोझ उठाना' का मंजुल सन्देश 'कुमिहार ते कुमिहारन', 'घर की गहल[83] चंगी,' 'पंजाब दी ग्रहीरन इक गोहे थप्पदी'[84] शीर्षक कविताग्रों में छिपा है। पंजाबियों का श्रम-गौरव, नाच-गान, पराक्रम, ग्राचार-विचार, सर्वधर्म एकता तथा ग्रात्म-सम्मान के सुन्दर नमूने 'पंजाब दे मजूर,' 'हल वाहुण वाले',[85] 'खूह उत्ते[86] 'पुराणे पंजाब नूं[87]

77. उस भाई को दूर जाना (लंबी यात्रा करनी) है।
78. धूप (ग्रर्थात् दोपहर होने को ग्राई)
79. ग्रौर (सौंदर्य के पवित्र पारखी) ग्रमीर ग्राहक की ग्रोर झाँक कर तथा चीख कर कहने लगी
80. लो भाइयो ! रोटियाँ (लो)
81. ग्राग्रो ! बच्चो (बलोच के बच्चे) ! खाइए।
82. झोंपड़ी
83. गृहिणी।
84. उपले थापती
85. हल चलाने वाले (कृषक)
86. कुएँ पर
87. को

आवाजां,' 'जवान पंजाब दे' शीर्षक कविताओं में उपलब्ध होते हैं। 'रौनक बाज़ार' में अमृतसर के हॉल बाज़ार की एक झांकी मिलती है तो 'पंजाब दी अहीरन इक गोहे थप्पदी' में महाराष्ट्र, गुजरात, मद्रास, बंगाल और विदेशी नारियों की तुलना में पंजाब की स्त्रियों की सुन्दरता, सरल हृदयता और "कार्य ही पूजा है" (Work is Worship) के जीवन-लक्ष्य की प्रतिष्ठा की गई है। गूदड़ी के लाल के समान ग़रीब पंजाबिन द्वारा आर्थिक आपदाओं पर विजय-प्राप्ति की अभिलाषा के निम्नोक्त दृश्य में संनिहित पंजाबी पहनावे, कवि की वर्ण-योजना मानव एवं भौतिक प्रकृति का सामंजस्य तथा आलंकारिता हमें सम्मोहित कर लेती है :—

साहमणे[88] इक धुप्प विच डुब्बी,[89] कंध नाल,[90]
खड़ी सी[91] इक जवान कुड़ी लम्मी,[92] अहीरन पाथीआं
गोहे दीआं थप्पदी[93]
सिर थीं[94] पल्ला मलमल दा पिआ उडदा हवा विच[95]
लहिंगा सावी सूसी दा, मद्धम जिहा सावा[96]
कुझ ज़रा-ज़रा,[97] किधरों-किधरों फटिआ,[98], गंढिआ होइआ[99]
पर रंग पुराणा वी पक्का सोहणा[100]

---

88. सामने
89. भावमग्न और धूप सेंकती (पूर्णतया निमग्न)
90. दीवार से सटी
91. थी
92. एक तरुण तथा लंबे कद की लड़की
93. अहीर जाति की, जो कि गोबर से उपले थाप रही थी।
94. से परे
95. हवा में उड़ रहा था
96. आभाहीन हरा रंग
97: थोड़ा-थोड़ा
98. कहीं-कहीं फटा हुआ
99. टाँके लगा हुआ
100. अत्यंत सुन्दर

कप्पड़ा घस जाए नाल होर होर शोखदा[101] !
विच पीली पीली पिड़ीआं,[102] रंग गूहड़ा पीला[103]
किनारा लाल रत्ता किरमची,[104] अद्धी अद्धी गिरह दा[105]
इह लहिंगा, छलछले हो[106] उस अहीरन दे लक्क थीं ढहिंदा[107]
सी, वांग इक वगदे छंभ दे
ते विच छंभ[108] दे सूरज दी सोने दीआं किरनां दे रंग खेडदे ।[109]

× × ×

ते बैठी सी पाथीआं थप्पदी
ते बस्स हुणे उठी कंध उत्ते थापी लाण नूं ![110]

× × ×

ते उच्छलदी उह मज़ूरी दे जोश विच,[111]
मज़ूरन उह किसी अणडिट्ठे पिआर दी,[112]
मां बाल-बच्चिआं दी[113]
बच्चिआं दी ख़ुशी खातर गोहे पई थप्पदी !''[114]

---

101. कपड़ा घिस जाने पर और भी (विभिन्न थिगलियों या टाँके के अनेक रंगों के धागों के कारण) शोभा देता है।
102. धारियाँ।
103. गहरा पीला रंग ।
104. गहरे लाल रंग का।
105. आधे-आधे।
106. यह लहंगा छलछलाता हुआ।
107. कमर को छूता हुआ।
108. झील [छ(घर)+अंभ(जल)]
109. खेलते हैं; शोभा देते हैं।
110. और बस अभी-अभी दीवार पर उपला थापने के लिए उठी है।
111. वह मज़दूरी (परिश्रम) के जोश में उछलती है।
112. अदृष्ट प्रेम में निबद्ध वह मज़दूरिन।
113. बाल-बच्चों की माता।
114. परिवार-पालन के लिए उपले थाप रही है।

रूढ़ि, वहम और पुरातनवादिता कहकर पंजाब के आह्लादमय एवं समन्वयवादी आदर्शों का टेंटुआ दबाए जाने की करुण गाथा 'पुराणे पंजाब नूं अवाजां' और 'पंजाब नूं कुकां मैं'[115] कविताओं में श्रवण-गोचर होती है, यथा :—

इह की है मुरदिहाण जिही ?[116]

× × ×

उह जंञां किथे[117] ? उह विहल, उह खुल्ह, उह चाअ[118]
दस्सो न किथे दुर गिआ सारा[119]

× × ×

उह घोड़ीआं, उह सुहाग[120]
उह दो दो गल्लां ते हासे[121]
उह दाते,[122] उह भण्डारी : उह जाँञी,[123] उह मांञी[124]
उह जंञां जगमग किथे,[125] केसर दीआँ रंगीआं ।[126]

× × ×

सभ जीण दा चाअ होण माण, थींण दा नशा किथे ?[127]

---

115. पंजाब के लिए मेरा करुण-चीत्कार ।
116. शोक संतप्त वातावरण जैसा यह क्या है ?
117. वे बारातें कहाँ हैं ?
118. वैसा अवकाश, वैसी स्वच्छंदता, वैसा चाव ?
119. बताओ न ! कहाँ सब भाग गया ।
120. पंजाब के विवाहगीत 'घोड़ीआं' (वरके घर में गाए जाने वाले) और 'सुहाग' (वधू के पीहर में गाए जाने वाले) ।
121. दिल की बातें और हँसी ।
122. दानी पुरुष ।
123. बाराती ।
124. विवाह के मंढे से संबद्ध नारी-पुरुष ।
125. बारातों की जगमगाहट कहाँ है ?
126. केसर की सुगंधि से भरे केसरिया कपड़ों वाले बाराती ।
127. जब मनुष्य को सम्मान मिले तभी जीने का चाव है,अस्तित्व की मस्ती है ।

उह पिग्रारी बसन्त दीग्रां फुल्लां दीग्रां होलीग्रां,[128]
बाग़, बाग़, भर पिचकारीग्रां, रूपां दा खेडणा[129]
उह लोहीग्रां दी लक्कड़ां दी मंग बूहे[130]
उह कुड़ीग्रां दा जुड़न ग्रग्ग दे चुफेरे ते गिद्धे पा पा गाउणा ।[131]

× × ×

वहिम जे उड्डे तां उड्डे सदके[132]
वहिमां दा उड्डणा ज़रूर सी
पर साडीग्रां[133] सारीग्रां खुशीग्रां नाल गईग्रां ।[134]
जिंद कित्थे टुर गई[135] नाल रूह कित्थे टुर गिग्रा ?[136]
ग्रोखा है जिंद फसणीग्रां नूं कड्ढणा[137]
कण्डे नालों फुल्ल तोड़णा, फुल्ल नूं मारना है ।[138]

× × ×

दवाई खा मरीज़ ही मोइग्रा,[139] साडे हत्थ की ग्राइग्रा ?[140]

---

128. फूलों भरी वसंत का होली पर्व ।
129. सुन्दर व्यक्तियों का पिचकारियाँ भर भर कर प्रसन्न होना ।
130. लोहड़ी मनाने लिए घर-घर जाकर लकड़ियाँ माँगने का गीत ।
131. (क) 'लोहड़ी' की ग्रग्नि के चारों ग्रोर लड़कियों का एकत्र होकर 'गिद्धा' नाच (ताली बजाकर नाचना) करना ।
    ख) विशेष ग्रध्ययन के लिए देखें—"लोहड़ी समन्वयात्मक लोकपर्व" कृत डॉ. नवरत्न कपूर ।
132. यदि पुराने विचार समाप्त हो रहे हैं तो हमें कोई खेद नहीं है ।
133. हमारी ।
134. साथ ही नष्ट हो गईं ।
135. ज़िन्दगी कहाँ चली गई ?
136. ग्रात्मा कहाँ चली गई ?
137. जीवन-तंतुग्रों को परे हटाना कठिन है ।
138. काँटे से फूल को तोड़ना फूल की हत्या है ।
139. दवा खाकर रोगी ही चल बसा ग्रर्थात् हमारी बातों का उल्टा प्रभाव हुग्रा ।
140. हमें क्या लाभ हुग्रा ?

दिल साडे सक्खणे,[141] लाट[142] बुझ गई है ।

(पुराणे पंजाब नूं अवाज़ां)

'पूरननाथ जोगी' के अतिरिक्त अन्य कविताओं में योग-सम्बन्धी वर्णन अत्यल्प हैं। फिर भी जहां कहीं लेखक को अवसर मिला है, उसने वहाँ योग-साधकों के ढोंग पर फब्तियां अवश्य कस दी हैं। 'हनुमान' में माला के मनके तोड़ने वाले रामभक्त वानरराज के 'ध्यान-योग'' 'कृष्णजी' में ब्रह्म के निराकार और साकार रूप के सामंजस्य; 'तड़फदी घुग्गी,' 'इक सुनेहा किहा पिआरा,' 'आवीं तू रब्बा मेरिआ,' 'मैं निशाना मार नहीं जाणदा,' 'कंवारी पदिमनी' आदि कविताओं में रहस्यानुभूति की झलकियां मिलती हैं। सम्भवतः इसी को प्रो. कृपाल सिंह कसेल ने 'ध्यानी-प्रेम' कहा है । उन्हीं के शब्दों में :—

"ध्यानी-प्रेम की ध्यानस्थ गहन दृष्टि में वह पवित्र और पुनीत विशुद्ध आत्माओं (Pure Spirits) की विश्व-व्यापी साझेदारी को प्रत्यक्षतः देखता है । ...यह एक विशुद्ध सिक्ख-सन्त का दिव्य दृष्टिकोण हैं और रहस्यवादी रूप में नव-अध्यात्मवाद का सर्वोच्च लक्ष्य, जो कवि के परम-चैतन्य ध्यान में साक्षात् हुआ है ।"[143]

'लोकीं कहिण रब्ब सभ विच है, सभ कुछ है' शीर्षक कविता में श्रीमद्भगवद्गीता के 'सर्वभूतस्थात्मानं' (अ० 6, श्लोक 29) की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि ईश्वर व्यक्ति में नहीं है, उसके सही कृतित्व में है। 'गारगी' कविता का शीर्षक कवि की पुत्री के नाम पर है, जिसमें राजा जनक के समकालीन ब्रह्मवेत्ता याज्ञवल्क्य और विदुषी गार्गी के ब्रह्म विषयक विवाद की ओर इंगित करके रूह (आत्मा) के आवागमन का परिचय दिया गया है। भारतीय दर्शन में 'आत्मा' विषयक अनेक शब्दों का प्रचलन रहा है, किन्तु लेखक ने उनके स्थान पर 'रूह' शब्द चुनकर अपनी अन्य रचनाओं में 'आत्मा' को जो अर्थवत्ता प्रदान की है उसकी नींव 'गारगी' कविता में धरी गई है।

---

141. हमारे हृदय शून्य हैं।

142. ज्योति; ज्ञान का प्रकाश।

143. प्रो. क्रिपाल सिंघ कसेल : पूरन सिंघ, पृष्ठ 30-31।

'इनसानियत' के वज़न पर 'रब्बानीग्रत' शब्द को गढ़कर कवि ने आद्याक्षर 'इ' (स्त्री) के द्वारा गुह्यसंकेत दिया है कि स्त्री का जामा पहनकर आई आत्मा सृष्टि की उत्पत्ति का साधन बनकर विश्वजनीन (पूरा मर्द एवं पूर्ण स्त्री=ईश्वरीय रूप) बन जाती है । यही नग्न सत्य (Naked Truth) है, यथा :—

तीमीं विच मैं[144] मरद पूरा[145]
मरद विच मैं तीमीं पूरी हां।
मैं हां दोहां विच[146] 'नंगी—इनसानीग्रत,'[147]
मैं हां दोहां विच 'इक—रब्बानीग्रत'[148]
× × ×
मैं नूं आखण मैं नंगी हां[149]
जनक दी सभा दे सारे 'ब्रह्मवेते'[150]
झल्ले सारे देखण नांह
मैं सदा नंगा सच हां।[151] (गारगी)

आत्मा के परलोक सिधारने की चर्चा इन पंक्तियों में की गई है :—

अग्गे ब्रह्म दे देश वी
रूह ही नंगा जाउंदा
जाणन नांह, मैं मौत दी दीवार दे पिच्छे दी सवेर हां ।
(गारगी)

---

144. स्त्री में।
145. सांगोपांग।
146. दोनों में।
147. मानवीयता।
148. ईश्वरीय तत्व, आध्यात्मिकता ।
149. मुझ से कहते हैं मैं नंगी हूं !
150. ब्रह्मज्ञानीजन ।
151. (क) सभी उन्मादग्रस्त हैं, (इसी लिए) देख नहीं पाते कि मैं संसार के नग्न सत्य के शाश्वत रूप की बात करती हूं ।
(ख) विशेष अध्ययन के लिए देखें—डॉ. रतन सिंघ जग्गी (सम्पादित) : खोज पत्रिका; पूरन सिंघ विशेषांक, अंक 17, मार्च 1981 (डॉ. नवरतन कपूर : 'गारगी—रूहाँ दे देश दा आतम-चिंतन), पृष्ठ 346-54 ।

खुल्हे घुंड [खुले घूंघट] : प्रोफ़ेसर पूर्णसिंह का दूसरा कविता-संकलन है। इसे संज्ञा-प्रदान-विधि में प्रेम की दीवानी 'मीराबाई' के निम्नोक्त वचनों तथा इसके विषय-प्रवर्तन में भक्त प्रवर तुलसीदास के नीचे लिखे उपदेशों ने पृष्ठभूमि प्रदान की है :—

(क) घूँघट के पट खोल रे तोहे पिया मिलेंगे।
घट घट में वह साईं रमता कटु वचन मत बोल रे ॥

(मीराबाई)

(ख) दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िए, जब लगि घट में प्रान ॥

(तुलसीदास)

अब तक कवि महोदय अपने निबन्धों और 'खुल्हे मैदान' में योगियों पर कटाक्ष और प्रेम के सही स्वरूप के साथ-साथ विश्व के अतीत एवं वर्तमानकालीन परिस्थितियों का दिग्दर्शन करवाते रहे हैं। सम्भवतः अपने इन्हीं साहित्यिक विषयों की उपयोगिता–अनुपयोगिता का आत्म-परीक्षण करते हुए पूर्णसिंह जी 'खुल्हे घुण्ड' के 'मुखबन्द' में लिखते हैं।

'यह कहना कि एक 'अमली इनसान' (व्यवहारज्ञ मनुष्य) पैदा हो जाए और उसकी उत्पत्ति के पीछे कोई 'फलसफा' (दर्शन) न हो, यह कहने के तुल्य है कि'आदर्शमयी इनसान अज्ञान के मण्डल की उत्पत्ति है,' जो बात कि होठोंकी मुस्कराहट से अधिक कदरदानी की हक्कदार(आदर की अधिकारिणी) नहीं है, पर फिर इस कथन का क्या अर्थ है ? इसका उत्तर यह है कि, केवल दिमागी तलाश और लभ्य(ता) उन इनसानों की, जो आत्म जीवन वाले नहीं, किन्तु निरे (नितांत) विद्वान हैं, बुद्ध (बुद्धि) की चतुरता और विचार के गोरखधन्धे रच सकती है। किन्तु ये केवल पढ़-पढ़ा कर समझ लेने से 'तअल्लक' (सम्बन्ध) रखती है। करतूत (Action) की ओर प्रेर भी देती हैं (प्रेरित करना), किन्तु असली ज्ञान (जान, प्राण) और ठोस नींद (अर्थात् अज्ञान) करतूत (अर्थात् कार्य–विधि) की नहीं रखतीं।" (पृष्ठ 293)

ऐसा प्रतीत होता है कि गुरमति में प्रवेश से पूर्व पूर्णसिंह जी की आत्मा अपनी काव्य-प्रतिभा को आज़माने के लिए विषयों की खोज में भटकती रही। किन्तु उसकी 'मृग-तृष्णा' वाली खलबली पर गुरवाणी

मंथन से हस्तगत नवनीत ने मरहम का कार्य किया। सिक्ख गुरुओं के प्रति कृतज्ञ कवि सभी बुराइयों को जड़ 'अभिमान' के विवेचन हेतु शब्द-ब्रह्म की गहराइयों में पैठने लगा :

मैं ढाडी[152] उच्चे,[153] आलीशान,[154] गुरु नानक करतार दा
अज्ज[155] मेरा गीत सिख 'अमैं' नूं गाउँदा[156]
मैंनूँ कोमल उनरीं किरत, धिआन दोवें[157] अंम्रित-दरबार
पुचाउंदे,[158]

× × ×

किरत लगी सुरति धिआन बज्झी[159] सुरति उनर करतारी
ईह सिक्खी दा उच्चा कमाल[160] मैं अज्ज गाउंदा
इह मैं नहीं माइआ दी,[161] 'अमैं' है पिआर दी,[162] सेवा दी
किरत दी, सुहप्प-आशकी,[163]
जुगो जुग होई[164] इह विरली विरली,[165] पर रूह कदी कोई,[166]

---

152. प्रशस्ति-गायक (चारण)।
153. महान।
154. भव्य।
155. आज।
156. सिक्ख धर्म में सम्मानित 'मैं-रहित' (अमैं=अहंकार विहीन) का गायन।
157. विद्या (ज्ञान) और ध्यान दोनों ही।
158. पहुंचाते हैं।
159. ध्यान में तल्लीनता।
160. सिक्ख-धर्म की यह महान विशेषता।
161. यह माया आधारित अभिमान नहीं है।
162. प्रेम मिश्रित अहंकारहीनता (विनम्रता) है।
163. सौंदर्य-प्रेम।
164. युग-युगांतर से चली आ रही।
165. अलभ्य।
166. किन्तु कभी कोई आत्मा।

बुद्ध देव जी दे भिखू सुहणे,[167] बोधीसत्व लोकी[168] सुहणी
किरत इह पछाणदे
धरू प्रहिलाद ने इहो गीत गाविआ[169]
फलसफे दी लोड़ नाहीं[170]
आप मुहारी[171] समझ पैंदी, किरत–जीवन लोड़ है ।[172]
जीवन-उनर दी सोझी कदम कदम सिखदी, दम बदम[173]
दस्सदी पक्कदी,[174]

× × ×

सिमरन दा दीवा घट बले जद[175]
तद (उनर) आरट[176] सुरति नूं सवारदा[177]

× × ×

मैं दा गीत गाइआ जरमनी दे नितशे[178]
गीता दे गीत थीं वी वखरा[179]
उपनिखदाँ दी ब्रहम[180] 'मैं' दा गीत नांह

---

167. सुन्दर बौद्ध भिक्षु ।
168. बोधित्सव को पहचानने वाले लोग ।
169. ध्रुव और प्रह्लाद (जैसे सरल हृदय बाल-भक्तों ने) इसी (गर्वशून्यता) का गायन किया ।
170. दर्शन की आवश्यकता नहीं है ।
171. स्वत: ।
172. जीवन में कर्मठता की आवश्यकता है ।
173. श्वास-प्रश्वास ।
174. पूरी तरह बताता है ।
175. जब ईश्वर-स्मरण से ज्ञान का प्रकाश होता है ।
176. आर्ट ।
177. सँवारता है ।
178. जर्मन का नित्शे ।
179. श्रीमद्भगवद्गीता के गीत से भी भिन्न ।
180. उपनिषद् वर्णित 'अहं ब्रह्मोऽस्मि' ।

मैं गुर-सिक्ख 'अ+मैं' अज्ज गाउंदा ।

× × ×

मैं ताँ अज्ज चरन कमल सँग जुड़ी
जोड़िआं नैनाँ नूँ वेखदा[181]
वेख, वेख[182] मैं चीख—गीत गाउंदा
सिख 'अमैं' का गीत सारा गूंजदा

× × ×

मेरे इस गीत दा अलाप पूरा मैंनूँ पिआ दिस्सदा[183]
जिवें मेरे दिल विच सारा पूरा वस्सदा[184]

× × ×

इह गीत सारा उतरिआ मींह वांग वस्सदा ...।''[185]

(भूमिका : खुल्हे घुण्ड)

इस ग्रन्थ में कुल 19 कविताएं हैं। गुरवाणी में अभिमान के लिए 'हउमैं' (हउ+मैं=मैं मैं) का बहुल प्रयोग हुआ है । पूर्णसिंह जी ने "श्री गुरु ग्रन्थ साहिब" में प्रयुक्त 'हउमैं' तथा इसके अन्य पर्यायों को ध्यान में रखकर दार्शनिक उक्तियों के द्वारा इस विकार का निषेध किया है। व्यक्तिगत 'नाम' के स्थान पर 'ईश्वर-नाम-स्मरण'[186] तथा सभी कर्मों को ईश्वर-समर्पण[187] करने पर बल दिया गया है । ईश्वर में ध्यान लगने (सुरति[188] जोड़ने) के लिए अभिमान के बहिष्कार की प्रेरणा दी गई है। इस प्रकार 'अहं' शब्द की विभिन्न छटाएं 'खुल्हे घुण्ड' की

181. नयन-युग्ल का दर्शन ।
182. बार-बार देखकर।
183. दिखाई पड़ता है ।
184. मानो मेरे दिल में संपूर्ण रूप में बसा हो ('उत्प्रेक्षालंकार' की शोभा दृष्टव्य है) ।
185. यह सारा गीत वर्षा की भाँति बरसता हुआ (पृथ्वी पर) अवतरित हुआ है ('वस्सदा' की पुनरुक्ति में यमक अलंकार निहित है) ।
186. नाम मैं पुच्छाँ नाम मेरा की है ? (मैं पूछता हूँ मेरा नाम क्या है ?) नामक 'कविता' ।

अधिकांश कविताओं में मिलती हैं। एतद्विषयक उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(क) "इस काई भूत[188]—'मैं' नूँ पालदे,
कीड़े वधदे, कतूरे..." [फ़लसफ़ा ते आरट (उनर)]

(ख) हउ जी हउ,[189] इह मोईयां मन दा कमला यकीन कऊ[190]
हउ जी हउ, मोईआं मनां दा धरम भरम, योग, भोग कऊ,
(पिआर दा सदा लुकिआ भेत)

(ग) हंकार नूँ जगाणा
है कमजोर करना बलवान नूं
हंकार नूँ आखणा[191] शेर तूं
इह टेक कक्ख दी[192]।

(सुरति ते हंकार)

(घ) असूल जिहे मन विच बहि बणाना इह हंकार है।[193]

× × ×

दुख देणा जां—सहिणा जाण जाण[194]

---

187. करम करम कूकदे, कौन करता ? (कर्म कर्म चीखते, कर्ता कौन है ?) नामक कविता।

188. (क) 'सुरति ते हंकार' (Consciousness & Ego) नामक कविता।
(ख) 'गुरू अवतार सुरति' शीर्षक कविता।
(ग) काया (शरीर) मिश्रित तत्व; सेंवार घास में छिपे भूत-प्रेत के समान 'अहं' भाव (उपमा, रूपक और श्लेष-सौंदर्य दर्शनीय है)।

189. (क) मैं ही जीने योग्य हूं।
(ख) यह किसी निर्जीव मन का उन्मादग्रस्त विश्वास है।

190. श्री गुरु ग्रंथ साहिब में इसका प्रयोग बहुधा हुआ है; यथा :—"हउ कुरबानी गुर आपणे जिनि विछुड़िया मेलिआ मेरा सिरजनहारा"
(गउड़ी बैरागणि महला 4, 11/1/3)

191. कहना।

192. (डूबते को) तिनके के सहारे वाली बात ('लोकोक्ति अलंकार')।

193. मनोनुकूल सिद्धांतों का निर्माण अहंकार-सूचक है।

194. दुःख देना अथवा जानबूझ कर दुःख सहना।

इहो काफ़र हंकार है।

(ङ) अनेक होणा दा होणा, अनगिणत 'मैं—ग्रां' दी ममतां[195]
(पिआर दा सदा लुकिआ भेत)[196]

अध्यात्म जगत् में 'अहं' को पंच मनोविकारों में भरपूर महत्व दिया गया है तो क्या 'मैं' (अहं) की जड़ काटकर सारे दार्शनिक सिद्धांतों को दुत्कार दिया जाए ? पूर्णसिंह जी ऐसा नहीं चाहते। वे तो आत्मचिंतन द्वारा ज्ञान के प्रकाश से 'मैं' की यथार्थता को समझाने के लिए 'मैं' को ही जीव-जगत के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं, यथा:—

"मैं तां बाहर विहड़े विच बैठी रौशनी,[197] जो आओ, जी आओ आखदी,[198] विहड़े उहदी दे बाहर दा रस हां,

मैं दरवाजे दे अन्दर दी लक्ख[199] गहिम गहिम[200] हां, गहिणे पाई,[201] सजो धजी, नवीं विआही, लाड़ी[202]—सुहणप्प हां,[203] भीड़ां अन्दरलीआँ विच फसी खड़ी[204] मेरा मुँह नवीं[205] जवानी चढ़ी दे पसीने दे मोतीआँ दी लड़ीआं विच अद्धा कज्जिआ।[206]

---

195. जैनियों का अनेकांतवाद, अनगिनत 'अहंकारों' (अभिमान की निरंतर वृद्धि)' की ममता का द्योतक है।

196. 'पिआर का गुप्त रहस्य'।

197. आँगन में स्थित प्रकाश।

198. स्वागतार्थ 'जी आइआँ' कहती हूं।

199. लक्षित, लाख (अगण्य)।

200. चहल पहल हूं।

201. आभूषण युक्त।

202. नवविवाहिता वधू।

203. सौंदर्य हूं।

204. गहरी तंगदिली में ग्रस्त।

205. नवयौवन।

206. पसीने के मोतियों की लड़ियों से आधा ढका हुआ।

आ तक्क निरंकारी जोत जिहड़ी गुरु नानक जगाई आह ![207]

(पिआरी 'सिक्ख-मैं' होई करतार दी)

कविता के शीर्षक के अनुसार कवि को 'मैं' के सही गुणों की पहचान गुरवाणी से ही हो सकी। इसीलिए इन्होंने 'मैं' की विशेषताओं को समय एवं स्थानानुकूल हृदयंगम भी करवाया है, उदाहरणार्थ :

(क) सब की वृद्धि देखते हुए प्रसन्न रहना और अपने सभी कर्मों को प्रभु-अर्पण कर देना 'साधु सन्तों' का स्वभाव है। ऐसी दशा में 'मैं' भी 'अमैं' ('मैं' रहित) हो जाती है । इसके सन्देशवाहक त्यागशील भर्तृहरि हैं :—

इह 'साध-मैं' पिआरी,
चर, अचर वेख खुशदे :[208]
मिगाँ दे सिंग इहदी नँगी-पिट्ठ खुरकदे[209]

चिड़ीआं इहदे नैणां थीं[210] रस-बूँदां टपकदीआं[211] पींदीआं, पी पी[212] रज्जदीआं,[213] मूंह उप्पर चक्कदीआं, तक्कदीआं,[214] घुट घुट भरदीआं,[215] सवाद दे,[216] लिओ भरथरी जी वी आखदे[217]

× × ×

इह मैं दा 'अमै' जिहा[218] सच्चा स्वरूप है

---

207. आकर उस निरंकारी ज्योति का दर्शन करो जिसे श्री गुरु नानक देव ने प्रज्वलित किया था।

208. जड़ जंगम सभी देखकर प्रसन्न होते हैं।

209. मृगों के सींग भर्तृहरि की नंगी पीठ को खुजलाते हैं।

210. आँखों से।

211. टपकते (रस-बूंद) आँसू।

212-213. पी-पी कर तृप्त होना

214. मुंह ऊपर उठाकर देखती हैं।

215. एक-एक घूंट पीती हैं।

216. स्वादिष्ट ।

217. लीजिए भर्तृहरि जी भी कहते हैं।

218. अमै (अभिमान-रहित)—जैसा।

इत्थे[219] 'मैं मैं' न सोभदी,[220]
इत्थे 'मैं मैं' नूं न पालदी,[221]
मैं बस्स इक मौज अकहि अनन्द दी [222]...

(सुरति ते हंकार)

अकथनीय आनन्द की यही लहर – 'अमै' ('मैं' रहित; 'अमृत' = अमरत्व)—की अवस्था देह रहने पर भी भर्तृहरि जी की तरह विदेह होने पर ही प्राप्त हो सकती है। काव्यालंकार (प्रतीक) के द्वारा कवि ने इसे 'पारसा' (पवित्रात्मा) लोगों की 'मैं' के अर्थों में भी व्यक्त किया है :—

"इह 'पारस—मैं' सभ जग-प्रकाश है

× × ×

होर[223] मैं "कुझ नहीं"[224] ठीक
होर मैं सदा 'है नहीं" ठीक
पर 'पारस—मैं' ने इस 'नहीं' विच[225]
"सभ कुझ" ते "सदा है,"[226] जोत जिही, रखी,[227] इक जीअ
जिहा बहालिआ[228]

इह पारसिक मैं,[229] दिस्सण पिस्सण विच,[230]

---

219. यहाँ।
220. शोभित नहीं होती।
221. पालन नहीं करती।
222. मैं बस अकथनीय आनंद की एक लहर हूं।
223. इसके अतिरिक्त।
224. कुछ भी नहीं।
225. किन्तु पारसा लोगों की 'मैं' ने इस अभिमान रहित भावना द्वारा।
226. सब कुछ और सदा है
227. ज्योति-सी रख दी है।
228. एक जीव (आत्मा) जैसा बैठा दिया।
229. पवित्रात्माओं का 'अहं' (आत्मपरायणता)।
230. देखने और (समय की गति में) पिसने वाला।

दूजे पत्थरां वांग निक्का जिहा पत्थर,[231] पर समुन्दरां दे
समुन्दर इस कतरे विच कम्बदे ।[232] (पारस मैं)

सरल हृदय बालक में भी यह 'आत्म' (भाव) स्पृहणीय है :

मैं मैं करदीआं, निक्के निक्के बच्चे ते बच्चीआं !
वाह ! किहीआं सुहणीयां ! सुहणीयाँ ![233]

(मंज़ल अपड़िआँ दी रोज़ मंज़ल)

ईश्वर में ध्यान (सुरति) लगाकर इस 'मैं' से 'अमैं' होने के रहस्य को समझने का सन्देश 'अहं' के अन्य पर्यायों द्वारा इस प्रकार दिया गया है :

(क) 'ईगो,'[234] 'अहंम' नूँ सुरति पछाणदा ।[235]

(गुरू अवतार सुरति)

(ख) सुरति इकल्ली नांह कदी,[236]
हंकार सदा इकल्ला[237]

× × ×

सुरति रब्ब दी जोत इनसान विच
हंकार भैड़ा हैवान जंगली ।[238]

(सुरति से हँकार)

(ग) पारस, मैंनूं, 'अमैंनणा' (भाव है 'मैं' को अ+मैं करना) के सम्बन्ध में लेखक को दिव्य दृष्टि (पिआर दा सदा लुकिआ भेत) गुरवाणी की निम्नोक्त तुक से मिली :

'मन नींवां, मत उच्ची' । (गुरू अवतार सुरति)

---

231. अन्य पत्थरों की तरह छोटा-सा पत्थर ।
232. किन्तु अनेक समुद्र इस की एक बूंद से काँपते हैं।
233. वाह ! कितनी सुन्दर लगती है।
234. Ego.
235. पहचानता है ।
236. कभी भी अकेली नहीं होती ।
237. अहंकार सदा अकेला रहता है ।
238. अहंकार जंगल के भयानक पशु के समान है

इस प्रकार कवि ने सांसारिक लोगों को 'हउमै झक्खड़' (अभिमान रूपी आंधी) से बचाव के लिए गुरवाणी के सन्देश की व्याख्या इस प्रकार कर दी है :

(क) इस राग-रंग विच 'मैं' 'मैं' सभ करूप दिस्सदी,[239] करूप हुन्दी,[240] शरमांदी, नस्सदी,[241] भैड़ी-भैड़ी, फिक्की-फिक्की, पै पै के,[242]

इत्थे अगम्म दरबार उच्चा[243]
इत्थे सच्च-रस वरतदा[244]
नाम रस वाहिगुरू,
नीवीं नीवीं गल्ल होर सभ बेअदबी ![245]

(गुरू अवतार सुरति)

(ख) मैं तां पागल जिही होंद दा[246]
मैं जद घुण्ड खोहल आउंदी; दरिआ थंम्हदे,[247] झुकदे, मत्था टेकदे[248] लंघदे

× × ×

पिआर वाला सदा लुकिआ भेत इह,[249] खुल्हे घुण्ड दा वेला[250] कोई कोई विरला, विरली विरली रूह, कोई

---

239. सब कुरूप दिखाई पड़ती है।
240. कुरूप बनती हूं।
241. भागती हुई।
242. गंदी और फीकी होकर।
243. यहाँ अगम्य (ईश्वर का) ऊँचा दरबार है।
244. यहां पर सत्य-रस व्याप्त है।
245. विनम्र बचनों के अतिरिक्त (और सभी कथन) अर्थात् 'गाल बजाना' (परमेश्वर का) निरादर है।
246. मैं तो पागल-से अस्तित्व का।
247. मैं जब (अज्ञान का) घूँघट खोल कर आती हूं तो नदियाँ रुक जाती हैं।
248. झुक कर प्रणाम करके जाती हैं।
249. प्रस्तुत।
250. समय।

अनेमी जिहा,[251] भाग जिहा, कदी कदो दिस्सदा।[252]

(पिआर दा सदा लुकिआ भेत)

राजयोग का रहस्योद्घाटन : सन् 1912 में पूर्णसिंह जी ने गुर-सिक्खी धारण कर ली थी। आर्थिक परिस्थितियों के कारण इन्हें सन् 1918 में पटियाला आना पड़ा। इन्हें वहां पर अनेक सिक्ख विरोधी प्रवृत्तियों का आभास हुआ। पटियाला नरेश भूपेन्द्र सिंह पर उन दिनों कौल-तांत्रिकता का अमिट प्रभाव था। अतएव ये पटियाला में अधिक दिन टिक न सके। सन् 1922 में अमृतसर से 'जत्थेदार' दैनिक पत्र आरम्भ हुआ। उन्हीं दिनों महाराजा पटियाला और महाराजा नाभा में राजनैतिक कारणों से मुठभेड़ हो गई। दो सिक्ख रियासतों की परस्पर फूट की आग में हाथ सेंकने वाले अंग्रेज़ी-शासन ने महाराजा पटियाला का समर्थन किया। किन्तु सिक्ख जनता और स्वाधीनता सेनानियों में से अधिकांश को सहानुभूति नाभा-नरेश के प्रति थी।

प्रो. पूर्णसिंह ने काव्य-सृजन की प्रेरणा के सार्विक नियमों में अपने कृतित्व को सम्मिलित करते हुए इस प्रकार स्थापनाएं की हैं :

"कवि-चित्त एक पारदर्शी अनोखा-सा शीशा है।...जो उस पर पड़ते हैं वे जीवित चित्र के रूप में प्रकट होते हैं...यह गढ़न भाव-स्फुरण के रेखाचित्र हैं, अनेकशः संकल्प-चित्र (Idea Pictures) अन्दर (हृदयांतर्गत) लटकती हैं...पूर्ण कोई नहीं होता, रेखाचित्र कोई पूरा, कोई आधा, एक रेखा-सी, कोई एक रंग की तरह काँपता हुआ हृदय में पहुँचता है और एक नई किन्तु (हृदय की) पर्तों में 'अनुगढ़ी' (अव्यक्त) दुनिया बनने का प्रभाव पड़ जाता है।...कवि सहज-स्वभाव, बिना प्रयोजन एक स्थान पर, किसी अन्य कारणवश खड़ा है। कुछ सौदा ले रहा है और वहां अचानक एक अत्यन्त रूपवती कन्या किसी अन्य कार्य वश आई है। बस ! कवि की आंख ने बिजली की कौंध सदृश आवेशमय प्रकाश में उस लड़की के रूप को देखा। उसकी भौंहों की कालिख दिल को अच्छी लगी, अथवा कान का झुमका हिलता हुआ दिल को छू गया,

---

251. नियम रहित-सा।

252. भाग्यवान-सा (अथवा बहुत थोड़ा) कभी-कभी दिखाई पड़ता है।

ग्राँखों की पलकों में दैवी सत्ता की कोई पवित्र द्युति दिखाई पड़ी... समय बीत गया...कवि दृश्य को भूल गया, किन्तु दस साल बाद ग्रापके भीतर से एक बना हुग्रा पूरा चित्र निकला, जिसमें वह उस दिन देखी हुई (कन्या के) ग्रच्छे लगने वाले ग्रंग या रंग या रूप की झलक, पलक, मटक, ग्रदा जो कुछ था, वही नितांत उसी रूप में चित्राभासित हो रही है, ग्रापने नहीं कुछ किया। यह ग्रापके कवि चित्त की सहज-स्वाभाविक 'रसिक किरत' है।" (कवि दा दिल—पंजाबी निबन्ध)

पटियाला-यात्रा के चार वर्ष बाद ही नव प्रकाशित समाचार पत्र 'जत्थेदार' ने पटियाला-नाभा काण्ड में पटियाला रियासत का पक्ष लिया[253]। क्रांतिकारियों के समर्थक प्रो. पूर्णसिंह पटियाला में सिक्ख सिद्धांतों से खिलवाड़ के घिनौने दृश्य देख चुके थे। इसलिए इन्होंने 'फलसफा ते ग्रारट (उनर)' कविता ग्रपनी ग्रायु के ब्यालीसवें वर्ष में लिख डाली। व्यंग्योक्तियों में लेखक ने ग्रन्य सामन्तों के साथ-साथ ग्रपने ग्राप को भी लपेट लिया, यथा :—

जिवें मैं बताली साल बाग्रद वी ना-वहिम थीं ना निकल सकदा,[254]
कोई बुलाए मैंनूं कन्न वांग घोड़ी घोड़े दे खड़े कर सुणदा[255]
खुश हुन्दा, हिणकदा खोता[256]

पर ग्रफ़सोस इन्नाँ[257] कि मैंनूं[258] घोड़ी घोड़े जिन्नी वी ग्रकल
नहीं[259] ग्राई हालीं तक्क,[260]

उह तां बोलदे जद मालक सीटी मारदा[261]

253. सूबा सिंघ : पंजाबी पत्तरकारी दा इतिहास, पृष्ठ 84 ।
254. वहम से निकलने में ग्रसमर्थ ।
255. घोड़ों ग्रौर घोड़ियों के समान कान उठाकर सुनना ।
256. प्रसन्नचित्त हिनहिनाता गधा ।
257. इतना।
258. मुझे।
259. जितनी भी बुद्धिमत्ता नहीं ग्राई।
260. ग्रब तक (42 वर्ष की ग्रायु तक)।
261. वे तो मालिक के सीटी बजाने पर बोलते हैं।

उह हिरणहिरणांदे जद जद साँई कदी दिस्सदा[262]
ते मैं हाले खोते दा खोता, कोई परख न सिंझाण नाँह ![263]

जब प्रोफ़ेसर साहब पटियाला राज्य की सेवा के लिए आए थे तो यहाँ पर नगर के प्रत्येक चौक में एक मन्दिर और एक मस्जिद[264] बने हुए थे, जिनमें धार्मिक ग्रंथों का पाठ होना स्वाभाविक ही था। फिर भी कौल-साधना वाले तांत्रिक के चंगुल में फंसे पटियाला-नरेश और उनके दरबारी देवी पूजा के रूप में सुरा और सुन्दरी के द्वारा 'तन्त्र-योग' की सिद्धि में विश्वास करने लगे थे। कवि ने बड़ी पैनी दृष्टि से इन सभी बातों को परखा और फब्तियों की सामग्री जुटा ली, यथा :—

गीता पढ़न,[265] कुरान पढ़न,
उपनिषद पढ़न, पुरान सारे[266]
हनेरे विच, रब्ब थीं भुल्लिआ[267]

× × ×

करतार नूं भुल्ल के उहदे बुत्तशाला, चितरशाला थीं[268] निकल,
मन दी कोठड़ी हनेरी विच[269] कैद हो 'मैं'-'मैं' दी काली रात विच
रहिंदे,[270] कदम सभ, बस्स, उलट पैंदे,[271] धिआन सारा उलटा,
जोग, उलटा पैंदा, भोग वी पुट्ठा हो मारदा,[272] धरम खाण

262. (गधे तो) तब हिनहिनाते हैं जब कभी उनका स्वामी दिखाई पड़ता है।
263. किन्तु मैं तो अभी तक महामूर्ख गधा हूं, जिसे किसी प्रकार की परख और सूझ नहीं है।
264. आज भी पटियाला के चौराहों पर मन्दिर उसी प्रकार हैं। मुसलमानों के पाकिस्तान को प्रस्थान कर जाने के बाद मस्जिदों में श्री गुरु ग्रंथ साहिब की स्थापना हो जाने से ये स्थान 'गुरुद्वारा' कहलाने लगे हैं।
265. पढ़ते हैं।
266. सभी पुराण-ग्रन्थ।
267. रात्रि के अंधकार (अज्ञानवश) में भगवान् को भी भूल गए।
268. संसार के निर्माता—चित्रकार, मूर्तिकार ईश्वर को भूलकर।
269. मन की (मतिहीन) अंधेरी कोठड़ी में।
270. निवास करते हैं।
271. सभी क़दम उलटे पड़ते हैं।
272. भोग (विलास) भी महंगा पड़ता है।

नूं ग्राउंदा,[273] रब्ब वैरी दिस्सदा[274]।
जीणा मरन थीं वध दुखदाई
मरन नसीब नहीं हुन्दा[275]

× × ×

पर ग्रमर कोई नहीं
सवाद नहीं ग्राउंदा, रस नहीं ग्राउंदा इन्नां वी जिन्नाँ दो पैसे दी
ग्रफ़ीम विच,[276] इक पिग्राले शराब विच

× × ×

इहो नांह खेड धरम थीं ग्रधरम होण दी[277]
बिनाँ रस दे जोग थीं भोग चंगा लग्गदा[278]
मुड़ मुड़ पिग्राले पी पी, जनानीग्राँ दे गले लग्गदे, मोए होए
मोइग्रां नूं मारदे, कीड़े, कतूरे वधदे, होर हुन्दे वध, गुलामी
करन नूं भूतां दी,किरत थीं छुट्टड़ लोकीं, मारे फ़लसफे ठग्ग ने[279]।

पूर्णसिंह जी ने कविता के ग्रारम्भ में पटियाला रियासत के संस्थापक बाबा ग्राला सिंह को एक दार्शनिक के रूप में ग्रन्य पांच जाट-किसानों के बीच दिखाया है। ग्राला सिंह खेती-बाड़ी का काम छोड़कर साधु बन गए थे, यह एक ऐतिहासिक तथ्य नहीं है। वे तो पक्के सिक्ख थे, जिन्होंने ग्रहमदशाह दुर्रानी के साथ सन्धि के समय उसे सवा छः

273. धर्म काटने को दौड़ता है।
274. भगवान् शत्रु प्रतीत होता है।
275. जीवन मृत्यु से भी बढ़कर दुखःदायी है, फिर भी मौत नहीं ग्राती।
276. इतना भी जितना कि दो पैसे की (ग्रर्थात् थोड़ी–सी) ग्रफ़ीम में।
277. यही तो धर्म से ग्रधर्म होने का खेल है।
278. योग की नीरसता के कारण भोग विलास में रुचि बढ़ती है।
279. प्याले के प्याले (शराब) उड़ाते हैं। स्त्रियों से गलबाहीं करते हैं। निर्जीव (निर्दयी) पुरुष (ग्रबला) स्त्रियों को मारते हैं। भोग विलास से ग्रवैध संतान कीड़ों ग्रौर पिल्लों के समान पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ रही है। साम्राज्यशाही (के भूत) की दासता के लिए। परिश्रम से भटके हुए लोग (तंत्र–योग) दर्शन की ठगौरी में फंसकर मर रहे हैं।

लाख रुपए भेंट किए थे। प्रस्तुत राशि में सवा लाख रुपया अधिदेय इसलिए रखा गया था ताकि दुर्रानी उनके सिक्ख धर्म के प्रतीक 'केशों' को कोई हानि न पहुँचाए।[280]

बाबा आला सिंह के पितामह अवश्य योगसाधना करते थे। भ्रम वश इसी प्रक्रिया में उनका दाह संस्कार भी कर दिया गया था।[281] हमारे परिवार को 'सरहिन्दी कपूर' कहा जाता है। आज भी हम लोगों में एक जनश्रुति प्रचलित है कि बाबा आला सिंह साधुओं के गेरुए वस्त्र धारण कर पठानों की छावनियों में भेद लेने के लिए सरहिंद आते थे। बाबाजी एक रात के लिए हमारे एक पूर्वज बाबा नारायणदास जी की हवेली में ठहरे भी थे। हमारे इन बुज़ुर्ग का निवासस्थान मुहल्ला 'हलालपुरा' में था (आज यह 'हरलालपुरा' नामक गांव हैं)। वहां सरकारी स्कूल के पास बाबा नारायणदास की समाधि थी। नारायण दास जी ने बाबा आला सिंह के पक्ष में सरहिंद के युद्ध में लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की थी। इसके उपलक्ष्य में उन्हीं के दो वंशजों—सर्वश्री गणेशदास और महेशदास नामक सगे भाइयों—को बाबा आला सिंह ने

---

280. Dr. Ganda Singh : Ahmad Shah Durrani—Father of Modern Afghanistan, Page 281.

281. The death of Phul is said to have happened in the following manner. The Governor of Sirhind had thrown him into prison on failure to make good his revenue collections; and Phul, seeing no other way to escape, practised the accomplishment he had learned from Samerpuri, and suspending his breath and showing no sign of vitality, was supposed by his guardians to be dead, and his body was given for cremation to his friends, the Pathans of Malerkotla, who conveyed it to his home. It so happened that his first wife, Bali, alone knew the mysterious power possessed by her husband, and she was absent on a visit to her father. The younger wife, believing the husband dead, placed his body on the funeral pire and burnt him in the orthodox manner.

—Lepel H. Griffin : The Rajas of the Punjab, Page 7-8.

अपने अश्वपति बना लिया था। हम आज भी 'सरहिंदी कपूर' कहलाते हैं। सुबह-सुबह 'सरहिंद' का नाम लेना हमारे कुल में पाप समझा जाता है। अवश्यमेव यह धारणा गुरु गोविन्दसिंह जी के साहिबज़ादों की शहीदी के कारण उस स्थान के प्रति वितृष्णा की सूचक है।[282]

बाबा आलासिंह के कृषि-कार्य का बिम्ब-विधान 'पत्तर' (पत्ता, समाचार पत्र) और बीज (अन्न का आधार, वीर्य) श्लेषार्थक शब्दों के प्रयोग के लिए किया गया प्रतीत होता है, यथा :—

'मिट्टी विच की है ? बीज फड़ सुक्का हरिआंवदी...पत्तर कड्ढ कड्ढ, चितर जींदा, जींदा खिचदा, की इह उही बीज है।'[283]

आश्चर्य नहीं कि पटियाला में पूर्णसिंह जी को 'पटिआला गज़ट' साप्ताहिक के पंजाबी संस्करण[284] के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, उर्दू आदि में अन्य

---

282. क) जागृति, अंक 12, दिसम्बर 1975 (चंडीगढ़) [डॉ. नवरत्न कपूर : चाचा जी उर्फ़ वीरजी] पृष्ठ 28; पंजाबी दुनीआ (प्रो. पूरनसिंह विशेषांक) फ़रवरी-अप्रैल, 1981 [डाँ नवरतन कपूर : प्रो. पूरन सिंघ दी पटिआला यातरा—कुझ यादाँ] पृष्ठ 20-24।

ख) Ala Singh delegated the authority to his subordinates according to his own views and discretion by verbal orders. Hindus & Muslims were appointed irrespective of any consideration. Of their religion though the former were mostly appointed Dewan.

—Punjab History Conference Proceedings (1971), Page 142

283. बीज क्या है ? बीज को संभाल (कर डालने से) सिंचाई रहित स्थान हरा भरा हो जाता है। बड़े सजीव चित्रों वाला (अर्थात् घटनाओं से पूर्ण अथवा पत्तों से भरा पौधा, क्या यह वही बाबा आला सिंह का वंश है ? (क्या यह वही छोटा-सा बीज है जो इतना बढ़ गया है)।

284. एक और उल्लेखनीय साप्ताहिक पत्र 'पटिआला गज़ट' है, जो 20 मार्च, 1910 को पटियाला से जारी हुआ। इसकी विशेषता यह है कि इसे जारी करने के उपरान्त महाराजा पटियाला को यह आभास हुआ कि अब हालात बदल चुके हैं और अब जनता के सहयोग बिना गुजारा नहीं है।

—सूबा सिंघ : पंजाबी पत्तरकारी दा इतिहास, पृष्ठ 53

संस्करण छापने का कार्य भार सौंपा गया हो। किन्तु महाराजा भूपेन्द्र सिंह की हास-विलास और खेल-तमाशों में व्यस्तता के कारण ठप्प प्रशासन में पत्ता भी नहीं हिलने पाया।[285] फ़िलासफ़र की फब्ती में मानो प्रो. पूर्णसिंह का निजी अनुभव पूर्णतया घुला हुआ है :—

है ! की सारा साल ही लंघ गिआ,
मैं तां हाले इत्थे अपड़िआ कि खेती करना साडे वस्स दी ही चीज़ नांह,
हल काहनूं मारना ! मींह पाणा जो वस नांह सभ कम्म कसूतरे !
कम्म करना निहफल जिहा दिस्सदा।[286]

'कमलिआ,' 'तीमी,' 'मेरीअत,' 'जट्टा बुझिआ,' 'बहुड़ी,' 'इउं,' 'चीरमां,' 'दस्सखां मनखा,' 'छाई माई,' 'आपां नूं ताँ,' देखण ('वेखण' के स्थान पर), ओह (उह के स्थान पर), सौं जाओ (सैं जाओ), कसूतरे (लाचारी सूचक) जैसे 'पटियालवी प्रयोगों' से अपनी झोली भरकर ले आने वाले प्रो. पूर्णसिंह के लिए पटियाला का राजयोग महंगा नहीं पड़ा।

'फ़लसफ़ा ते आरट (उनर)' का चौथा भाग और 'पारस मैं' कविताएं राजपूत-राज्य सिंधिया के ग्वालियर दरबार में नौकरी के दिनों की यादें बनकर उभरी हैं। प्रोफ़ेसर साहब ने अगस्त, 1922 के मॉडर्न रिव्यू में स्टेला क्रामरिश का एक लेख पढ़ा था,[287] उसी का स्मरण इन्होंने 'धिआन दी धुन्द जिही' कविता के दूसरे खण्ड में किया है।

---

285. Gaiety & sport continued at regular intervals during the year while administrative machinery of the State came to a stand still.

—Diwan Jarmany Dass : Maharaja, P. 47

286. अरे ! क्या सारा साल बीत गया ? मैं तो अभी तक यहीं पहुंचा हूं कि खेती (रूपी शासन) हमारे वश की बात नहीं है। हल क्यों चलाएँ, वर्षा होना अपने वश की बात नहीं, बरस जाए तो सभी काम सँवर जाएँगे। इसी लिए काम करना निष्फल-सा लगता है। (भवितव्यता पर विश्वास करने वाले महाराजा और उनके निठल्ले कर्मचारियों पर गहरा कटाक्ष है)।

287. Steela Kramrish : Indian Art—Its Creative Power.

'पारस मैं' में चौके के बर्तनों की खटापट में जापानी कलाकार ओकाकुरा की 'Ideals of the East' नामक पुस्तक में उल्लिखित भारत की ऐलिफेंटा और इलोरा की गुफ़ाओं के चित्रों में व्यक्त शृंगारिकता के प्रति आक्रोश को नए ढंग से प्रस्तुत किया गया है। 'बुद्ध जी दा बुत्त, धिआनी बुद्ध' कविता में जापान की सूक्ष्म मूर्तिकला को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए सौंदर्य-सृष्टि में आकाश और पृथ्वी के मिलन की मनोरम कल्पना भी की गई है, यथा :—

> मूरत कौण देखदा,[288] दरशनाँ नूं लोचदे[289]
>
> × × ×
>
> इथे ताँ पत्थर विच आवेश नूं टोलदे[290]
>
> — — —
>
> आकाश किभ[291] इन्हां बाहीं राहीं हिठाहां उतरदा,[292]
> ते धरत[293] किभ इन्हां बन्द नैनां राहीं उताहां नूं चढ़दी[294]
> किरत दे पारखी रमज़ां गुझीआं छिप्पीआं नूँ टोलदे[295]
> नैनाँ वाले नैनाँ नाल तक्कदे ।
> लकीरां ते रेखां ते घूरां ते मन्द मन्द निरवानी हासे नूं पछाणदे[296]

'अद्धी मीटी अक्ख भाई नन्द लाल जी दी'[297] कविता में गुरु

---

288. मूर्ति को कौन देखता है ?
289. दर्शनों के लिए लालायित रहते हैं।
290. यहाँ तो पत्थर में आवेश को ढूंढते हैं ।
291. किस प्रकार।
292. इन बाज़ुओं द्वारा पृथ्वी पर उतरता है।
293. धरती ।
294. ऊपर को चढ़ती है ।
295. गुप्त रहस्यों को ढूँढते हैं ।
296. ज्ञानवान गहन दृष्टि से परखते हैं, वे (बुद्ध की मूर्ति) की हरेक रेखा, नयन-मुद्रा और निर्वाणावस्था के मंदहास्य को पहचानते हैं ।
297. भाई नन्दलाल जी की अधमुंदी आँखें।

गोविन्द सिंह के दरबारी कवि नन्दलाल जी की महानता का प्रदर्शन हुआ है। 'गुरु अवतार सुरति' में गुरवाणी के मुख्य सिद्धांतों का सार दिया गया है, जो कि श्रद्धालुओं के लिए सही मार्गदर्शन करवाता है। ग्रंथ के भरतवाक्य में भी आशावादी कवि जीवन में गुरवाणी को अपनाकर अग्रसर होने की शिक्षा देता है :

इह भेत[298] सिख-आवेश दा,
सिक्ख-इतिहास दा,
गुरू नानक, गुरू गोविन्द सिंघ दी अकाली बाणी दा[299]
इह दरशन गुर-अवतार सुरति दा।
अग्गे, पिच्छे, अज्ज, कल्ह, भलके दे[300]
कदमां नाल कदमाँ मिला के
टुरना, टुरना, टुरना,
टुरना, टुरना, टुरना।[301]

खुल्हे असमानी रंग : सन् 1857 की क्रांति के उपरान्त अंग्रेज़ों ने भूमि-सुधार (Reclamation of Land) के लिए अनेक योजनाएं बनाईं। इस में पंजाब के जंगली और रेतीले क्षेत्रों के उद्धार (Reclamation) की ओर विशेष ध्यान दिया गया। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु रावी नदी के जल का नियन्त्रण करने के लिए इस का प्रतिबन्धन वहीं से किया गया, जहां से यह नदी मैदानी क्षेत्रों में प्रवेश करती थी। एतदर्थ अमृतसर तथा लाहौर ज़िलों में घुमा-फिराकर (traversing) रावी के जल को पुनः मुलतान ज़िले में पहुँचाने के लिए सन् 1861 में 'उच्च बारी दोआब नहर' (Upper Bari Doab Canal) की स्रोतस्विनी फूट उठी। कालांतर में 'उच्च झेलम नहर' (Upper Jhelum Canal), 'उच्च चनाब नहर' (Upper Chenab Canal) की योजनाएं सामने आईं। इन नहरों के खुदने तक पंजाब के लाहौर पार की भूमि बंजर (Barren) या जंगली

---

298. सिक्खों के जोश का यह रहस्य।
299. काल रहित, ईश्वरीय वाणी का।
300. आगे, पीछे, आज, कल, परसों।
301. पग को पग से मिलाकर निरंतर चलते ही रहना है।

झाड़-झंखाड़ से भरी हुई थी।[302]

'बारी' शब्द 'ब्यास' और 'रावी' दो शब्दों को जोड़कर दोनों नदियों (दो+आब=जहां दो नदियों का जल प्रवाहित हो) के इलाक़े को ध्यान में रखकर गढ़ा गया था। इसी प्रकार चनाब और झेहलम के बीच के क्षेत्र 'चझ' (चज्ज), रावी एवं चनाब के मध्यवर्ती क्षेत्र 'रचना' (रावी+चनाब) तथा ब्यास और सतलुज के बीच के भाग 'बिस्त दुआब' कहलाने लगे। झेहलम और सिन्ध के अन्तर्वर्ती सन्धि स्थल को सिन्ध सागर दोआब की संज्ञा से सुशोभित किया गया था।

अंग्रेज़ी में 'बार' भूगोल शास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ है नदियों के बहाव के समय नीची जगहों पर इकट्ठी हुई कड़ी दुमट (Stiff Loam) या रेत और बजरी का टीला (Ridge of Sand and Shingle)[303] सम्भवत: अंग्रेज़ी शब्द Barren (बंजर) के अंग्रेज़ी उच्चारण में शब्द के उतरार्द्ध (Ren) की हल्की ध्वनि होने और पूर्वार्द्ध (Bar) की अक्षरावलि का पूर्वोक्त 'भौगोलिक 'बार' (Bar)[304] से अक्षर साम्य—

---

302. The digging of these canals was accompanied by a massive rahablitation of the desert lands. Till then the doabs had been scenes of "unparalleld desolation · miles of dry & barren wart, dotted with sparse scrub jungle and stunted trees, but devoid of any whisper of life."
—Khushwant Singh : A History of Sikhs, Vol. II, Page 117 (Based on a paper by Sir J. Douie, May 7, 1914, Royal Society of Arts, London).

303. The soil of the tract commanded is for the most part a light sandy loam, and in years of good rainfall it repays dry cultivation...
—Sir James Douie : The Punjab, North West Frontier Provinces and Kasmir, Page 136.

304. A ridge of sand & shingle formed in the sea across the mouth of river or the entrance to a bay or harbour and lying approximately parallel to the coast : often called an offshore bar. To distinguish between the bar which is

(Contd. on page 122)

अकारण ही ब्यास और रावी के जलसिंचित नहरी इलाक़ों के—'बारी' (Bari) से सामीप्य स्थापित करने लगा। इस प्रकार मुख-सुख के कारण 'बार' शब्द बहुलार्थक बनकर अपनी भीनी-भीनी गन्ध से शिक्षित-अशिक्षित सरकारी कर्मचारियों और खेतिहरों के हृदय को छूकर चिरजीवी बन गया।

खुल्हे असमानी रंग [खुले आसमानी रंग]—अपने इस तीसरे काव्य-संग्रह की 'दो गल्लां' (दो बातें) के आरम्भ में पूर्णसिंह जी लिखते हैं :—

"पंजाब बार में इस सर्दी में मेरे प्रियजनों ने एक तम्बू तानकर रहने के लिए स्थान दिया—डेरा लगा लिया खुले आकाशों के तले—मिट्टी और धूल के समुद्र पर जिस प्रकार छोटी-सी बेड़ी जाती है—नहरों ने नील नदी से सटी उपजाऊ बस्ती का रंग जमाया है, किन्तु बार की रूह (आत्मा) अभी तक 'बां-बां' करता एक वीरान ही है—जब मैं इन आबाद किन्तु सुनसान देशों में आया, कपास अपने जोबन पर थी, गेहुं (की बालियाँ) नई नई फूट रही थीं।"

(पृष्ठ 387)

इस ग्रन्थ के दो भाग हैं। पहले का शीर्षक 'बार के रंग' रखा गया है, जिसमें 19 कविताएं सम्मिलित हैं। दूसरे में कुल सात कविताएं हैं। 'बार' अंग्रेज़ी भाषा का भूगोल शास्त्र से सम्बद्ध एक पारिभाषिक शब्द है। इसमें अंग्रेज़ी शासनकाल के मुलतान मण्डल (Division) का सारा क्षेत्र, शाहपुर और गुजरात ज़िले, गुजरात मण्डल का अधिकांश भाग एवं लाहौर की दो पश्चिमी तहसीलें सम्मिलित थीं।[305] यह फिर चार भागों में बंटा हुआ था; यथा, सांदल बार, नीलीबार, गंजी (Bald)

(Contd. from page 121)

submerged, even if only at high tide, and the bar which is exposed, the latter is sometimes termed a Barrier Beach or Barrier Island.

—W.G. Moore : A Dictionary of Geography, P.17-18.

305. H.A. Rose : A Glossary of the tribes & castes of the Punjab and North West Frontier Province, vol.I, P. 16.

और जांगली बार[306]। भारत की पश्चिमी सीमा तक विस्तृत जांगली बार में शेखूपुरा, लायलपुर, मुलतान, चोचावतनी तथा मिंटगुमरी से सटे ज़िलों के ग्रामीण क्षेत्र आते थे। ज़िला शेखूपुरा के डाकखाना चक नं. 29 (ज़मीन की हदबन्दी का क्रमांक) के अन्तर्गत जड़ांवाला गांव में अप्रैल 1927 में प्रो. पूर्णसिंह ने 'खुल्हे असमानी रंग' की अधिकांश कविताओं का प्रणयन किया था। इस संग्रह के समर्पण-पद्य में प्रोफ़ेसर साहब ने नज़ीर अकबराबादी की निम्नलिखित चार पंक्तियां रखी हैं :—

यिह रंग सो गुजरेगा,
सुबो शाम रहेगा,
औरों का नहीं,
ह तेरा फ़कत नाम रहेगा।

यदि प्रत्येक तुक की आद्याक्षरी को जोड़ा जाए तो 'यि+सु; औ+ह' से 'औह (वह)' 'यिसु' (ईसू=ईसा) बनता है। अर्थात् वाह ! ईसा। शब्द 'नज़ीर' का अर्थ है दृष्टांत और अकबर+आबादी का शाब्दिक अर्थ है : विशाल आबादी (बस्ती)। मरणोपरान्त कवियों की प्रतिष्ठा पुस्तकों से ही रहती है। फिर पूर्णसिंह जी तो लौट-फिर कर धरती पुत्र बनने के लिए जांगली बार में आए थे। इसलिए निम्नोक्त वेदवाक्य आप पर पूर्णतया चरितार्थ होता है :

माता भूमि पुत्रोऽहं पृथिव्या:।
नमो मात्रे पृथिव्यै, नमो मात्रे पृथिव्यै ॥

जड़ांवाला में 'पाम रोशा घास' का फॉर्म बनाना, वास्तव में उस इलाक़े में 'जंगल में मंगल' मुहावरे का व्यावहारिक अर्थों में जड़ें जमाने वाला कार्य था। क्रान्तिकारियों के सम्पर्क में रहने वाले और उनके

306. टेकसाज (अमेरिका) के समुद्री तट के साथ-साथ भी रेत के टीले (Sand Bars) हैं। संभवत: उसी के आधार पर सैंड से साँडल=साँदल बना है। नहरों के जल की नीलिमा ने नीली, बंजर सपाट भूमि के कारण 'गंजी' और जंगली झाड़-झंखाड़ों से भरे क्षेत्र के लिए 'जांगली' शब्द प्रचलित हो गए।

आश्रयदाता पूर्णसिंह जी ने विज्ञान के क्षेत्र में उपलब्धियों का ढेर लगा दिया था। अब ये अपने काव्य-जगत् को अप्रस्तुत-योजनाओं की आधार-भूमि पर विराजमान जीव-जन्तुओं के कर्णधार बनकर अवतरित हुए थे।

सन् 1907 में जांगली बारों और नई आबादियों (तत्कालीन पश्चिमी पंजाब, अधुनातन पाकिस्तान) में बसे किसानों पर अंग्रेज़ी सरकार ने अनेक पाबन्दियाँ लगा दी थीं। इसके फलस्वरूप धनी किसानों में रोष की लहर दौड़ गई थी। इसी मामले में—अंग्रेज़-विरोधी आन्दोलन के नेता—लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को भारत से निर्वासित कर दिया गया था। इसी दौर में बाँके दयाल का गीत 'पगड़ी सम्भाल जट्टा, पगड़ी सम्भाल ओए, लुट्ट लिआ माल तेरा' देश के कोने–कोने में गूंज गया था।[307]

स्वाधीनता संग्राम की एक महत्वपूर्ण घटना से जुड़ी जांगली बार की इस पवित्र भूमि पर पूर्णसिंह जी रोष और आक्रोश की प्रतिक्रियाओं से भरपूर होकर नहीं प्रत्युत् शान्ति और कर्मठता के अग्रदूत बनकर पधारे थे।[308] ऐसे जांगली जाति के लोगों के बीच, जो अपने मैत्री-भाव के कारण सुनाम भले ही प्राप्त न कर सकी हो। किन्तु मरने-मारने की भावना से सम्पन्न उक्त जाति 'जांगली' (वन्य) की घिनौनी संज्ञा के कारण बदनामी का टीका अवश्य लगवाए हुए थी।[309] पुरातत्व प्रेमी

---

307. सूबा सिंह : पंजाबी पत्तरकारी दा इतिहास, पृष्ठ 50।

308. आप करों की चोरी के विरोधी थे और सरकारी लगान चुकाना आवश्यक समझते थे। यद्यपि जुलाई–अगस्त, 1928 की बाढ़ में आपका चक 73/29 वाला फ़ॉर्म बह गया था। संकटों के बावजूद भी आपने मामला चुकाकर ही शांति ली।

—महिन्दर सिंह रंधावा : पूरनसिंघ : जीवनी ते कविता, पृष्ठ 125

309. In these you would find the same hardy tribal race of primitive habits, their language the same, their fighting spirit of 'might is right' the same. Above all, their spirit of camaraderie was unique. Such were these brave

(Contd. on page 125)

प्रोफ़ेसर साहब तो इन भ्रमणशील आदिवासियों को सिकन्दर के साथ आने वाले यूनानी सिपाहियों के वंशज मानते थे और इनके साहस तथा परिश्रम से अत्यन्त प्रभावित थे।[310] ये तो इन अपढ़ जांगली लोगों के साथ खूब घुल मिल गए थे। जांगली ही इनके खेतों में मज़दूरी करते थे और उनका मुखिया बाबा मुराद तो इन्हें छोटे भाई के समान मानता था। मेहन्दी रंगे भूरे बालों वाले मुराद साहब का पूर्णसिंह जी के परिवार में अत्यन्त सम्मान होता था और घर के सभी लोग भी उन्हें लोकप्रिय उपाधि 'बाबा' से ही पुकारते थे। मज़दूरों के साथ छोटे मोटे मामले सुलझाने में बाबा मुराद प्रोफ़ेसर साहब के क़ानूनी सलाहकार का कार्य भी निभाते थे।[311]

स्वभावतः ही पूर्णसिंह जी ने 'खुल्हे रंग असमानी' के प्रथम खण्ड में 'अंखियन देखी' कही है। एक ओर इनकी दृष्टि 'बार' की बिलोच-कन्या और जांगली छोहर के नैसर्गिक सौन्दर्य की पवित्रता की ओर गई[312] है तो दूसरी ओर प्रौढ़ा की आनन्दमग्नता से सम्पन्न रूप से भी बच नहीं सकी है।[313] सूर्यास्त के समय नीले आकाश में पश्चिमी दिशा में दैदीप्यमान दिवाकर को कवि ने निराकार वीर पुरुष (गुरु गोविन्द सिंह) की नीलाम्बरी भुजा में पहने हुए आग के कड़े से उपमा दी है,

---

Cont. from page 124)

janglis......They worked very hard on the Palma Rosa Farm and they all loved Puran beyond measure...

—Basant Kumari Singh : *Reminiscences of Puran Singh*, Page 68-69.

310. Ibid, Page 69.

311. (क) Basant Kumari Singh : *Reminiscences of Puran Singh*, P. 66.

(ख) सम्भव है ये बाबा मुराद ग़दर पार्टी के भी कार्यकर्ता रहे हों।

312. क) पंजाब बार दी बिलोच दी धी (बिलोच की बेटी) शीर्षक कविता।

ख) जाँगली छोहर (जाँगली छोरी) शीर्षक कविता।

313. सवाणी जिसनूं रब्ब पिआरदा (प्रौढ़ा, जिसे परमात्मा प्रेम करता है) एवं 'मेरा दिल' शीर्षक कविताएँ।

यथा :—

इक नंगी नीली लम्मी बाँह दिस्सी पच्छमी अकाश विच
ते वरिग्राम किसे पुरख दी तकड़ी कलाई विच
हिल रिहा सी अग्ग दा कड़ा...

(सूरज असत)

कविगण वसन्त ऋतु के वर्णन में फूलों, पत्तियों और शाखाओं पर चढ़े यौवन की बात तो करते आए हैं। किन्तु हमारे कवि महोदय की कल्पना तो उपेक्षित बूटियों रूपी कंकालमात्र योगनियों के कायाकल्प और सदा सुहागिन बनने के रंग भी दिखाती है, यथा :—

बाराँ विच बसन्त-बहारां,
करीर[314] लेहली-लिली ते[315] दूधक नूं[316] असमानी रंग चढ़े
सभ कुझ तक्किआ,[317] पर किस तक्के
इन्हां लम्मिआं विछोड़िआँ विच संजोगी छटे[318]

+ + +

बार दीआं तिहाईयां धूड़ाँ विच,[319]
अरशी सुफ़नियां दे फुल्ल–दरिआ वग खलोते[320]
सुक्कीआं विरानीआं जोगनां दीआं हड्डीआं[321]
तपां नाल सड़ गए सुक्के मास खिड़ आए[322]

314. एक पेड़।
315. Convolvulus pluricas (हरे धागे की तरह धूल में बिखरे फूलों वाली बूटी)।
3 6. Lannea nudcci (compositae).
317. सब कुछ देखा।
318. दीर्घकालीन विछोह के मारे संयोग विहीन।
319. जाँगली बार की प्यासी (वर्षा रहित) धूल में।
320. दिव्य सपनों की नदियाँ उमड़ पड़ी हैं।
321. शुष्क और सुनसान क्षेत्र योगनियों की हड्डियों के समान (लक्षित) होते हैं।
322. तपस्या के कारण झुलसे हुए सूखे माँस में नया आह्लाद आ गया है।

वाल वाल विच मोती लटके
सदा सोहागनाँ हो उठीआं ॥[323]

(बारां विच बसन्त बहाराँ)

प्रोफ़ेसर साहब ने 'पंजाब दे बार विच घुग्गी' की हल्की "कू हू" ध्वनि में त्यागशील साधु के पवित्र प्रेम की पीर की भव्यता का दर्शन किया है। 'काली कूंज जिहड़ी मर गई' में एक शिकारी की गोली से आहत कूंज पक्षी के आत्मा रूपी भ्रमर को तारों से भी परे सौन्दर्य-देश की ओर उड्डयनशील दिखाया गया है। 'गरां दा मिहनती बलद'[324] और 'गरां दा निक्का चूचा'[325] कविताओं में ग्राम के परिश्रमी बैल तथा मुर्गी के छोटे बच्चे के प्रति दयाभाव दिखा कर कवि ने जीव-जन्तुओं के प्रति क्रूरता (Cruelty to animals) के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। चूजे के प्रति मांस ख़ोरों की निर्दयता देखकर कवि की आत्मा चीख उठी। अपनी आत्मा में सर्वात्मा के दर्शन का सिद्धान्त हृदयंगम करने के लिए कवि ने निम्नोक्त शब्द-चित्र द्वारा काव्य-मनीषियों को प्रेरित किया है :

हाय न मारो
ना मारना
इह गरां दा अयाणा चूचा[326]

\+ \+ \+

किहड़ी गल्लों असीं वखरे[327]
हफे नूँ वेखो मेरे वांग उहदा कम्बे दिल[328]

---

323. वसन्त ऋतु आने पर एक-एक कण में मोती पिरोए जाने से मानो ये बूटियाँ चिर सधवा सदृश बन गई हैं।

324. गाँव का परिश्रमी बैल।

325. गांव की मुर्गी का छोटा-सा बच्चा (चूजा)।

326. गांव का अनजान चूजा।

327. (मनुष्य और अन्य जन्तु) हम किस बात के कारण एक-दूसरे से भिन्न हैं।

328. भागता हुआ (चूजा) हाँफ गया है, मनुष्य की भाँति उसका दिल भी काँपता है।

हाए ओ रब्बा,
फड़ लिआ चूचा डाढिआं[329]
ते फड़िआ छुरी हेठ उडीके निक्का चूचा राम नूं[330]
मारन वाले दी अक्ख वल टक्क बन्ह तक्कदा[331]
मते अक्ख नाल अक्ख मेल उह हुण वी पछाण लवै[332]
आपे उपर छुरी चलदी।

(गरां दा निक्का चूचा)

'फ़िलासफ़र,' 'कद तूं आवसें ओ सोहणिया,'[333] 'सोहणीआँ चीजां सारीआँ, पर सोहणा कोई नाँह,'[334] 'तिआग'[335] कविताओं में पूर्णसिंह ने रहस्यानुभूति, ईश्वरीय प्रेम और सौन्दर्य की अस्थिरता का उल्लेख किया है। 'अचनचेत उडारीआँ' एक लघुकाय गद्य-काव्य है। सम्भवतः इन रचनाओं में आध्यात्मिक रंग की अतिशयता देखकर कसेल साहब ने प्रो. पूर्णसिंह पर पलायनवाद का आरोप लगाया है, यथा :

'खुल्हे रंग असमानी' में 'बार दे रंग', 'अचणचेती उडारीआं,' 'झिलमिले छन्द' की बे-परवाहियां...हैं। वाणी में गम्भीरता आ गई है और वे प्रौढ़ता के पक्के फल की साक्षी भरने लगे हैं। एक उच्चतर वैराग्य की झलक दिखाई पड़ती है, जो उपरामता वाला तो है नहीं, किन्तु पलायनवादी अवश्य दिखाई पड़ता है।[336]

हम प्रोफ़ेसर कसेल जी के विचार से सहमत नहीं हैं। दिल्ली (लाहौर) षड्यन्त्र के मामले के अभियोगी मास्टर अमीरचन्द से सम्बद्ध

---

329. कठोर हृदय लोगों ने चूजे को पकड़ लिया है।
330. छुरी के नीचे धरा हुआ छोटा चूजा भगवान् की प्रतीक्षा कर रहा है।
331. टिकटिकी लगाकर झाँकता है।
332. सम्भव है आँख से आँख मिलने पर (घातक) भगवान् (रूप जीव) को भी पहचान ले।
333. ए सुन्दर व्यक्ति! तुम कब आओगे।
334. सभी वस्तुएं सुन्दर हैं, किन्तु कोई भी सुन्दर नहीं है।
335. त्याग।
336. प्रो. क्रिपाल सिंघ कसेल : पूरन सिंघ, पृष्ठ 58-59।

घटना के बाद स्वामी रामतीर्थ के शिष्यों ने यह कहना आरम्भ कर दिया कि पूर्ण सिंह जी जीवन से निराश हो गए थे। सम्भव है कसेल साहब का मत भी प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह लिखित स्वामी रामतीर्थ की जीवनी के संशोधक आर. एस. नारायण स्वामी को ही लक्षित करता हो। हमारी धारणा इसके विपरीत है। 'अचनचेत उडारीआं' तो एक अनुताप काव्य है, जिसमें 'जपुजी साहिब' की 'मन्ने की गति, कही न जाइ ॥ जे को कहै पिछै पछुताइ' ।। (पउड़ी 12) का भाव निहित है। यह एक उत्तम गद्य-काव्य है। शेष कविताएं भी गुरवाणी में निबद्ध रहस्यानुभूति अथवा कवि द्वारा पवित्र गुरुद्वारों की यात्रा के समय हार्दिक आह्लाद की अभिव्यक्ति करती हैं। निम्नलिखित पद्यांश में कवि ने पुष्प के प्रतीकों द्वारा सूफ़ियों जैसी रहस्यात्मक भावनाएं अनुस्यूत की हैं :

उड्ड वे दिला,[337]
छड्ड इस चिन्न्ह मातर मूरतां दे देश नूं[338]
जिथे दी गुलाब दी रूह आपणी लपट[339] कोमल जिही सवासां ते
उड्डदी इक विराग जिहा राग खिण भजवां,[340]
उथे उस 'भगतवसे' दे देश विच[341] किसे जीउंदी जागदी सीता
वरगी महिमां दे बाहां दी उलार है ।[342]

(अनंत दी पूजा—खुल्हे असमानी रंग)

सीता के चिह्न-मूर्ति द्वारा कवि आत्मा की पवित्रता का संदर्शन ही करता है। इसी पुस्तक के भाग 2 की अधिकांश रचनाएं स्वतन्त्र रूप में 1916-1925 ई. के 'खालसा समाचार' में छपी थीं, जिन्हें बाद में कवि के पुत्र ने इस पुस्तक में संकलित कर दिया। इसी संग्रह की एक

---

337. ए दिल ! उड़ चलो।
338. चिह्नमात्र मूर्तियों के देश को।
339. अपनी सुगन्धि।
340. एक वैराग्य भाव, जिसमें क्षणभंगुर रागात्मकता है। (प्रो. पूर्ण सिंह ने शृंगार से जुड़े सौन्दर्य और प्रेम के भावों में तटस्थ भाव को 'रसिक बैराग' कहा है; यही इस तुक में अभिप्रेत है)।
341. वहां उस भक्तों के निवास स्थान (परलोक) में।
342. जीवंत सीता जैसी महिमा रूपी स्वागतार्थ उठी भुजाएं।

अन्य कविता—जो सन् 1930 में प्रकाशित हुई थी—में उसी प्रकार का आशा का स्वर गूंजता है जिस प्रकार 'इक जंगली फुल्ल' (खुल्हे मैदान) में, यथा :

अद्धो रात बूहा खड़काउंदा कोई[343]
बेनिआज़ी लाड़ा[344]
× ×
पंजाब विच इक झोंपड़ा
कक्खां दा छत्त[345]
जिहड़ा दिन रात प्रकाश छाणदा[346]

(जी आइआं नूं कौण आखे)[347]

श्री प्रेमभूषण गोयल की धारणाएं भी हमारे मत की पुष्टि करती हैं कि पूर्णसिंह पलायनवादी नहीं थे ।[348]

चुप प्रीत : ख़ालसा ट्रैक्ट सोसाइटी द्वारा प्रकाशित प्रो. पूर्ण सिंह का एक मौलिक लघु उपन्यास है । इसका नायक एक अफ़ग़ान सौदागर नूरदीन है, जो कि श्री गुरु नानक देव के प्रियजन, बग़दाद निवासी शाह बहलोल के प्रभाव में आकर गुरु साहब के ज्ञान से चमत्कृत होता है । नूरदीन की पत्नी सुलताना के अतिरिक्त घर के दो सेवक शीरनी और शहूरा भी गृहस्वामी की इस ज्ञान-ज्योति से प्रभावित होते हैं । ये सभी पारिवारिक जन मौन नूरदीन को कृपा-दृष्टि का स्पर्श पाते ही समाधिस्थ होकर परम रहस्य का आभास प्राप्त करने लगे । इस सारी

343. अर्द्ध रात्रि में कोई द्वार खटखटाता है ।
344. कठोर हृदय दुल्हा ।
345. फूस की छत ।
346. जिस से रात दिन प्रकाश छनता है ।
347. 'स्वागत कौन करे' शीर्षक कविता ।
348. प्रो. पूरन सिंह तो वैदांतिक फ़लसफ़े से इतना प्रभावित हुए कि संन्यासी ही बन बैठे...वे पलायनवादी (Escapist) नहीं थे प्रत्युत् संन्यास को इन्होंने आत्मबोध का मार्ग दर्शाने वाला बताया ।
—ईशर सिंघ अटारी : प्रो. पूरन सिंघ—जीवन ते रचनावां (प्रेम भूषण गोयल : निराला अते पूरन सिंघ तुलनातमक अधियेन, पृष्ठ 75 ।

उपलब्धि को गुरु नानक देव जी का वरदान मानकर विनम्र नूरदीन उनके प्रत्यक्ष दर्शनों के लिए लालायित हो गया। गुरु साहब को भेंट देने के लिए नूरदीन ने मूल्यवान दोशाला ख़रीदा। वह उसे वहीं से गुरुदेव का उपहार मानकर बग़दाद से सिर पर रखकर लम्बी यात्रा करके करतारपुर पहुंचा। गुरु-चरणों पर इस तुच्छ भेंट के समर्पण के समय नूरदीन दिव्य-आह्लाद में डूबा हुआ था। वाणी अपना अस्तित्व भूल गई थी। इस प्रकार बग़दाद के इस मुसलमान शिष्य ने गुरु नानक देव के समक्ष अपना 'मौन प्रेम' (चुप प्रीत=प्रीति) का प्राकाट्य कर दिया।

इस रचना पर पूर्ण सिंह की विचारधारा पूर्णतया छाई हुई है। सारा वातावरण आध्यात्मिकता में डूबा हुआ है। नूरदीन एवं सुलताना की आत्मीयता का परिचय उपन्यास के पहले काण्ड में ही मिल जाता है। आरम्भिक काण्ड में नाटकीय शैली का सुन्दर उपयोग हुआ है। कुछेक स्थलों पर दार्शनिक तथ्यों की भरमार के कारण कथावस्तु में कई बार गत्यवरोध–सा उत्पन्न हो जाता है। फिर भी बग़दाद नगर की शोभा का सूक्ष्मदर्शन अभिनन्दनीय है। गुरु नानक देव का दर्शन करने से पूर्व ही उनकी ज्ञान-ज्योति से विस्मित नूरदीन जैसे पात्र के व्यक्तित्व के द्वारा गुरु साहब की विपुल ख्याति, स्नेहाकर्षण एवं धार्मिक एकता की सुन्दर प्रतीति करवाई गई है।

पंजाबी में अनुवाद

भगीरथ : इस उपन्यास के 'इक गुणवान बिरध पुरष' (एक गुणवान वृद्ध पुरुष) एवं अणदिसदे प्रभाव (अदृश्य प्रभाव) शीर्षक दो खण्ड हमें उपलब्ध हुए हैं। यह ग्रन्थ पूर्ण सिंह जी ने अंग्रेज़ी में रचा था। न जाने किस प्रकार कुछ लोगों को यह भ्रम हो गया कि यह उपन्यास मूलतः हिन्दी में लिखा गया था। हिन्दी में पूर्व प्रतिष्ठित निबन्धकार पूर्ण सिंह ने पंजाबी में सभी रचनाएं स्वतन्त्र रूप में की हैं। अतः इस उपन्यास का मूलतः हिन्दी में लेखन संदिग्ध-सा प्रतीत होता है। इसके दो भाग छपे हैं। इनमें लाहौर के एक साहुकार सुन्दरदास और उपन्यास के प्रमुख पात्र भगीरथ के वार्तालाप में श्रीमद्भगवद्गीता एवं गुरु नानक देव जी पर एक समान आस्था दिखाई गई है। विदेशों में पढ़ने के लिए गए हुए भारतीय युवकों द्वारा अंग्रेज़ पत्नियाँ लाने का विरोध इस उपन्यास में किया गया है। 'भगीरथ' का परिचय इस प्रकार दिया

गया है :

"भगीरथ इक अधखड पुरुष सी, तकरीबन चाली साल दा अते चिहरे उपर सुकरात वरगी अकल सी। उसदे दोसत ओहनूं लाहौर दा सुकरात करके बुलाउंदे सन। वारतालाप दी रौ विच इक नदी वांगू आपणे खमदार राह उपर वहिन लग पई अते कदी कदी मुसकराउंदा सी ऐऊं परतीत हुँदा सी कि दोनां दी इक गूढ़ी आतमक मितरता है।[349]

हिन्दी, पंजाबी और उर्दू के इस संगम में लेखक के जन्मस्थान की पोठोहारी बोली के स्थान पर पटियाला मण्डल (Patiala Division) के ज़िलों की बोली से अधिक सादृश्य प्रतीत होता है।

बिपदा दी घड़ी : (विपत्ति की घड़ी) : यह जर्मनी नाटककार गेटे के 'फाउस्ट' के अन्तिम अंक का पंजाबी अनुवाद है। इसकी संलाप शैली पद्यात्मक है। लेखक ने इसे मानवीय जीवन का 'दुःख-नाटक' कहा है। उसका मत है कि संसार से तिरस्कृत प्रभु प्रेमी पापीजन भी ईश्वर के यहां दोषमुक्त हो जाते हैं। यह बात शेक्सपियर ने स्वप्न में भी नहीं सोची, किन्तु गेटे ने इसे 'कमाल के साहित्यिक अन्दाज़ में दर्शाया' है।[350]

इस पद्यमय एकांकी की नायिका के व्यक्तित्व में शारीरिक प्रेम के स्थान पर हार्दिक स्नेह और पत्नीत्व से भी बढ़कर मातृत्व की उच्चता दिखाई गई है। नायिका के 'मारग्रेट' (Great Mark) और अन्त में 'हैनरी' शब्द की आवृत्ति से लेखक ने नारी की महानता को नामानुरूप गुण ही बना दिया है।

मोइआँ दी जाग तथा अन्य रचनाएं : पूर्ण सिंह जी ने लियो टॉलसटॉय के उपन्यास 'Resurrection' का अनुवाद 'मोइआँ दी जाग' (मृतकों का जागरण) पंजाबी में छपवाया। उपन्यास के पात्रों का भारतीय नामों से बड़ा साम्य है। इसकी ओर इंगित करके प्रोफ़ेसर साहब ने इस उपन्यास को ध्यानपूर्वक पढ़ने के लिए अध्यापकों-जैसी शिक्षा भी दी है।[351] एक अन्य उपन्यास 'Burning Tulips' का अनुवाद

---

349. Puran Singh Studies, Vol. I, Part I, Jan. 1979.
350. Ibid, Page 25.
351. पाठकों के प्रति मेरी एक याचना है कि किताब को खोज-प्रवृत्ति से पढ़ें। नितांत अख्बारी और मामूली नावलों के पढ़ने के सरसरी स्वाद के लिए (Contd. on page 133)

'बलदे दीवे' (जगते दीपक) शीर्षक से किया था। एमर्सन के निबन्ध 'Essay of the Poet' का पंजाबी अनुवाद 'अबचली जोत' भी भाई वीर सिंह के सम्पर्क में आने के उपरान्त 'ख़ालसा ट्रैक्ट सोसाइटी, अमृतसर' की ओर से प्रकाशित हुआ। कारलायल के 'Hero & Hero Worship' का अनूदित रूप 'कलाधारी ते कलाधारी पूजा' के माध्यम से पंजाबी जगत् में पहुँचा। अमेरिकन कवि वाल्ट ह्विटमैन की काव्य-रचना 'Leaves of the Grass' का अल्पांश 'घाह दीआं पत्तीआं' (घास की पत्तियां) के शीर्षकाधीन उलथाया गया। 'बौने बूटे' (वामनाकार पौधे) भी किसी जापानी रचना का पंजाबी अनुवाद बताए जाते हैं।

इन अनुवादों में प्रोफ़ेसर साहब ने शब्दानुशब्द अनुवाद के स्थान पर अधिकांशत: रूपांतरण शैली को ही अपनाया है। फिर भी दूसरी भाषा के मुहावरे और बोली के भीतरी भाव को अनूदित भाषा के रंग में रंग देना एक सुलझे हुए अनुवादक के हाथ की करामात ही कही जाए गी। अंग्रेज़ी की शब्द-छटा के अनन्यतम ज्ञाता प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने मूल लेखक से भरपूर न्याय किया है। जापानी भाषा तो आपने वहां पर शिक्षाकाल में सीख ही ली थी। टॉलसटाय की रचना का पंजाबी अनुवाद आपने अंग्रेज़ी संस्करण मे किया होगा। अन्य भाषाओं के ग्रन्थों का अपनी मातृभाषा में अनुवाद करते समय अपनी कार्य-विधि की चर्चा इन्होंने इस प्रकार की है :

"यह पुस्तक टोलसटॉय' ने रूसी भाषा में 1899 ई. में लिखी। संसार की उत्तम पुस्तकों में से एक है। जो स्थान शेक्सपियर का 'पद्य नाटकों' के लेखन में अद्वितीय है, वही टोलसटॉय का 'गद्य नावल' लिखने में। यह बड़ी कठिन और गहन पुस्तक है। अंग्रेज़ी में भी जब तक पूरे ध्यान से न पढ़ी जाए, कठिनाई से ही समझ में आती है।

Contd. on page 132)

इस पुस्तक को आरंभ न करना। भले ही हर रोज़ थोड़ा पढ़ें; किन्तु खूब ध्यान से, ख्याल, कटाक्ष, इशारे आदि को समझ कर पढ़ें।...रूसी नाम अधिकतर एशियाई भाषाओं से मिलते हैं। इसलिए हमें इस बड़ी किताब के असली नामों (निखली ऊधब, ऊधव, लिऊ उधव, मिमी आदि) से परिचित होना चाहिए, और उन्हें याद रखना कोई मुश्किल बात नहीं है। —पूरन सिंघ : मोइआँ दी जाग (पंजाबी पाठकाँ प्रती)।

'ज़बानदानी' (भाषा रूप) अनोखे ढंग की है, वाक्यों की चाल भी भिन्न है। शाब्दिक अनुवाद करते समय मैंने कहीं कहीं पर आशय को सरल करने का यत्न किया है।''[352]

पूरन भगत दे जीवन बारे, सतिगुरु जोगी आदि छोटे छोटे पंजाबी निबन्ध अभी तक संकलित नहीं हुए। अन्य ट्रैक्ट रचनाओं की भाँति 'निरगुणिआरा' में इनका 'प्रीत' निबन्ध भी छपा, जो प्रोफ़ेसर साहब के 'पिआर' निबन्ध से विषयगत दृष्टि से एकदम पृथक् है। 'पिआर' मनोभावात्मक निबन्ध है। इसे हम 'अध्यात्म-चिंतन-परक' निबन्ध कहना चाहेंगे। अब तक इसे स्वतन्त्र पुस्तक माना जाता रहा है, ऐसा उचित नहीं है।[353]

अप्राप्य-रचनाएं : लेखक की धर्मपत्नी श्रीमती मायादेवी ने कतिपय ऐसी कृतियों का उल्लेख किया है, जिन्हें इनके पतिदेव ने भावुकतावश फाड़-फूँक दिया था। इनमें से एक उल्लेख्य रचना थी—'लच्छी'। इसकी बीस पृष्ठों की भूमिका के अरिरिक्त 40 पृष्ठों का पद्य भाग था, जो कि प्रसिद्ध 'लच्छी' गीत की टेक पर लिखा गया था। इसके लगभग दस पृष्ठ और लिखे जाने थे। इसका बहुलांश अमृतसर के एक मुद्रणालय में छप भी चुका था। किन्तु कवि ने इसे अपनी अन्य रचनाओं से निकृष्ट समझकर नष्ट कर दिया था। मायादेवी जी की 'कुझ यादाँ' में सुरक्षित इस पुस्तक की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं :

करना खिड़िआ विच पंजाब
महिरम साडा दूर
तूं बुक भर करना पा लच्छीए
तेरी लपट सदा मनजूर।

डॉ. आनन्द कुमारस्वामी ने 'Art & Swadeshi' में पंजाब के 'लच्छी' लोकगीत का अंग्रेज़ी अनुवाद छापा था। इसका अल्पांश कवि ने अपनी कृति 'The Spirit of Oriental Poetry' (पृष्ठ 148–50) में उद्धृत किया है। सम्भवत: इसी से प्रेरित होकर 'पूरन नाथ जोगी',

352. पूरन सिंघ : मोइआँ दी जाग (पंजाबी पाठकाँ प्रती)।
353. पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला के पुस्तकालय में सुरक्षित रचना-सूची से उद्धृत।

'सोहनी-महिवाल' आदि लोक गाथाओं पर विरचित कविताओं की भाँति कवि ने 'लच्छी' लोकगीत को भी अपने अन्दाज़ में प्रस्तुत करने का प्रयास किया हो। पूर्ण सिंह जी को शृंगार रस से वितृष्णा-सी रही है। सम्भवतः स्वः रचित 'लच्छी' में शृंगार-बाहुल्य की गहरी झलक होने के कारण ही इन्होंने उसे अग्नि की भेंट कर दिया हो।

अंग्रेज़ी रचनाएं—

जीवन-वृत्तांत : (i) दि बुक ऑफ़ टेन मास्टर्स (The book of Ten Masters) इसमें दस सिक्ख गुरुओं की प्रभावशाली जीवन घटनाओं का वर्णन हुआ है। इस ग्रन्थ में तिथि-परक जीवनी नहीं है, प्रत्युत् लेखक ने दसों गुरुओं के ज्ञान से प्रभावित भारत की सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक दशा का बड़ी सहज भाषा में चित्रण किया है।

(ii) 'दि स्टोरी ऑफ़ स्वामीराम : दि पोयट मांक ऑफ़ दि पंजाब' (The Story of Swami Rama : The Poet Monk of the Punjab) इस ग्रंथ में प्रोफ़ेसर साहब ने बिना किसी कुण्ठा एवं पूर्वाग्रह के स्वामी रामतीर्थ के चरित्र का विश्लेषण किया है। इसमें स्वामी जी के कुछेक पत्र भी संकलित हैं, जो श्रीमती वॉलेस को आत्मिक शांति प्रदान करने के लिए सन् 1903-05 में लिखे गए थे। इस ग्रन्थ में लेखक ने अपनी राष्ट्रीय भावना विषयक विचारों के परिप्रेक्ष्य में स्वामी रामतीर्थ तथा अन्य समकालीन भारतीय नेताओं—विशेषतः स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक और अरविन्द घोष—के चरित्रों की तुलना भी बहुधा की है। किन्तु पूर्ण सिंह जी के कई एक वक्तव्यों से स्वामी रामतीर्थ के पुराने शिष्य इनसे रुष्ट हो गए थे। हमारे विचार में प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'गृहस्थ जीवन' को ही 'देश-प्रेम' की रीढ़ की हड्डी माना था।[354] इसी विचार का प्रतिपादन इन्होंने

---

354. Patriotism of the affectionate attachment for one's property in the shape of his country cannot be generated by philosophising. It comes naturally, it cannot be forced in by thinking. In certain climes & under the driving force of certain traditions, it is as natural a feeling in the human breast, as the love of a brother for his sister.

(Contd. on page 136)

अपने 'वतन दा पिआर' (पंजाबी निबन्ध) में किया था, और उसी तुला पर जीवनीकार ने अपने समकालीन नेताओं को तोला है। इसमें कोई अत्युक्ति नहीं है कि गृहस्थ जीवन के परित्याग का छल करने वाले राजनीतिज्ञ छद्मवेश में 'मठों' और 'आश्रमों' में अड्डे जमाने लगे थे।[355]

(Contd. from page 135)

The passionate love of woman, the chivalrous spirit of protecting her and the home which consists of the woman and the child, even at the cost of life, the love of death in times of an invader's invasion of the aggregate of these homes—called one's own country—the complete perfect refusal to accept the life of slavery, to meet death and downfall rather than loss of liberty & love, in short infinite worship of woman, land and life as it is, as we find it, and we live it as good, well-behaved gentle animals—such are the elements in human consciousness which go to make up the healthy feeling of patriotism.

—Puran Singh : The Story of Swami Rama : The Poet Monk of the Punjab, P. 217.

355.(क) संभवत: स्वा० विवेकानंद तथा स्वा० शिवानंद के साथ छुटपन का यह संपर्क था जिसने चैटर्जी को क्रांति-पथ के प्रसार के उद्देश्य की प्राप्ति निमित्त इस साधन को अपनाने के लिए प्रेरित किया। राजनीतिक संन्यासी बनने का निर्णय स्वा० शिवानंद के प्रभाव का फल था। हरिद्वार से सीधे ऋषिकुल के संस्थापक के पास पहुंचे। यह भद्र पुरुष वेदांत साहित्य का पंडित था। इसे चैटर्जी ने अपना उद्देश्य बताया तो इसने कहा आपके जीवन का उद्देश्य संन्यास की भावनाओं से मेल नहीं खाता। इसने इन्हें संन्यासी बनाने से इंकार कर दिया। इनके मनोवेग को बड़ी चोट लगी...इन्होंने अनुभव किया कि हमें अपना उद्देश्य नहीं बताना चाहिए था : यह तो बड़ी भूल हुई।...हताश न होकर दोनों ने अनुभव किया कि भगवे कपड़े पहनने ही चाहिएं ताकि कम से कम उन साधुओं से जिनके विषय में हिन्दू जनता की यह धारणा है कि उन्होंने काम-वासना और मृत्यु के भय को जीत

(Contd. on page 137)

सम्भव है पूर्ण सिंह जी को वशिष्ट आश्रम के ऐसे घुसपैठियों का ज्ञान भी रहा हो, किन्तु उनका भण्डाफोड़ करना देश के स्वाधीनता आंदोलन के लिए अहितकर था। इसके अतिरिक्त जब से स्वामी रामतीर्थ ने बाल-बच्चों सहित भेंट के लिए आई पत्नी के प्रति निरादर भाव दिखाया था, तब से प्रोफ़ेसर साहब को इन धर्मगुरु स्वामी रामतीर्थ से वितृष्णा होने लगी थी। इन्होंने तो सिक्ख बनकर भी सच्चे सिक्ख की तलाश जारी रखी और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले गुरुओं के हाथों साधु-सन्तों को भी गृहस्थी ही बनवा दिया।[356] 'ऑन पाथ्स ऑफ लाइफ़' (On

---

(Contd. from page 136)

लिया है, अभाव तथा मृत्यु के भय को दूर किया जाए।
—धर्मवीर : लाला हरदयाल, पृष्ठ 97-98।

(ख) In March 1915, Pingley was arrested in Meerut Cantonment with some bombs was executed. Deciding to leave India for Japan Rashbehari went to Benares and stayed with Swami Vidyanad of Sandhya in Gudhur Math. Rashbehari left for Japan in June 1915 with P.N. Tagore's passport.
—S. P. Sen (Ed.) Dictionary of National Biography, Vol. I. Page 222.

356. This youngman now half dead with the performance of his vows was once in the same convent with Hansa, as a Jain Brahmachari. Near the same convent, there was a young girl, almost a child, whose parents had presented her to the Jain temple as an offering...Both loved each other...This was a great sin according to the rules of the convent and the nunnery. The girl was punished by having her eyes put out. The boy was sent to the hills for a prolonged penance...Gobind Singh blessed her, and initiated her into the Raja Yoga of Nam...he ordered that the nupitals of these two disciples be celebrated then & there.
—Puran Singh : Guru Gobind Singh : Reflections & offerings, Page 89-91.

Paths of Life)[357] लेखक की आत्मकथा है ।इस में प्रो.पूर्णसिंह ने अपनी बाल्यावस्था से लेकर सन् 1904 में अपने विवाह तक की घटनाओं को समेटा है। जापान की कला रुचियों के अतिरिक्त लेखक ने जापान में आने-जाने वाले भारतीय और जापानी साधुओं तथा उनसे आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि की लोलुप महिलाओं पर बड़ी पैनी फब्तियां कसी हैं। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने बचपन के मित्रों,अध्यापकों तथा सम्बन्धियों का उल्लेख भी किया है । निम्न मध्य श्रेणी के बालक के अभावों, कल्पनाओं और किशोरावस्था तथा यौवन की वय:संधि के बढ़िया चित्र इस ग्रन्थ में विस्तार सहित उतारे गए हैं।

सिक्ख-दर्शन साहित्य : इसके अन्तर्गत 'गुरु गोविन्द सिंह—रेफ्लेकसंज एण्ड ऑफ़रिंग्ज' (Guru Gobind Singh—Reflections & Offerings)[358] 'दि स्पिरिट बॉर्न पीपल' (The Spirit Born People),[359] स्पिरिट ऑफ़ दि सिक्ख' (Spirit of the Sikh)[360] वृहद आकार के ग्रन्थों को सम्मिलित किया जा सकता है । पहलो पुस्तक में गुरु साहब की विवरणात्मक जीवनी नहीं है। पहले चार भागों की निबन्ध-कथा मिश्रित रचनाओं में सिक्ख धर्म के पाँच ककारों को सिक्खों के आभूषण रूप दर्शाते हुए, सिक्ख-दर्शन, गुरमति और गुरु ग्रन्थ साहिब का महिमा गान किया गया है। लेखक ने सिक्ख धर्म की मान्यताओं को जीवनोपयोगी एवं तत्कालीन सामाजिक तथा राजनतिक विचारधाराओं का पूर्व-सुरक्षित भण्डार बताया है । शेष दो ग्रंथों में 'स्पिरिट' (आत्मा, शौर्य, सच्ची भावना) और सिक्ख (शिष्य, शिक्षार्थी) की व्याख्या अनेक उपमानों, प्रतीकों और दृष्टांतों के द्वारा की गई है। इनमें लेखक ने पूर्वाग्रहों से हटकर विशाल मानवीय परिप्रेक्ष्य में सिक्ख धर्म के विश्लेषण की नींव रखी है। इन ग्रन्थों में सिक्ख सिद्धान्तों और महापुरुषों के सद्गुणों पर स्वतन्त्र कविताएं भी रची गई हैं। गुरमति-ज्ञान से चमत्कृत पूर्ण सिंह जी गद्य और पद्य की सीमाओं का अतिवाहन करके बड़े सुन्दर ढंग से 'शब्द'

357. जीवन की राह पर।
358. गुरु गोविन्द सिंह : प्रतिबिम्ब एवं समर्पण ।
359. शौर्यजन्मा पुरुष ।
360. सिक्ख की आत्मा ।

विशेष की तह में पहुँचकर उपनिषदों के गम्भीर गह्वर में छिपे मोती ढूंढ लाते हैं। इनका चतुर्दिक कटाक्ष एक-साथ कई धर्मों को लपेट लेता है; यहां तक कि सिक्ख धर्म भी इनकी गहरी चुटकियों से बच नहीं पाता।

काव्य ग्रन्थ: 'दि सिस्टर्ज ऑफ़ दि स्पिनिंग व्हील' (The Sisters of the Spinning Wheel)[361] का केवल शीर्षक ही समकालीन खादी के प्रचार के अनुकूल नहीं, प्रत्युत् इसमें अनुस्यूत भावनाएं भी पंजाब के 'त्रिञ्जण' (चर्खा कातती महिलाओं के लोकगीत) के अनुरूप हैं। पंजाबी कन्याओं एवं प्रौढ़ाओं का अनुशासित आह्लाद-विषाद इन कविताओं में गूंजता है। कवि ने स्वयं इस काव्य-संग्रह में संकलित कविताओं को 'सिक्ख कविता' कहा है। इसमें राजहंस, कोयल, चातृक एवं पारस के प्रतीकों द्वारा जीवन के आदर्शों का उदात्तीकरण हुआ है। लम्बी कविताओं में कवि के जन्म स्थान पोठोहार क्षेत्र के आचार-विचार की बड़ी सुन्दर झलक मिलती है। गुरमति-प्रकाश में नव्य-आध्यात्मिक चेतना सर्वत्र द्युतिमान है। अंग्रेजी लेखकों ने इस ग्रन्थ को भरपूर सराहना की थी।[362]

'दि अनस्ट्रंग बीड्ज' (The Unstrung Beads)[363] में कवि ने ग्यारह खण्डों में पंजाबी जीवन से सम्बद्ध गद्य और पद्यात्मक रचनाओं का आकलन किया है। खेलते बच्चे, जादूगर, राखी बन्धनम् (रक्षा बन्धन) में पंजाब के सन्दर्भ में मानव जीवन की सच्ची हंसी-ख़ुशी सम्मिलित है। पांचवें खण्ड 'पुष्प-चयन' (Gathering of Flowers) में फूलों की बोली में जीवन-सूक्तियों का प्रस्तुतीकरण अरविन्द घोष की रचनाओं का स्मरण करवा देता है।

---

361. 'चर्खा कातती बहनें'।

362. His music too freely naturalises itself in the English medium and makes good its accent and one soon becomes aware of its loving charm. Later, the spirit of his poetry is seen to involve a rare sense of delight in deovtion, and the closer thought one brings to bear upon the profounder its effect.

—Puran Singh : *Sisters of the Spinning Wheel*, (Introduction by Ernest Rhys)

363. अनबिन्धे मनके।

'सैवन बास्कट्स ग्राफ़ प्रोज़ पोइम्ज' (Seven Baskets of Prose Poems)[364] में ग्राठ खण्ड हैं। पहले में मंगलाचरण है (Mangladarshanum the Beloved) है। यह रूढ़िगत देवी-देवताग्रों का स्मरण न होकर प्रियजनों की चाह से भरपूर है। शेष सात गद्य कविताग्रों में बिहार की वर्षा, बसन्त, मज़दूर, कुली-जीवन, पोठोहार के गीतों का ग्रंग्रेज़ी ग्रनुवाद ग्रौर बिल्वा मंगल, तुलसी, कबीर, मीराबाई, हाफ़िज़, उम्र खय्याम, भाई नन्दलाल, भाई मनी सिंह, भाई तारू सिंह ग्रादि विभिन्न कवियों ग्रौर भक्तों के जीवन एवं कृतियों का निरूपण करवाया गया है। विश्वविख्यात कवियों के काव्यांश के ग्रंग्रेज़ीकरण में उनकी जन्मभूमि की सांस्कृतिक एवं ग्राध्यात्मिक चेतना का हनन नहीं होने पाया। बिहार के लोक जीवन का प्रकृति की सुषुमा से साम्य-स्थापना करते समय कवि पूर्ण सिंह का वही रंग दृष्टिगत होता है, जो कि 'खुल्हे मैदान' नामक पंजाबी संग्रह में झलकता है। पुस्तक के शीर्षक की ग्रोर संकेत करने वाली निम्नोक्त पंक्तियां एक बड़ा सुन्दर शब्द-चित्र प्रस्तुत करती हैं :—

The dark shelled trees of Bihar,
The mango, the Farman, The Fack, follow princess spring, with her baskets of gifts on their hand and so they pass showing flowers.

Every, every bush of our is wreathed;
Oh ! the footsteps of spring sing,
Our footpath ring melodious,
Our meadows and field are ravished with soul.
There are blossoms of hycianths in the ears of our girls.
And the roses perfume in the trees of our youth.
O the roses perfume.

(The Song of the Labourer of Bihar)

'एट हिज़ फ़ीट' (At His Feet)[365] शीर्षक कविता गुरु गोविन्द सिंह की दर्शनाभिलाषा को ग्रभिव्यक्त करती है।'एन ग्राफ्टरनून विद दि सेल्फ़'

---

364. गद्य काव्य की सात झबियाएं।

365. उनके चरणों पर।

(An Afternoon with the Self) का निर्माण ग्वालियर के विक्टोरिया कॉलेज में (12 नवम्बर, 1922) व्याख्यान हेतु किया गया था। इसे सुनकर सभी श्रोतागण आत्म विभोर हो गए थे। इसकी प्रत्येक तुक आत्मकेन्द्रित होने पर भी जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्ति करती है। अन्त में भर्तृहरि की सच्ची समाधि—देहाध्यास, का सुन्दर शाब्दिक चित्र दर्शाया गया है। यदि इन दोनों कविताओं की भाव लहरियों का गहराई से चिंतन किया जाए तो भर्तृहरि और गुरु गोविन्द सिंह के जीवन में समाहित शृंगार, वैराग्य और नीति की त्रिगुणात्मक शक्ति को ही कवि ने जीवन-संबल बनाने की ओर लक्षित किया है। गुरु साहिबान के अतिरिक्त प्रोफ़ेसर साहब पर भर्तृहरि के व्यक्तित्व ने भी अलौकिक प्रभाव छोड़ा है। हिन्दी और पंजाबी निबन्धों में ही नहीं, 'खुल्हे घुण्ड' की कविताओं में भी इन्होंने समाधिस्थ भर्तृहरि के चरित्र को भली भाँति उभारा है। कवि ने वैराग्य की सच्ची अभिव्यंजना के लिए पंजाब के रमते जोगियों के द्वारा गाए गए गीत पर आधारित भाई वीरसिंह के एकांकी 'भर्तृहरि' का अंग्रेज़ी अनुवाद भी 'The Spirit of the Oriental Poetry' के उत्तरार्द्ध में सम्मिलित किया है।

प्रोफ़ेसर साहब ने अपनी अप्रकाशित अंग्रेज़ी कविताओं को 'दि टैंपल ट्यूलिप्स' (The Temple Tulips)[366] शीर्षक से संकलित किया था। आपने इन्हें टाइप करके यथोचित संशोधन भी किए थे। प्रोफ़ेसर साहब के सुपुत्र श्री मदन मोहन सिंह के अनुसार इन रचनाओं का क्रम इस प्रकार है:

भाग 1. दि वीणा प्लेअरज (The Vina Players)[367], देहरादून, 1929।

भाग 2. दि वांड्रिंग मिंस्ट्रल (The Wandering Minstrel)[368], ग्वालियर, 1922।

भाग 3. दि बर्निंग कैंडल्ज (The Burning Candles)[369], चक 73/29।

---

366. मंदिर के पुष्प।
367. वीणावादक।
368. रमते जोगी
369. जलती हुई मोमबत्तियाँ।

भाग 4. दि हिमालियन पाइंज एण्ड अदर पोइम्ज) The Himalayan Pines & Other Poems)[370], शिम्ला, अगस्त 1923 ।

भाग 5. दि रोज़िज ऑफ काश्मीर (The Roses of Kashmir)[371] श्रीनगर, नवम्बर 1926

इन कविताओं में कवि द्वारा विभिन्न स्थलों में भ्रमण के समय प्रकृति के खुली आँखों दर्शन और सूक्ष्म-निरीक्षण के उदाहरण मिलते हैं। प्रकृति के मानवीकरण, रहस्यानुभूति और मानवीय तथा भौतिक प्रकृति की तादात्म्यता के सुन्दर नमूने इन कविताओं में मिलते हैं। तलहटी में बसे देहरादून और तत्कालीन पंजाब के ग्रीष्मकाल की राजधानी शिमला और अधुनातन जम्मू-काश्मीर राज्य की राजधानी श्रीनगर के लोकजीवन की सादगी में आभासित प्राकृतिक सुषुमायुक्त वैराट्य अतीव मनमोहक है। 'दि बर्निंग कैंडल्ज' की कतिपय रचनाओं का भावानुवाद 'खुल्हे असमानी रंग' की पंजाबी कविताओं मे दृष्टिभूत होता है। 'ब्राइड ऑफ दि स्काई' (Bride of the Sky), 'स्पिरिट ऑफ़ दि सिक्ख' (Spirit of the Sikh) में भी बहुत-सी फुटकर कविताएं हैं।

अनूदित काव्य-रचनाएं : दि जपु जी (The Jap Ji), सिक्ख समाज में पूजा-संध्या के लिए प्रतिष्ठित, श्री गुरु नानक देव विरचित पवित्र ग्रन्थ 'जपु जी' का यह सुन्दर पद्यानुवाद है। प्रोफ़ेसर साहब ने 38 'पउड़ियों' और अन्तिम श्लोक का अंग्रेज़ी अनुवाद करते समय माया (Maya), ध्यान (Dhyan), नाम (Nam) आदि दार्शनिक पारिभाषिक शब्दावली को अधिकांशत: मूल रूप में ही रखा है। किन्तु इनके मूल आशय को अंग्रेज़ी पाठकों को हृदयंगम करवाने के लिए पाद-टिप्पणियों में व्याख्या भी कर दी गई है। एतदर्थ एक उदाहरण प्रस्तुत है :

Of what avail are thy ear-rings, O yogi[1] ?

× × ×

---

370. हिमालय के चीड़ के वृक्ष एवं अन्य कविताएं ।

371. काश्मीर के गुलाब ।

372. डॉ. महिन्दर सिंघ रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता (प्राकथन) पृष्ठ 9 ।

This Bhibut[2] doth not help thee to forget

× × ×

Wear, O yogi, the Khintha[3] of new youth that fades not.

1. This is evidently addressed to a yogi of the Ai Sect. They bore their ears and put in thick ear rings of Jade or wood. They have a wallet like a bag of cloth swung round their shoulder in which they keep the alms. They besmear their bodies with ashes. They wear a long gown made of shreds of cloths. They also have a staff.

2. Ashes besmeared on the body. 3. The gown of shreds.[373]

'नरगस' (Nargas)—इसमें भाई वीर सिंह की 26 कविताओं का अनुवाद है। ये कविताएं भाई साहब की पुस्तक 'लहिरां दे हार' में निबद्ध पंजाबी रचनाओं का स्वतन्त्र अनुवाद हैं । पुस्तक का शीर्षक अनूदित कविताओं में से तीसरी के नाम पर आधारित है । पंजाबी मुहावरे, अलंकार-योजना और छन्दोबद्धता का पुट पूर्ण सिंह के अनुवाद में नहीं आ पाया है। तुलनार्थ एक उद्धरण प्रस्तुत है :

मैं सां तक्कदी तक्कदी तक्क रहीआं
नाहीं तक्कदी कदी सी थक्क रहीआं,
टक्क बन्न्ह के तक्क लगांवदी सां
अक्खां ओधरे बन्नह बहांवदी साँ
जिधर गए नां मुड़े सन पिआर वाले
सुत्तीआं कलां जगाण दी सार वाले।

[नरगस (उतांघनैणी) लहिरां दे हार]

उपर्युक्त पद्यांश का अंग्रेजी अनुवाद :

He came this way; that way he went;
I saw him I lost him.
He was but now before my eyes;

373. Puran Singh : The Jap Ji, Page 32.

He has just gone that way.
He has just gone, and cannot yet return.

(Nargas)

शेष अंग्रेज़ी रचनाएं : 'दि ब्राइड ऑफ़ दि स्काई' (The Bride of the Sky)—यह एक दु:खान्त पद्यनाटक है। इसके सभी पात्र नाम-रहित हैं। केवल नायिका का नाम 'अलानिका' नवें खण्ड (Hears Voice of the Sky) में आता है। इसमें एक संन्यासी पात्र का 'अलानिका' (साधु द्वारा प्रदत्त नाम) से प्रेम का चित्रण किया गया है। विषय-भोगों से दूर रहने का ढोंग रचने वाले, किन्तु काल्पनिक अप्सराओं का दर्शन करने वाले सन्तों-महन्तों पर यह एक करारा व्यंग्य है। वस्तुत: ये 29 अतुकान्त कविताएं हैं, जिनमें पूर्वापर सम्बन्ध विद्यमान है। इस नाटक पर पारसी रंगमंच का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। लेखक ने इसकी पात्र-सूची भी दी है और इसकी रूपरेखा में 29 खण्डों को छ: दृश्यों में विभाजित किया है। प्रो. सन्त सिंह सेखों ने इसे आदर्शात्मक रोमांचक कृति कहा है।[374] किन्तु हमारे विचार में यह शृंगारपरक व्यंग्यात्मक रचना ही है। विरह-विदग्ध नायक हमारी श्रद्धा का पात्र नहीं बनता, उन्मादग्रस्त यह जीव तो भारतीय आदर्शों का गला घोंटता दिखाई पड़ता है। इसीलिए कवि ने नाटक के अन्त में कर्मशीला दूध वाली की महानता और द्विचित्ती में पड़े साधु (The Holy Man) की मृत्यु (अर्थात् 'साधु-जीवन की निस्सारता') दिखाई है, यथा :

I have received the command, mother
× × ×
Sorrow not for me, I am old now
Never fit for anything I have been
And now unfit even for what I might have been
And my whole life is lived well in the sweet
air of your religion of service.

(Farewell, The Bride of the Sky)

---

374. The Bride of the Sky, a poetic play written in 1924,...is a remarkable piece of literature of its kind, that is idealistic -romantic.
—Puran Singh : The Bride of the Sky (Introduction) P. vi.

नाटककार ने साधुओं के ढोल का पोल खोलने एवं गृहस्थ जीवन की सार्थकता प्रकट करते समय श्री गुरु नानक देव और ईसा मसीह के जीवन की कतिपय झांकियों को इस नाटक की काव्यमयी पंक्तियों में पिरो दिया है।

प्रकाशिना (Prakashina) और भगीरथ (Bhagirath) प्रोफ़ेसर साहब के दो उपन्यास हैं। एक दर्जन के लगभग इनकी कहानियां भी हैं, जिनमें लेखक ने पंजाब के कृषकों, साहुकारों की भावधाराओं, स्त्री के मातृत्व, शिक्षित नवयुवकों की बेकारी, विदेशी वधुओं की उपयुक्तता तथा अनुपयुक्तता के सम्बन्ध में विचार प्रकट किए हैं। 'दि लाइफ़ एण्ड टीचिंग ऑफ़ गुरु तेग़ बहादुर (The Life & Teachings of Guru Tegh Bahadur),[375] 'दि सन ऑफ गॉड दि मैन' (The Son of God the man)[376] में महापुरुषों के चरित्र का कथात्मक वर्णन मिलता है। प्रोफ़ेसर साहब ने अपनी कहानियों में अपने मामा जयसिंह और सत्संगी मित्र भाई वीर सिंह को भी क्रमश: Malik Jay Singh Dehra Khalsa : A Sikh farmer तथा Bhai Bir Singh में नायकत्व प्रदान करके सजीव बना दिया है। इन कहानियों में सिक्ख शौर्य, निडरता, अथक कार्यशीलता एवं अडिग ईश्वरनिष्ठा के दर्शन होते हैं।

'दि स्पिरिट ऑफ दि ओरिएंटल पोइट्री' (The Spirit of the Oriental Poetry)[377] को प्रोफ़ेसर साहब के भक्ति और शृंगार रस के विवेचन का आकर ग्रन्थ कहा जाना चाहिए। इसके पहले चार अध्यायों में भारतीय और अभारतीय भक्तजनों, दार्शनिकों एवं लेखकों की विशेषताएं चित्रित की गई हैं। लेखक ने इसमें अधिकतर ऐसे व्यक्तियों पर अंग्रेज़ी में परिचायात्मक टिप्पणियां लिखी हैं, जिनका उल्लेख वे अपने हिंदी तथा पंजाबी ग्रन्थों में कर चुके थे। इस प्रकार पहले चार अध्यायों को इनका 'भक्त-जीवनी कोष' कहना उचित होगा। पुस्तक के उत्तरार्द्ध में शृंगार के स्वरूप की अभिव्यक्ति जयदेव के 'गीतगोविन्द,' भाई वीर सिंह के भर्तृहरि एकांकी, तथा कुछेक पंजाबी लोकगीतों के अंग्रेज़ी अनुवादों द्वारा की गई है। यहाँ तक कि

375. गुरु तेग़ बहादुर का जीवन एवं उपदेश।

376. ईश्वर-पुत्र मनुष्य।

377. पौर्वात्य कविता की आत्मा।

लेखक ने डॉ. आनन्द कुमारस्वामी के 'लच्छी गीत' का अंग्रेज़ी अनुवाद भी इसी प्रसंग में उद्धृत कर दिया है। इन रचनाओं के माध्यम से कवि ने पाठकों को श्रृंगार और वैराग्य की वस्तुस्थिति से अवगत करवाने की चेष्टा की है।

हिन्दी विश्वकोश (नागरी प्रचारिणी सभा, खण्ड 7) में प्रो. पूर्ण सिंह विरचित एक उर्दू रचना का भी पता चला है। इस का नाम है—'स्वामी रामतीर्थ महाराज की असली ज़िन्दगी पर तैराना नज़र।'

निष्कर्ष: प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह जी ने अपने हिन्दी निबन्धों में मानव-जीवन की जो रूपरेखा बना ली थी, उसे इन्होंने बड़ी ईमानदारी से निभाया है। चाहे हिन्दी निबन्ध हों, चाहे अंग्रेज़ी या पंजाबी कृतियां, इन सभी में गृहस्थ-महिमा और श्रम-गौरव का स्वर सर्वत्र निनादित होता है। भारतीय जीवन की मान्यता 'सत्यं, शिव, सुन्दरं' कभी भी इनकी आंखों से ओझल नहीं हुई। प्रत्युत् इन्होंने तो किसी न किसी रूप में पंजाबी एवं अंग्रजी रचनाओं में 'मंगलाचरण' एवं 'भरत वाक्य' की अवतारणा भी कर दी है।'सिक्ख-दर्शन साहित्य' से सम्बद्ध अंग्रेज़ी ग्रन्थों में शौर्यभाव के साथ-साथ जीवन के प्रति भरपूर आशामय दृष्टिकोण प्रदर्शित किया गया है। पंजाबी काव्य ग्रन्थों में जो दो-चार वियोगात्मक वर्णन मिलते हैं, उनमें इनकी गहन रहस्यानुभूति का दर्शन ही होता है। वस्तुत: प्रोफ़ेसर साहब ने निराशा और श्रृंगार को अंग्रेज़ी के मत्थे ही मढ़ा है: इसी कारण इनकी 'आकाश वधू' (The Bride of the Sky) और ''पौर्वात्य-कविता की आत्मा'' (The Spirit of Oriental Poetry) के उत्तरार्द्ध का पेट श्रृंगार-परक रचनाओं से भरा गया है।

अंग्रेज़ी और पंजाबी की गद्य-रचनाओं में लेखक की शैली 'बाइबल' के अधिक समीप पहुंच जाती है। हिन्दी निबन्धों में जो प्रवाह है वह प्राय: पंजाबी निबन्धों में अवरुद्ध-सा हो जाता है। अंग्रेज़ी की गद्य-पद्य रचनाओं और पंजाबी काव्य-ग्रन्थों में पुन: हिन्दी वाली सरणि स्वच्छन्द-विचरण करने लगती है।

हृदय-मंथन

प्रवेश : मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यदि वह एकांतवासी बना रहे तो मानव-जीवन में उत्कृष्टता आ ही नहीं सकती। अपने चौगिर्दे की ओर झांकना; समाज, राजनीति और धर्म में फलीभूत आकांक्षाओं तथा आस्थाओं की टोह लगाना एक मेधाशील व्यक्ति का नैसर्गिक गुण है। सुदूर अतीत के आदिम मानव की जाति, गोत्र और समूहगत भावना ही काल के अन्तराल के साथ सहज स्वाभाविक अन्तःप्रवृत्तियों का रूप धारण कर लेती है। यही आत्मकेन्द्रित और सीमित भावनाएं अपने परिप्रेक्ष्य के भीतर रहने के बावजूद भी आत्म-रक्षा, प्रजनन तथा सृष्टि-विकास में सामंजस्य के अपेक्षित तत्व को स्वीकार करके सामाजिकता के जामे में अवतरित होती हैं। ट्रॉटर ने इसी तथ्य को लक्षित करते हुए समाज का उद्भव मनुष्य के बौद्धिक संकल्पों के स्थान पर उसकी नैसर्गिक अन्तःप्रवृत्तियों में टटोला है। ग्रैहम बैलेस, मैक्डूगल और रॉस ने इसी विचार-तन्तु को अग्रसर किया है। मार्क्स एवं एंगेल्स ने मानव की 'स्वातंत्र्य की भूख' तथा 'सार्वभौमिकता की प्राप्ति की चेष्टा' के माध्यम से दो आपाततः विरोधी प्रवृत्तियों की ओर अंगुलि-निर्देश किया है। बर्टेण्ड रसल ने स्वातंत्र्य एवं सार्वभौमिकता के प्रस्तुत युग्म को स्वाधीनता एवं सम्बद्धता की संज्ञाएं प्रदान की हैं।[1] अतएव हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि व्यक्ति-स्वातंत्र्य की रक्षा का मूल ही सामाजिक-दायित्व बोध है। इस प्रकार ऊपर से परस्पर विरोधी प्रतीत होने वाली ये दोनों भावनाएं, वस्तुतः एक दूसरे की पूरक हैं।[2]

---

1. डा: धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग पहला, पृष्ठ 913-14 ('सामाजिक दायित्व' शीर्षक प्रविष्टि)
2. वही, पृष्ठ 890 ('समूहवाद' शीर्षक प्रविष्टि)

सामयिक परिस्थितियां : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह का रचनाकाल सन् 1902-1931 तक माना जाता है। जापान के निवासकाल में 'थण्डरिंग डॉन' नामक अंग्रेज़ी पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन ही इनकी अतिशय प्रबुद्धता का परिचायक है। अतः इनकी समकालीन परिस्थितियों का आलोड़न-विलोड़न अत्यावश्यक हो जाता है। हिन्दी साहित्य के विकास क्रम में सन् 1900–1918 ई. तक की कालावधि को विद्वानों ने 'द्विवेदी काल' अथवा 'जागरण काल' की संज्ञा प्रदान की है[3]। किन्तु हमारे विचार में पूर्ण सिंह युग (सन् 1900-1931) को 'सांस्कृतिक संरक्षण का युग' कहना अधिक उचित होगा। इन वर्षों में अंग्रेज़ी शासन के प्रति जनता का असन्तोष बढ़ता गया और हमारी राष्ट्रीय चेतना क्रमशः विकसित होकर एक निश्चित लक्ष्य—पूर्ण स्वातंत्र्य की प्राप्ति—की सिद्धि के संकल्प में परिणत हुई।[4] इस मत से सहमत होने पर भी हम इतना अवश्य जोड़ना चाहते हैं कि श्री जयशंकर प्रसाद, श्री मैथिली शरण गुप्त, श्री माखनलाल चतुर्वेदी, श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एवं श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ने राष्ट्रीयता के साथ-साथ हमारे सांस्कृतिक वैभव की रक्षा के लिए भी समाज को अनुप्राणित किया। इस दिशा में प्रो. पूर्ण सिंह का योगदान भी अविस्मरणीय है।

अगस्त, 1905 में काँग्रेस के उग्रदल ने बंगाल-विभाजन के विरुद्ध प्रत्यक्ष कार्यवाही का सूत्रपात किया। उग्रदल के इन नेताओं में महाराष्ट्र के बाल गंगाधर तिलक, पंजाब के लाला लाजपतराय तथा बंगाल के विपिनचन्द्र पाल की क्रांतिकारी भावनाओं को 'लाल, बाल और पाल' की लहर का नाम ही दे दिया गया था। विदेशी के विरुद्ध स्वदेशी का सन्देश जन-मन में गुंजित हुआ। आरम्भ में बंगाल तक परिमित यह आंदोलन कालांतर में भारतव्यापी बन गया। यह त्रिसूत्री कार्यक्रम देश-विकास के इन प्रयोजनों को लक्षित करता था :

(i) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार,
(ii) स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग व देशी उद्योग-धन्धों का पुनरुत्थान;

---

3. डॉ. नगेन्द्र (संपा.) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 515।
4. तत्रैव, पृष्ठ 545।

(iii) राष्ट्रीय शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार।

यद्यपि इस कार्यवाही में अंग्रेज़ी व्यापारियों पर आर्थिक दबाव डालना ही एकमात्र प्रयोजन था, फिर भी यह आर्थिक आंदोलन राजनीतिक आंदोलन में परिणत हो गया। फलतः भारतीय प्रशासन प्रणाली, वेशभूषा और आचार-विचार में अंग्रेजियत की छाप निंदनीय बन गई। स्वदेशी के प्रचार में राष्ट्रीय-शिक्षा को भी एक अनिवार्य अंग मान लिया गया। एतदर्थ कॉंग्रेस ने सारे देश में राष्ट्रीय-शिक्षा के निमित्त स्कूल-कॉलेज खोल कर भारतीय युवकों के लिए तकनीकी, वैज्ञानिक, साहित्यिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा की व्यवस्था की। इस दिशा में मुख्य प्रयास कलकत्ता में हुआ। वहां पर एतदर्थ नैशनल कॉलेज खोला गया। सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी (तदनन्तर अध्यात्मवादी) श्री अरविन्द घोष ने सन् 1905 में बड़ौदा के सरकारी कॉलेज के प्रिंसिपल पद के 700/- रुपए प्रतिमास वेतन को ठुकराकर इस नए कॉलेज में 75 रुपए प्रतिमास पर संस्थापक प्रिंसिपल का कार्यभार सम्भाला।[5]

सन् 1906 में कॉंग्रेस ने भारतीय जनता के हितों को दृष्टि में रखकर शासन का ख़र्च घटाने, विशेषतः सेना पर व्यय की जाने वाली राशि में न्यूनता लाने तथा करों में कमी करने का सुझाव दिया। ग्रामीण विकास के लिए सिंचाई के समुचित प्रबन्ध, कृषि बैंकों की स्थापना, प्राचीन उद्योगों को पुनर्जीवित करने तथा गल्ले के निर्यात को रोकने पर बल दिया गया।

सन् 1907 में देश के सीमावर्ती क्षेत्र पंजाब के जांगली बार में नई आबादियों के किसानों पर अत्याचार हुए। फलतः अंग्रेज़ी शासन की नीतियों के विरोधी लाला लाजपतराय और सरदार अजीत सिंह को भारत से निष्कासित कर दिया गया।[6] सन् 1908 में बाल गंगाधर तिलक को गिरफ्तार करके 'अलीपुर षड्यन्त्र' के सम्बन्ध में मुकदमा

---

5. Dr. Vidya Dhar Mahajan : *Leaders of the Nationalist Movement*, Page 156-157.

6. Dr. Fauja Singh : *Eminent Freedom Fighters of Punjab*, Page 163

भी चलाया गया। भारतीयों को केन्द्रीय शासन में अधिकार देने की राजनैतिक चाल के फलस्वरूप मार्ले-मिण्टो सुधार योजना को 1909 में बिल का रूप दे दिया गया। साम्प्रदायिक आधार पर निर्वाचन क्षेत्र का निर्माण हुआ। कौंसिलों में सरकारी सदस्यों की बहुसंख्या के फलस्वरूप सरकारी पक्ष की विजय की संभावनाओं के कारण जनता को अपने प्रतिनिधियों की निरर्थकता का आभास होने लगा।

सन् 1917 में महात्मा गांधी अफ्रीका से लौट आए। कई एक सत्याग्रह आंदोलन चले। सन् 1919 में सत्याग्रह आंदोलन सम्बन्धी जुलूस में पुलिस की गोलियों के कारण स्वामी श्रद्धानन्द शहीद हो गए। उसी वर्ष के दमनचक्र में श्री सैफुद्दीन किचलू और डॉ. सत्यपाल को पकड़कर किसी अपरिचित स्थान पर भेज दिया गया। 13 अप्रैल,1919 को अमृतसर में घटित 'जलियांवाला काण्ड' की शोकपूर्ण दुर्घटना के कारण देश में क्षोभ तथा आक्रोश की लहर दौड़ गई।

दूसरे योरोपीय महासमर के दिनों में इंग्लैंड में भारत सचिव मांटेग्यू भारत आए। कौंसिलों में प्रतिनिधित्व के सुधार हेतु सन् 1919 में गवर्मेण्ट ऑफ इंडिया ऐक्ट (जिसे माण्टेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड अथवा मण्टफ़ोर्ड सुधार) पारित हो गया। इन सुधारों की सफलता की जांच के लिए सन् 1928 में सात सदस्यों का एक कमीशन स्थापित किया गया। आयोग के अध्यक्ष सर जॉन साइमन के नाम पर यह 'साइमन कमीशन' की संज्ञा से प्रसिद्ध हुआ। काँग्रेस तथा अन्य संस्थाओं ने इस आयोग का बहिष्कार किया और देश भर में हड़तालें हुईं। इस आयोग से रुष्ट होकर काँग्रेस ने 1929 के लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वराज्य' का प्रस्ताव पास किया।[7] 26 जनवरी, 1930 को 'पूर्ण स्वराज्य-दिवस' पर होने वाली सभाओं में अंग्रेज़ी सरकार को भारत के पतन का कारण बताया गया और उसके हथकण्डों को विफल करने के लिए शांतिमय आंदोलन करने का अनुरोध किया गया।[8] मार्च 1930 में गाँधी जी के नेतृत्व में चलाए गए लवण-कानून-भंग आंदोलन के कारण उनके साथ ही देश के अन्य मुख्य नेताओं को जेल में डाल दिया गया।

---

7. डॉ. पट्टाभि सीतारमैया : काँग्रेस का इतिहास, पृष्ठ 182।
8. गंगाशंकर मिश्र : भारत में ब्रिटिश साम्राज्य, पृष्ठ 510।

इन राजनैतिक आंदोलनों के साथ ही अंग्रेज़ों की नीति थी कि भारतीयों को अंग्रेज़ों से हीनतर दिखाकर इनके मनोबल को गिराया जाए। फ़रवरी, 1904 में कलकत्ता विश्वविद्यालय के अपने दीक्षांत भाषण में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड कर्ज़न ने पूर्व के लोगों की धूर्तता और पश्चिमवासियों की सचाई की गाथा इस प्रकार गाई थी—'पूर्व की अपेक्षा पश्चिम में सत्य का अधिक सम्मान है, पूर्वी कूटनीति की कुटिलता संसार में प्रसिद्ध है।'[9] सन् 1905 के बंग-विच्छेद के पीछे भी यही उद्देश्य था कि बंगालियों को भाषा, सभ्यता और संस्कृति की अभिन्नता को आंखों से ओझल कर हिन्दू-मुसलिम संयुक्त शक्ति को गहरी चोट पहुंचाई जाए।[10] इसी कारण 1905 ई. के काँग्रेस अधिवेशन में भारत के सांस्कृतिक उद्धार को अपने कार्यों का विशेष अंग बनाने का प्रस्ताव पारित हुआ।

इधर काँग्रेस में पनपने वाले उग्रदल ने तोड़-फोड़ और मारकाट की नीति को प्राधान्य दिया। अंग्रेज़ अधिकारियों पर ही नहीं, प्रत्युत् उनके भारतीय समर्थकों पर भी घातक प्रहार हुए। स्वदेशी के प्रचार के लिए बहुत-सा धन व्यय करने वाले रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी भारतीयों की राजनैतिक मदांधता के कारण इस आंदोलन के प्रति उदासीन हो गए।[11] 'न्यू इंडिया' और 'वन्दे मातरम' में देश की समस्याओं का समाधान वैधानिक ढग से करके धार्मिक राष्ट्रीयता की स्थापना के

---

9. Calcutta Convocation Address, February, 1904
10. गुरुमुख निहाल सिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृष्ठ 156।
11. Political assassinations & dacoities soon followed the Swadeshi movement, the perperators generally being students or at any rate, very young men. Rabindra Nath dissociated himself from these aspects of the excitement and in the home & the world made clear his condemnation of intolerance that was rampant on the patriot side.
—Eward Thompson : *Rabindra Nath Tagore, Poet & Dramatist* P. 293.

इच्छुक श्री अरविन्द घोष[12] एवं श्री विपिनचन्द्र पाल[13] ने अपने राजनैतिक अस्तित्व को ही तिलांजलि दे दी। सन् 1907 की सूरत कांग्रेस में नरमदल और उग्रदल के बीच झगड़ा हो गया। देश के कर्णधारों के मध्य बढ़ते हुए मतभेद को देखकर जनता बहुत खिन्न हुई।[14]

भारत में ब्रह्म समाज, आर्य समाज और थियोसॉफिकल सोसाइटी का जन्म 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हो चुका था। सन् 1873 में उत्पन्न 'सिंघ सभा लहर' सिक्खों में पुनर्जागृति का साधन बन गई। 19वीं शताब्दी में पंजाब के क़ादियाँ नामक क़स्बे (ज़िला गुरदासपुर) में

---

12. Aurobindo was acquitted & released from Jail on 6 May 1909. Coming out of jail, Sri Aurobindo found the political situation in the country more depressing. Tilak was in Mandlay jail. The other great leaders were in prison or had been deported. The Terriorists invited more repression. The Extremists were feeling disheartened. Inspite of it Aurobindo tried to continue his struggle, but very few people turned up at his meetings. He started two new weekly papers, the Karmayogin in English and Dharma in Bengali. He put emphasis on the eternal and universal religion of humanity called Sanatana Dharma. His aim in the Karmayogin & Dharma was to look all the problems of life from the spiritual angle.
—Dr. Vidya Dhar Mahajan : *Leaders of the National Movement*, Page 160.

13. As regards the effect of jail life on B. C. Pal himself he, discovered in his cell a deeper meaning of India's battle for freedom. He saw in the national movement a manifestation of the Divine will, the working of a mightier force which had so long been ignored.
—Ibid, Page 130-131.

14. डा. नवरत्न कपूर : हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की मूलभूत प्रवृत्तियाँ और प्रेरक शक्तियाँ, पृष्ठ 277

मिर्ज़ा गुलाम मुहम्मद ने अहमदिया लहर की स्थापना की। इन क़ादियानियों (अहमदियों) ने गुरु नानक देव को मुसलमान और उनके सन्देश को इस्लाम का ही दूसरा रूप बताया, जिसके कारण अहमदियों तथा सिक्खों में झगड़ा हो गया ।[15] दूसरी ओर आर्य समाजियों एवं ईसाइयों के धर्म-सम्मेलनों में भी शास्त्रार्थ होता था, जिनमें कई बार भगवान कृष्ण को क्राइस्ट बताया जाता। हिन्दू ग्रन्थों की एकाध तुक पकड़कर [यथा—गिरिजा पूजन चली भवानी, गिरिराज की पुत्री अर्थात् पार्वती-भवानी गिरिजा (Church) में पूजा करने गई] श्लिष्टार्थ निकालकर हिन्दू देवी-देवताओं को ईसाई धर्म का अनुयायी सिद्ध किया जाता।

उन्नीसवीं शताब्दी के पहले दशक में ही शिक्षा के प्रश्न को लेकर आर्य समाजियों के दो दल खड़े हो गए। एक तो पाश्चात्य प्रणाली को शिक्षा का माध्यम बनाने का पक्षपाती था, दूसरा था प्राचीन गुरुकल व्यवस्था का समर्थक। मण्टफोर्ड रिपोर्ट के कारण सन् 1916-17 में डॉ. नैयर के नेतृत्व में मद्रास में एक अब्राह्मण आंदोलन उठ खड़ा। इतिहासज्ञों की धारणा है कि ब्रिटिश सरकार की इस आंदोलन के प्रति विशेष सहानुभूति थी।[16]

सन् 1920 में शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी की स्थापना के उपरांत सिक्ख गुरुद्वारों के प्रबन्ध को सुधारने के लिए अकाली लहर का प्रवर्तन हुआ। इसी वर्ष उदासी महन्तों ने अपने डेरों की रक्षा के लिए उदासीन मण्डल की नींव रखी। सन् 1921 में ननकाना साहब का साका हुआ और सन् 1922 में 'गुरु का बाग' का मोर्चा लगा। सन् 1923 में नाभा के राजा रिपुदमन सिंह को गद्दी से उतार देने के बाद 'नाभा मोर्चा' गरम होने पर जैतों में सिक्ख जत्थे पर गोली चलाई गई। गुरुद्वारा क़ानून बनने के उपरांत सन् 1926 में अकाली लहर तो समाप्त हो गई, किन्तु गुरुद्वारों के सुधार और अधिकार की समस्या क़ानून के बावजूद भी बनी रही।[17]

---

15. डॉ. जुगिंदर सिंघ : आधुनिक पंजाबी साहित्त दी रूपरेखा, पृष्ठ 12।
16. गुरुमुख निहाल सिंह : भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास, पृष्ठ 375।
17. (क) गंगा शंकर मिश्र : भारत में ब्रिटिश साम्राज्य, पृष्ठ 483।
    (ख) पंजाबी पत्तरकला, पृष्ठ 52-63।

अपने ही देश में जहाँ धर्म और राजनीति के नाम पर इतनी रगड़-झगड़ थी, वहाँ पारस्परिक वाद-विवाद के कारण प्रत्येक धर्म का वास्तविक रूप भी लोगों के सम्मुख आने लगा था। प्रत्येक धार्मिक संस्था अथवा जागरूक व्यक्ति पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अपने विचारों के अधिकतम प्रचार के लिए कमर कसने लगा। सन् 1903 में श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' (प्रकाशनारम्भ सन् 1900) का सम्पादकत्व सम्भाल लिया। श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने पहले कलकत्ता के रामकिशन मिशन से प्रकाशित 'समन्वय' के सम्पादन विभाग में कार्य किया। कानपुर से श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'प्रभा', गोरखपुर से प्रकाशित 'कल्याण' (प्रकाशनारम्भ सन् 1925) क्रमश : साहित्यिक और धार्मिक विषयों को लेकर सामने आईं। श्री बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित 'विशाल-भारत' (कलकत्ता, 1928) और मुंशी प्रेमचन्द के सम्पादकत्व में 'हंस' (बनारस, 1930) साहित्यिक पत्रिकाओं के रूप में अवतरित हुए। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'स्त्री-दर्पण' (प्रयाग) में नारी-समस्याओं पर विशेष बल दिया गया।

इन्हीं दिनों कलकत्ता से 'हितवाणी' और 'नृसिंह'; प्रयाग से 'कर्मयोगी' एवं 'मर्यादा' का प्रचलन हुआ। सन् 1908 में बालगंगाधर तिलक के 'केसरी' का हिन्दी संस्करण 'हिन्दी केसरी' और सन् 1913 में श्री गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा सम्पादित साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' ने तत्कालीन राजनैतिक वातावरण को झंझोड़ दिया।

पंजाबी पत्रकारिता में 'निरगुणिआरा' (अमृतसर), खालसा धरम प्रचारक (अमृतसर) एवं गुरुमुखी अख्बार (लाहौर) सिक्ख धर्म के प्रचार और समाज सुधार के कारण अत्यन्त चर्चित रहे। 1901–1919 तक शहीद (अमृतसर), गुरमत प्रचार (लाहौर), खालसा सेवक (लाहौर), नौरतन, सचखण्ड आदि गुरमत-प्रचार विषयक पत्र-पत्रिकाओं का आरम्भ हुआ। पंजाबी स्त्रियों में शिक्षा-प्रचार के प्रयोजन से 'पंजाबी भैण' (फ़ीरोज़पुर), इस्त्री समाचार (क्वेटा), भुजंगण पत्तर (अमृतसर) सामने आए।[18]

---

18. पंजाबी पत्तर कला, पृष्ठ 42 (महिकमा पंजाबी, पटियाला)।

पंजाबी मासिक 'प्रदेशी खालसा' कुआलालंपुर (मलाया) से सितम्बर, 1918 में आरम्भ हुआ। पंजाब में विशेष ख्यातिलब्ध रहा, सानफ्रांसिसको का पंजाबी साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान ग़दर' । इसकी नींव ग़दर पार्टी के लाला हरदयाल, सरदार करतार सिंह सराभा आदि देश प्रेमियों ने रखी थी।[19]

प्रथम महायुद्ध के समय पंजाबियों को अंग्रेजी सेना में भर्ती होने की प्रेरणा देने के लिए अंग्रेजी सरकार की ओर से गुरुमुखी अक्षरों में पहला साप्ताहिक पत्र 'फ़ौजी अखबार' सन् 1914 में शिम्ला से छपा। फ़ीरोज़पुर से प्रकाशित 'सिक्ख सिपाही' साप्ताहिक भी फ़ौजी भर्ती का हामी था। पटियाला रियासत की प्रशासनिक उपलब्धियों, सरकारी विज्ञप्तियों के लिए 29 मई, सन् 1910 को पटियाला नगर से 'पटिआला गज़ट' नामक पंजाबी साप्ताहिक पत्र का प्रचलन हुआ। सन् 1926 में सरदार सेवा सिंह ठीकरीवाला के प्रयत्न से पटियाला में रियासती प्रजामण्डल की स्थापना हुई और राजनैतिक साप्ताहिक 'रियासती केहर' निकाला गया।

सन् 1920 में 'शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक कमेटी' की स्थापना के साथ सिक्ख गुरुद्वारों के सुधार के लिए अकाली लहर का प्रवर्तन हुआ। इसके फलस्वरूप पंजाबी में 23 दैनिक, 8 पांच दिवसीय, 67 साप्ताहिक, 4 पाक्षिक, 25 मासिक और एक त्रैमासिक जारी हुए। दैनिकों में अकाली (लाहौर), रणजीत (लाहौर), ख़ालसा (अमृतसर), जत्थेदार (अमृतसर), अकाली पत्रिका (अमृतसर) प्रमुख हैं। पंचरोज़ा 'क्रिपान बहादुर' (अमृतसर) 'कक्कार बहादुर' (अमृतसर) में पत्र के नामानुरूप सिक्ख सिद्धांत का समर्थन किया जाता था। अमृतसर से पांचवें दिन छपने वाले 'ख़ालसा सुआणी' तथा 'उपकारी माता ने स्त्री-जागरण की दिशा में विशेष योगदान किया। मलाया से साप्ताहिक 'कलगीधर', कानपुर से साप्ताहिक 'सिक्ख', रंगून से अर्द्धमासिक 'बरमा पत्र' का भी उद्भव हुआ। फुलवाड़ी (अमृतसर) और कवी (कलकत्ता) मासिकों ने पंजाबी बोली और साहित्य-जगत् की अत्यन्त सेवा की।

---

19. पंजाबी पत्तरकला, पृष्ठ 42।

'किरती' मासिक पत्र का जन्म जनवरी, 1925 में हुआ। इसके प्रयोजन के विषय में सरदार सूबा सिंह के विचार हैं :—

"किरती के साथ पंजाबी पत्तरकारी में एक नया मोड़ आया। इसके द्वारा पहली बार वैज्ञानिक समाजवाद का आरम्भ हुआ।...... 'किरती' ही पहला रसाला था, जिसने 'किरतीओं', और 'किसानों' में एक नई चेतना जगाई और सरमाएदारी के विरुद्ध जत्थेबन्दी के लिए ज़ोर दिया।...... इसके शिरोभाग पर एक मार्क्सी नारा अंकित होता था :—

'संसार के किरतीओ और किसानो, संगठित हो जाओ। इसमें आपको कोई हानि नहीं। हां आपकी गुलामी की जंजीरें अवश्य कट जाएंगी।'

× × ×

इसका निशाना बड़ा स्पष्ट था।...इस पर्चे में भड़काने वाली कविताएं होती थीं, लेखों में आंकड़ों के आधार पर सरल बोली में यह बताया जाता था कि किस प्रकार साम्राज्यवादी सरकार हिन्दुस्तानी जनता का खून निचोड़ रही है। किस प्रकार उसकी नीतियां श्रमिकों की लूटपाट पर स्थित हैं। धार्मिक रंग भी होता था कई रचनाओं में, किन्तु इस तरीके से कि शासकों के ज़ुल्म नंगे हो सकें।"[20]

भारत व्यापी धार्मिक और राजनैतिक आंदोलनों में जहां 'अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग' ही अधिक मुखरित था, वहां यूरोप के विद्वान बर्गसां और मेरिटेन के दार्शनिक विचारों के कारण उन देशों में मानवतावाद की प्रतिष्ठा होने लगी थी। सामाजिक तथा राजनैतिक व्यवस्थाओं का सबसे उच्च आदर्श मानव-मात्र को समुन्नत, सम्पन्न और सुखी बनाना उद्घोषित किया गया। यूरोपीय शिक्षा-दीक्षा के साथ-साथ इस मानवतावादी दृष्टि का भी प्रवेश भारत में हुआ।

मनु के सामान्य धर्म के दस लक्षण, बुद्ध के दस शील तथा मूसा की दस आज्ञाओं में विचित्र साम्य था। राष्ट्रीय भावना के लिए संगठन की प्रेरक पुस्तकों और पत्रिकाओं में इन धर्म वचनों के महत्व

20. सूबा सिंघ : पंजाबी पत्तरकारी दा इतिहास, पृष्ठ 120।

को दर्शाकर ऊंच-नीच तथा जातीय भेदभाव को मिटाने के उपदेश दिए जाते । इससे जहाँ प्रत्येक धर्म की निजी महत्ता प्रकट होती, वहां सहिष्णुता के लिए भी मार्ग प्रशस्त होता। यूरोशलम के एक धार्मिक सम्मेलन में ईसाइयों ने भी अपनी धार्मिक उदारता का यथेष्ट परिचय दिया। राजनैतिक कारणों से भी हिन्दू-मुसलमानों में सौहार्द भाव स्थापित होता रहा, भले ही वह अस्थायी रहा हो।[21] दूसरे महायुद्ध ने तो सांप्रदायिक एवं देशगत भिन्नता की अपेक्षा विश्वशांति को अधिक धर्मसंगत बना दिया। डॉ. मजूमदार के अनुसार—

'लौकिक मानवतावाद के विकास में भारतीय धार्मिक भावना के योग ने इस प्रवृत्ति (लोक सेवा) को और भी प्रोत्साहित किया। यूरोपीय महासमर ने भी युद्ध के विनाशकारी भीषण परिणामों और तज्जन्य अशांति एवं निराशा का अनुभव मानव समाज को करवा दिया।'[22]

वैचारिक साहित्य-सरणि : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह जापान में बौद्धों के माध्यम से और भारत में वेदांतियों के साथ रहकर धर्म की वस्तुस्थिति को समझ गए थे। अनेक क्रांतिकारी, कवि, सम्पादक एवं लेखक भी इनके सम्पर्क में आए और इन्होंने उनके जीवन को पैनी दृष्टि से परख लिया था। गृहस्थ-जीवन में इन्होंने जोशीले देश प्रेमियों और रमते जोगियों को आश्रयस्थल तो प्रदान किया, किन्तु ये उनके रंग में रंगकर 'घर फूंक तमाशा देखने' को तत्पर न हुए। मनु एवं याज्ञवल्क्य-स्मृतियों तथा श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन ने इन्हें आत्म-दर्शन को परम धर्म एवं आत्मज्ञान को सब विद्याओं में श्रेष्ठ होने का विश्वास करवा कर 'आत्म-परायणता' के लिए विवश किया :—

(क) इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्याय कर्मणाम् ।
अयंतु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ।।

(याज्ञवल्क्य स्मृति, अ० 1, श्लोक 8)

---

21. डॉ. नवरत्न कपूर : हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की मूलभूत प्रवृत्तियाँ और प्रेरक शक्तियाँ, पृष्ठ 275 ।

22. A. C. Majumdar : *Indian National Evolution*, P. 207.

(ख) सर्वेषामपि चैतषमात्मज्ञानं परं स्मृतम् ।
तद्धयग्रयं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥
(मनुस्मृति, अ० 12, श्लोक 85)

(ग) निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥

× × ×

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अ० 2, श्लोक 45-50)

किन्तु गुरवाणी की ज्ञान-ज्योति से चमत्कृत प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'आत्म-दर्शन' से भी उच्चतर अदिष्ट के महत्व को पहचानने का पाठ सीखा। 'अहं' का अंश होने के कारण इन्होंने सामयिक विषयों पर काव्य-रचनाओं को निरर्थक ठहराया, यथा—

"दृश्यमान् जगत् यदि कवि का 'मज़मून' (विषय) बने तो अफ़सोस है। यह तो हर चित्त का 'दिस्सदा-पिस्सदा' (सतत-दृष्टिभूत) विषय है और यदि ज़रा-सा भी एकाग्र होकर दुनिया के रंगों में सैर करना चाहे तो अपने खुलेपन में आकर स्वच्छन्द रूप में कर सकता है । मैं ही तो औरत, मर्द, चोर, यार, जुआरी, बादशाह, अमीर, फ़क़ीर हूँ। भेष बदला और जिस दिल का हाल चाहो मैं स्वयं वही होकर बता सकता हूँ, यह चन्द मिनटों का खेल है।"

('कवी दा दिल'—पंजाबी निबन्ध)

फिर भी एक सांसारिक व्यक्ति और वह भी जागरूक साहित्यकार के लिए जीवन की नितांत उपेक्षा कर देना दुष्कर नहीं तो असम्भव अवश्य है । अतएव कवि को तटस्थदर्शी बनना पड़ता है। प्रोफ़ेसर साहब ने उक्त दृष्टि को "रसिक बैराग" की संज्ञा प्रदान करके बड़े विनम्र भाव से इस कर्त्तव्य-निर्वाह के लिए मौन स्वीकृति दी है—

इस जीऊँदे बुत्त नूँ[23] मेरे
जीऊंदा बस रक्खन लई[24]

---

23. जीवित मूर्ति को।
24. केवल रक्षा के लिए जीता हूं।

सभ कुदरत दा, ते मन दा साज,[25] रंग-राज बख़शिश्रा ।[26]
सो तद थीं जोउंदे लई[27]
सभ श्रारट दा सामान है[28]
'रसिक बैराग' साहिब श्राखदे ।[29]

('रब्ब नूं श्रौकड़ बणी श्राण इक दिन'[30]—'खुल्हे घुण्ड')

प्रोफ़ेसर साहब ने पारिवारिक सुख-शान्ति के लिए श्रम गौरव की महिमा को स्वीकार किया। इस प्रकार परिवार की नींव पर दृढ़तापूर्वक खड़ा हुश्रा यह प्रेम-भवन क्रमशः श्रनेक मंज़िल पार करके मानवीय-एकता ही नहीं प्रत्युत् श्राकाश तथा पृथ्वी के मिलन रूपी क्षितिज को भी छूने लगा। कवि के इस 'श्रदृष्ट' की श्रभिव्यक्ति निम्न सरणियों में प्रवाहित हुई है—

(i) युगवर्ती द्वन्द्वों का श्राध्यात्मिक समाधान
(ii) प्रेम की जगत्-व्यापी महिमा
(iii) सौन्दर्य का वास्तविक रहस्य
(iv) रूह श्रौर सिक्ख की प्रतिष्ठा
(v) श्रवतार-भावना की विस्तृति
(vi) योग का जीवनोपयोगी निर्वचन

युगवर्ती द्वन्द्वों का श्राध्यात्मिक समाधान : प्रो. पूर्ण सिंह जापान के शैक्षणिक काल में ही बंगाल श्रौर महाराष्ट्र से सम्बन्ध रखने वाले भारतीयों के सम्पर्क में श्रा चुके थे। जापान से लौटने के बाद कलकत्ता में जोशीले भाषण के कारण श्रापको सन् 1903 में जेल-यात्रा भी करनी पड़ी। स्वभावतः ही सन् 1905 के बंगाल-विभाजन की घटनाश्रों का इन पर प्रभाव पड़ना श्रनिवार्य था। श्रपने हिन्दी निबन्धों में इन्होंने स्वामी रामकृष्ण परमहंस (पवित्रता), प्रतापचन्द्र मजूमदार (कन्यादान), केशवचन्द्र सेन श्रौर महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर (श्राचरण की सभ्यता) की

25. श्रनेक रूपी भावनाश्रों का।
26. राज्य सौंपा है।
27. इसलिए जीवन-पर्यन्त।
28. सारी कला-सामग्री (कौतुक, खेल-तमाशा) है।
29. गुरु साहब का वचन है।
30. भगवान् पर भी एक दिन संकट श्रान पड़ा।

भूरि भूरि प्रशंसा की थी। स्वामी राम द्वारा प्रचारित ग्रात्मजयी बनने का सन्देश भी इन्हें स्वामी विवेकानन्द के कथन की ग्रावृत्ति ही प्रतीत हुग्रा। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के जीवनी लेखक ग्रर्नेस्ट राइन्स ने, 'Sisters of the Spinning Wheel' की भूमिका में पूर्ण सिंह की कविता को रवि बाबू के समकक्ष बैठा दिया।[31] रवीन्द्रनाथ जी ने 'Unstrung Beads' के प्राप्ति स्वीकार में इस पुस्तक के उपलक्ष्य में सराहना-भरा पत्र भेजा था।[32] कालांतर में इन्होंने लोकमान्य तिलक ग्रौर श्री ग्ररविन्द घोष की राष्ट्रीय कर्त्तव्य विषयक दिव्य वार्ता (Gospel of National duty) को ही स्वामी रामतीर्थ एवं स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रचारित प्रायोगिक ग्रथवा व्यावहारिक वेदान्त से भी श्रेष्ठ माना।[33] महात्मा गांधी की

---

31. It was Rabindra Nath Tagore who carried over to English tongue with a new power & melody the first convincing strains of Bengali Poetry. Puran Singh has fortunately something of the same gift, and his music too freely naturalises itself in the English medium & makes good its accent & one soon becomes aware of its loving charm .....All the evidences of a high spiritual ancestry are joined to the fine pageantry of the Eastern world that glows in every page.
—Puran Singh : *Sisters of the Spinning Wheel* (Introduction by Ernest Rhyns).
32. It is the best that you should send out your beads unstrung, it is for your readers to string them with a single thread of delight.
—Puran Singh : *The Sptrit of Oriental Poetry* (Foreword by Dr. M. S. Randhawa).
33. The genius of Swami Rama did quite successfully cast the philosophy under the name of 'Practical Vedanta' or 'Applied Vedanta' into a Veritable gospel of patriotism...... Better than these two geniuses, the gospel of National duty, so brilliantly extracted out of Krishna's Bhagvad-Gita by the Lokmanya Bal Gangadhar Tilak & also by Aoribindo Ghosh is calculated to provide a real philosophic basis to the thinking Indians for changing their creed of one which other worldliness is synonymous with 'This worldliness.'
—Puran Singh : *The Story of Swami Rama*, Page 217.

नीतियों से तो प्रो. पूर्ण सिंह को एकदम वितृष्णा-सी ही हो गई थी।[34] 'यंग इण्डिया' में महात्मा गांधी ने एक लेख में यह प्रमाणित कर दिया था कि ईसा ने देशगत मामलों में कोई दख़ल नहीं दिया। इसी तथ्य को लेकर प्रोफ़ेसर साहब अपने पंजाबी निबन्ध 'वोट ते पॉलिटिकस' में गांधी जी पर बरस पड़े और उनके अहिंसा और रामराज्य के सिद्धांतों को चिट्टी चिट्टी कर दिया।[35] इसी निबन्ध में इन्होंने एक ओर कर्ज़न के समय के भारत की आर्थिक स्थिति, किसानों पर लगाए गए करों, कौंसिलों तथा नगर पालिकाओं के चुनावों में स्वार्थपरता की चर्चा की है। उधर दूसरी ओर अमेरिका के राष्ट्रपति चुनाव को जनता की मजबूरियों, लालच, घूसखोरी तथा धनी लोगों की धींगामुश्ती का प्रतीक मानकर साम्राज्यवाद—राजाशाही—का परिणत रूप ही माना।[36]

---

34. इस उद्भट लेखक का बहुत कुछ दुर्भाग्य था कि......हिन्दी के माने जाने समालोचक भी इनके विषय में बहुत कम जानकारी रखते हैं।......एक समालोचक ने तो इनके सम्बन्ध मैं यहां तक लिख दिया कि ये गाँधीवाद से प्रभावित थे, पर वास्तविक बात तो यह है कि जिस समय यह लेख लिखे गए उस समय भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी का कोई अस्तित्व ही नहीं था।

—प्रभात शास्त्री : सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबंध, पृष्ठ 24

35. जद तक सारे देवते नहीं हो जाँदे, हकूमताँ पशुआँ दीआँ रहिणगीआँ ते बड़ी मद्धम चाल नाल कदी समा पा के दुनिआँ दे रुख बदलणगे, ते जद देवते सारे हो जाणगे तद ईसा वरगे बंदे राजे मुड़ सच्चे राजे होणगे, जिहड़े रूहाँ नू ठंडाँ पाणगे। उह सच्च दा राज होवेगा, तद तक उह रामराज नहीं भावें लक्ख यंग इण्डिया इक इक गली थीं निकलण, ते भावें लक्ख लक्ख गाँधी इक इक महल्ले विच अहिंसा दा उपदेश करदे फिरन, दुनीया दी खुदगरज़ी नहीं मिट सकदी।

(वोट ते पाँलेटिकस—खुल्हे लेख)

36. 'जिसका काम उसी को साजे और करे तो ठींगा बाजे', इस मुलकी काइदे विच वी उहो अखाण लगदा है–'साईसी इलम दरियाई है कौण बकसूआं कहाँ लागत है साईस ही जाणे।'...उहो जमात नवें घाड़ाँ विच घड़ी गए...अग्गे इह लोकी बादशाहाँ दी वज़ीरी ते सूबेदारी करदे सन, हुण उहो ही वोट

(Contd. on page 162)

इन्होंने शासन विरोधी मंसूर, फ़ारस के शम्स तबरेज़ और जापान के ओशियो की महिमा का उल्लेख करके सच्चे शासक की पहचान करवाने का यत्न भी किया, यथा—

"सत्वगुण के समुद्र में जिनका अन्तःकरण निमग्न हो गया वही महात्मा, साधु और वीर हैं।...प्रकृति उनके माथे पर राजतिलक लगाती है। हमारे असली और सच्चे राजे ये ही साधु पुरुष हैं। हीरे और लाल से जड़े हुए, सोने और चाँदी से जर्क–ब्रर्क सिंहासन पर बैठने वाले दुनिया के राजों को तो, जो ग़रीब किसानों की कमाई हुई दौलत पर पिण्डोपजीवी होते हैं..इन्द्र की तरह ऐश्वर्यवान और बलवान् होने पर दुनिया के ये छोटे 'जार्ज' बड़े कायर होते हैं। क्यों न हों, इनकी हुकूमत लोगों के दिलों पर नहीं होती। दुनिया के राजाओं के बल की दौड़ लोगों के शरीर तक है। हां जब कभी किसी अकबर का राज लोगों के दिलों पर होता है तब इन कायरों की बस्ती में मानो एक सच्चा वीर पैदा हुआ।" (सच्ची वीरता)

प्रोफ़ेसर साहब ने फ्रांस के बादशाहों की विलासिता का कच्चा चिट्ठा 'वतन दा पिआर' निबन्ध में उतारा है। इन्होंने सुखी गृहस्थ जीवन को ही देश-प्रेम की नींव माना है,[37] एतदर्थ जापानियों,

---

(Contd. from p. 161)

देण वालियाँ दी छिज विच जा पहुंचे ते इक बादशाह दी थाँ अनेक पर निक्के निक्के बादशाहाँ दीआँ कसराँ किरसाँ दे दवाले घुम्मन लग्ग पए। कौंसल विच गए बन्दिआँ उप्पर कुछ भै पै गिआ...असीं तखतों उतारे जावाँग, इक्क तखत दे अनेक टुकड़े होए ते इक मिऊनसपल कमेटी दा मैम्बर ते प्रधान वी आपणी वित दी हद विच इक बादशाह हो गिआ... हुण अमरीका दा प्रैजीडैंट लोकाँ दी चोण भावें कई तहाँ दे लालचां, मजबूरियां रिशवतां, धनाढ लोकां दे समूह दे समूह अकट्ठां दें नाज.इज बल नाल खरीदीआं वोटां नाल होई होवे, इक्क राजा ही है।

(वोट ते पालिटिक्स—खुल्हे लेख)

37. वतन दे पिआर दा मुड्ढ आपणे घर, मां, भैण ते आपणे बच्चिआँ दा गूहड़ा, सादा, पर असगाह जिहा खसमाना है। इस मुड्ढ थीं वतन दे

(Contd. on p. 163)

फ्रांसिसियों और अंग्रेज़ों से प्रेरणा लेने की सिफ़ारिश की गई है। मातृ-भूमि के सही रूप को पहचानने के लिए इन्होंने मानव-प्राणी को जीवनदात्री माता के महत्वपूर्ण त्याग[38] का दिग्दर्शन करवाया है। भारत में तो स्त्रियों को मतदान का अधिकार बहुत बाद में मिला। किन्तु इन्होंने विदेशी राजनीति में स्त्रियों की अग्रगामिता देखकर ऐसी भविष्यवाणी कर दी जो कि इस शताब्दी के छठे और सातवें दशकों में भारत, इस्राइल, श्रीलंका और इंग्लैण्ड की राजनीति में पूर्णरूपेण चरितार्थ हो गई। लेखक महोदय के शब्दों में—

(क) सच्चे आर्य-पिता की पुत्री गुलामी, कमज़ोरी और क़मीनेपन के लालचों से सदा मुक्त है। वह देवी तो यहाँ संसार रूपी सिंह पर सवारी करती है। वह अपने प्रेम-सागर की लहरों में सदा लहराती है। कभी सूर्य की तरह तेजस्विनी और कभी चन्द्रमा की तरह शांतिप्रदायिनी होकर वह अपने पति की प्यारी है। वह उसके दिल की महारानी है।

(Contd. from p. 162)

पिआर दा ब्रिछ उपजदा है, जे जड़ ही ना होवे उत्थे जिन्दगी दा फैलाअ किस तर्हां हो सकदा है ?......इक दूजे दी बांह पकड़ना ही सच्च है, चम्म खुशीआं तां कूड़ हंन। सो दरद दीआं डूंघिआईयां विच जा के घर नू वतन सारा ते वतन सारा जे घर बणाइए, तद मौके सिर समां पाके कदी उह आचरण आ सकदा है, जिहड़ा देश नूं पिआर करन वाले जापानिआं या फ़्रांसीसीआं या अंग्रेजाँ विच दिस्सदा है।

(वतन दा पिआर—खुल्हे लेख)

38. बड़े बड़े वरिआम शूरबीरता दे कम्म 'माँ' दे पिआर विच्च कर जांदे हन। 'माँ' दे वड्डे सरूप मुलक पिच्छे की कुरबानीआँ नहीं हुंदीआँ ते माँ ताँ कोई जांदी जागदी आपा वारण दा अवतार है, अर निरे कौमी झंडिआँ नूं हवा विच लहिरांदा वेख फतह पाण वालीआँ कौमां दे बच्चे किसी सरूर ते हड्डी गरूर नूं पहुंचदे हन......इह कहि देणा 'माँ' की है, बस्स कारबन, आक्सीजन, हाईड्रोजन, कैलसीअम, फासफोरस, आदि दा इक जोड़ अथवा हड्डी मास दा। तद उह हकीकत माँ शब्द विच जिहड़ी है, उह तां इह आतम फाड़ दस्स नहीं सकदी......

(कीरत ते मिठ बोलना – खुल्हे लेख)

पति के तन, मन, धन और प्राण की मालिक है। सच्चे आर्य-गृहों में इस कन्या का राज है। हे राम ! यह राज सदा अटल रहे।

(कन्यादान)

(ख) जब तक आर्य कन्या इस देश के घरों और दिलों पर राज्य नहीं करती तब तक इस देश में पवित्रता नहीं आती। जब तक देश में पवित्रता नहीं आती, तब तक बल नहीं आता। ब्रह्मचर्य का प्राचीन आदर्श सुख नहीं दिखलाता, देश में पवित्रता लाने का ए भगवान ! अब तो पहिला संस्कार भारत कन्या को राजतिलक देना है।

(पवित्रता)

राष्ट्रीय ध्वज और स्वतन्त्रता : देशभक्तों के त्याग से बढ़कर किसी देश का 'क़ौमी निशान' (राष्ट्र ध्वज) और कौनसा हो सकता है ? अंग्रेजी साम्राज्य के दिनों में यूनियन जैक (Union Jack) ही क़ौमी निशान माना जाता था। लेखक महोदय की दृष्टि में भारतीयों की पराधीनता के प्रतीक उस दासता-चिह्न का कोई मूल्य नहीं। वह तो बांस की पोरी पर झूलता हुआ विभिन्न रंगों के कपड़ों को टांककर बनाया गया एक वहम मात्र है, उसे सलाम क्यों किया जाए। कवि तो कलगी के प्रतीक वाले पशुपालक भगवान् कृष्ण एवं दशम पातिशाह गुरु गोविन्द सिंह के सिरमौर के सम्मुख ही शिरोनत हो सकता है, यथा—

सोहणी बुत्त तेरा क़ौमी निशान है
असां लीरां ते चीथड़िआं[39] दे वहिमां नूं कद[40] सलाम करना ?
× × ×
महीं मुड़ चारांगे तेरीआँ[41]
भावें पातशाहां दे पुत्त असीं[42]
फिरांगे बेलिआं तेरिआं विच
वाजां मारदे[43] उसे कलगीआं वाले सरदार नूं।

---

39. फटे-पुराने कपड़े।
40. कभी नहीं।
41. दोबारा तुम्हारी भैंस चराएँगे।
42. भले ही हम राजपुत्र हैं।
43. आवाजें देते हुए, पुकारते हुए।

'लीरां और चीथड़िआं' एक ही अर्थ के बोधक हैं। इस प्रकार शब्द-युग्ल (Union of Words) में यूनियन जैक की ओर संकेत है। इन्होंने तो हिमालय में लहराती प्रकृति के शोभामयी विभिन्न रंगों में ही अपने राष्ट्रीय ध्वज का दर्शन कर लिया है, यथा—

मुलक सारा, ख़लक[44] सारी, भरदे हरापन नाल
दिल ते जी ठारदे, रूह भरदे रब्ब नाल
इन्हाँ लाटां हेठ[45] स्वरग है
नहीं इह स्वरग आप लाट लाट हो जगमग रिहा[46]।

हरापन, शीतलतादायक सफ़ेद बर्फ़ (आत्मिक शांति) और प्रकाश ज्योति की लालिमा तीनों मिलकर तिरंगे झण्डे का रंग बांध रहे हैं।

लेखक ने तो पहले भी मेहनतकश-ईमानदार गड़रिए के रूप और हिमालय पर्वतस्थ प्रकृति-सौन्दर्य के माध्यम से तिरंगे झण्डे (हरे वृक्ष+प्रेम-लाली+मुख, शरीर और अन्तःकरण की सुफ़ेदी) की गरिमा का चित्र इस प्रकार उतारा था—

'एक बार मैंने एक गड़रिए को देखा।... हरे-हरे वृक्षों के नीचे... गड़रिया बैठा आकाश की ओर देख रहा है। ऊन कातता जाता है। उसकी आंखों में प्रेम की लाली छाई हुई है... इनके मुख, शरीर और अन्तःकरण सुफ़ेद, इनकी बर्फ़, पर्वत और भेड़ें सुफेद।

(मज़दूरी और प्रेम)

धार्मिक द्वन्द्वों को त्यागकर और सच्चे गुरु के मार्गदर्शन से आत्मिक रस को पहचान लेने से ही आंतरिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि हो सकती है।[47] ऐसी स्वतन्त्रता का केवल मौन आभास हो सकता

44. विश्व, सृष्टि।
45. इन ज्योतियों के नीचे।
46. दीपक की अनेक ज्योतियों के समान स्वर्गीय आभा प्रकट हो रही है।
47. Mind not your poor accomplishments if the soul be drunk with the inebriation of self-soverignity.
Better be beasts of the jungle,than these men with religions of differences & duality.
It is better to die on the battlefield than to live full of
(Contd. on p. 166)

है, यथा—

मेरे अन्दर दी स्वैतन्त्रता
आज़ादी मेरी पूरा भरिआ रस[48] है जिहड़ा गुरू अरजनदेव
चखाउंदा,[49]
आज़ादी मेरी खुस्से,[50]
मेरे हत्थ पैर टुट्टदे[51],
अंग अंग मुड़ जांदे
गुरू फरमाउंदा।[52]
उह फुल्ल भावें डण्डी जकड़िआ,
पूरा आज़ाद है जिस दा मूंह त्रेल नाल भरिआ बोल
न सकदा,[53]
दूआ फंग खलिआर उड्डिआ आज़ाद होण नूं सुक्क के ढट्ठा, ते
मिट्टी नाल मिल मिट्टी होइआ।[54]

(किरत-उनर दी चुप्प कूकदी[55]—खुल्हे घुण्ड)

राष्ट्रीय संगठन : कवि महोदय ने हिमालय की विशालता में भारतीयों के औदार्य का चिह्न स्थापित करते हुए उसे विभिन्न धर्मों,

---

(Contd. from p. 165)

hatred for one another.
Better total annihilation than enslavement of body & mind even for an instant.

—Puran Singh : *Spirit of the Sikh*, Page 30.

48. भरपूर रस।
49. जिसे गुरु अर्जुनदेव चखाते हैं।
50. मेरी आज़ादी छिनने पर।
51. हाथ-पैर टूट जाते हैं; लाचार हो जाता हूं।
52. गुरु साहब के मनोहर वचन हैं।
53. ओस से भरे मुख के कारण बोलने में असमर्थ।
54. दूसरा आज़ादी प्राप्त करने के लिए (जीवन कार्यों से स्वच्छन्दता रूपी पुष्प-विकास) उत्सुक व्यक्ति सूख कर गिर पड़ा और मिट्टी में मिलकर मिट्टी हो गया।
55. 'कला का मौन भाषण' (कविता का शीर्षक)।

जातियों, और रंगभेदों से रहित एक शक्तिपुंज माना है—

इन्हां जोतां दा जुट्ट सारा[56]
गौरी शंकर थीं लै, बन्दर पूछ ते जमनोतरी
कशमीर दे पीर चिट्टे केशां वाले[57]
ते कुल्लु कागान दीआं धौलीआं जोतां[58]
इह सभ इक डिग्गी पई आकाश विच
है तलवार किसे वरिआम दी[59]
हिमाला सारा बस चिन्ह है[60]
पूरे इक मरद दे दिल दा
मुकम्मल इनसान दा खिच्चिआ इह चिन्ह है।

(हिमाला दीआँ बलदीआं ज़ोतां[61]—खुल्हे मैदान)

देश की एकता का मनोहारी बिम्ब-विधान करने के बावजूद भी लेखक ने समाचारपत्रों में नाम छपवाकर वीरता की घोषणा करवाने वालों और सूखे व्याख्यानों द्वारा आत्म-तृप्ति का सुख लूटने वालों को मीठी घुड़की देकर धर्म के सच्चे स्वरूप को खुली आंखों देखने के लिए भी विवश किया है :

(क) "आजकल भारतवर्ष में परोपकार करने का बुख़ार फैल रहा है। जिसको 105 डिग्री का बुख़ार चढ़ा वह आजकल के भारतवर्ष का ऋषि हो गया। आजकल भारतवर्ष में अख़बारों की टकसाल में गढ़े हुए वीर दर्जनों मिलते हैं। जहां किसी ने एक-दो काम किए और आगे बढ़कर छाती दिखाई तहां हिन्दुस्तान के सारे अख़बारों ने 'हीरो' की पुकार मचाई। बस एक नया वीर तैयार हो गया। यह तो पागलपन की लहरें हैं। अख़बार लिखने वाले मामूली सिक्के के मनुष्य होते हैं। उन की स्तुति और निन्दा पर क्यों मरे जाते हो ? अपने जीवन को अख़बारों

---

56. इन ज्योतियों (मशालों) का सारा समूह।
57. गौरी शंकर, (मुसलमान) पीर, सफ़ेद केशों वाले बुजुर्ग (सिक्ख) के प्रतीकों द्वारा धार्मिक एकता का प्रयास।
58. श्वेत ज्योतियाँ।
59. यह सामूहिक रूप में किसी वीर पुरुष की आकाश में गिरी हुई तलवार है।
60. यह प्रतीक चिह्नित है।
61. 'हिमालय का प्रदीप्त ज्योति समूह' (कविता का शीर्षक)।

के छोटे-छोटे पैराग्राफ़ों के ऊपर क्यों लटका रहे हो ? क्या यह सच नहीं कि हमारे आजकल के वीरों की जानें अख़बारों के लेखों में हैं ? जो इन्होंने रंग बदला तो हमारे वीरों के रंग बदले, ओठ खुश्क हुए और वीरता की आशाएं टूटीं। प्यारे, अन्दर के केन्द्र की ओर अपनी चाल उलटो और इस दिखावटी और बनावटी जीवन की चंचलता में अपने आप को न खो दो।'' (सच्ची वीरता)

(ख) ''यदि आप कहें व्याख्यानों द्वारा, उपदेशों द्वारा, धर्म-चर्चा द्वारा कितने ही पुरुषों और नारियों के हृदय पर जीवन-व्यापी प्रभाव पड़ा है, तो उत्तर यह है कि प्रभाव शब्द का नहीं पड़ता—प्रभाव तो सदा सदाचरण का पड़ता है। साधारण उपदेश तो हर गिरजे, हर मन्दिर और हर मसजिद में होते हैं, परन्तु उनका प्रभाव तभी हम पर पड़ता है जब गिरजे का पादड़ी स्वयं ईसा होता है—मन्दिर का पुजारी स्वयं ब्रह्मर्षि होता है—मसजिद का मुल्ला स्वयं पैगम्बर और रसूल होता है।'' (आचरण की सभ्यता)

इनका विचार है कि केवल खद्दर पहनने से देशभक्ति नहीं हो सकती। इसके लिए तो जीवन की सादगी द्वारा तितिक्षा का प्राकाट्य होना चाहिए। विलासमय जीवन व्यतीत करने वाले देशभक्तों पर इन्होंने बड़ा करारा व्यंग्य कसा है। भला ऐसे देशभक्त राष्ट्रीय गीत गाकर जनता को क्या प्रेरणा दे सकते हैं ? खद्दर पहनकर नई तुकबंदी करने एवं गायन करने से देश प्रेम कदापि प्रकट नहीं हो सकता :

(क) ...लोकी समझदे हन कि कौम गीत ते देश पिआर दे टप्पे बणा के गाउण नाल इस देश विच इक वतन दा पिआर उपजेगा... गीत जिहड़े जिन्द पांदे हन, उह इस तहीं तुकबन्दी दी वाक रचना तां नहीं हुंदे, उह तां जींदे लोकां दे तीव्र बचन हुँदे हन, जिहड़े लग्गे बाणां वांग दिलां नूं घाइल कर जांदे हन। जींदा उह है, जिहड़ा चम्म-जीवन लई मर चुक्का होवे। जित्थे जिहड़ी कोई सादगी रही सी, उह वी छड्ड के घर बाहर थीं निकल चम्म ही चम्म दी कूड़ नूँ सच्च समझ चुके हन, उन्हां नूँ की देश भगती ते की कौण सिखा रिहा है ? कहिन्दे हन, फरांसीसी चम्म-सच्च नूं मन्नदे हन। पर इह कथन गलत है...की साडे देश विच इह फोकापन नहीं रिहा ? हिन्दुसतान विच्च इस वासते दरद दुक्ख ते साधन ते ततिख्या विच दरद भरे रहिण दी लोड़ है। सिरफ़

इस अंश विच खद्दर पहिनरण दी सादगी, ते होर तहाँ दीआं ततिख्यां जे निरा मखौल ना होरण, जोवन दी डूँघिआई वल इक मोड़ा है। ते देश भगतो दा बीज तां सदीआं लेके उग्गेगा, पर घर दे जीवन नू डूंघा ते सादा करीए...मिहनत किरत करीए, आपा कम्म विच इन्नां मारीए कि चम्म-द्रिशटी रहे ही नांह...[62]" (वतन दा पिआर)

साम्यवादी तत्वों से प्रेरित साम्यवाद और समाजवाद के नाम पर किसान मज़दूर-विद्रोह का स्वर ऊंचा करने वालों को इन्होंने गुरवाणी में उल्लिखित 'नाम जपो, किरत करो और वण्ड छको' के सन्देश को शब्दानुशब्द अपनाने की प्रेरणा दी है। नितांत भारतीयता में निमग्न पूर्ण सिंह जी ने चरखा गीतों को राष्ट्रीय गीत का सम्मान देने एवं मज़दूर साहित्य के निर्माण की भविष्यवाणी भी कर दी थी।

"अब तो एक नए प्रकार का कला-कौशलपूर्ण संगीत साहित्य

---

62. (क) लोग समझते हैं कि राष्ट्रगीत और देश प्यार के टप्पे बनाकर गाने से इस देश में एक राष्ट्र-प्रेम उपजेगा...जीवन-प्रदान करने वाले गीत इस प्रकार की तुकबंदी वाली वाक्य रचना नहीं होते, वे तो सजीव प्राणियों के तीव्र वचन होते हैं, जो कि बाण की तरह हृदय बेधी होती है। जीवित वही है, जो चर्म-जीवन (शारीरिक सुख, विलासिता) के लिए मर चुका हो। जहाँ कहीं कुछ सादगी बची हुई थी उसे भी छोड़कर घरबार छोड़कर एक मात्र चमड़ी के झूठ को सच मान बैठे हैं, उन्हें देश भक्ति तथा अन्य बातें कौन सिखा रहा है। कहते हैं, फ्रांसिसी चर्म-सच (भोग विलास) को स्वीकार करते हैं। किन्तु यह कथन ग़लत है...क्या हमारे देश में ऐसी निस्सारता नहीं रही ? हिन्दुस्तान में इसी कारण (दूसरों के) दु ख, दर्द और साधन-तितिक्षा (अपरिग्रह) में भरपूर रहने की आवश्यकता है। केवल अल्पांश में खद्दर पहनने की सादगी और अन्य प्रकार की तितिक्षाएं यदि नितांत मज़ाक न हों (तो क्या ?) जीवन की गहनता की ओर एक मोड़ है। और देश भक्ति का बीज तो सदियों में उगेगा, किन्तु घरेलू जीवन को गहरा एवं सादा बनाया जाए...परिश्रम-(से) कृत (कार्य) हों, अपने-आप को कामों में इतना कूट पीट कर भर दिया जाए कि चर्म-दृष्टि (विषय-वासना) अशेष हो जाए।

62. (ख) Puran Singh : *Spirit of the Sikh*, Page 27.

संसार में प्रचलित होने वाला है।...यह नया साहित्य मज़दूरों के हृदय से निकलेगा। उन मज़दूरों के कण्ठ से यह नई कविता निकलेगी जो अपने जीवन के आनन्द के साथ खेत की मेड़ों का, कपड़े के तागों का, जूते के टांकों का, लकड़ों की रगों का, पत्थर की नसों का भेदभाव दूर करेंगे। हाथ में कुल्हाड़ी, सिर पर टोकरी, नंगे सिर और नंगे पांव, धूल से लिपटे और कीचड़ से रंगे हुए ये बेज़बान कवि जब जंगल में लकड़ी कांटेंगे तब लकड़ी काटने का शब्द इनके असभ्य स्वरों से मिश्रित होकर वायुयान पर चढ़ दशों दिशाओं में ऐसा अद्‌भुत गान करेगा कि भविष्यत् के कलावन्तों के लिए वही ध्रुपद और मलार का काम देगा। चरखा कातने वाली स्त्रियों के गीत संसार के सभो देशों के कौमी गीत होंगे। मज़दूरों की मज़दूरी ही यथार्थ पूजा होगी।"

(मज़दूरी और प्रेम)

देश और विदेश में उठने वाली विचारधाराओं का प्रोफ़ेसर साहब ने बड़ी गहन दृष्टि से निरीक्षण किया। भारत से बाहर 'कॉमनवेल्थ' (Commonwealth)[63] और कॉम्यून (Commune) के प्रशासनिक संगठनों को इन्होंने सिक्ख धर्म व्यवस्था में दिखाने की चेष्टा की। रेड क्रॉस (Red Cross) का प्रारूप भी आपने सिक्ख वीरों की समाज सेवा में टटोला। सिक्ख-धर्म के मूलभूत सिद्धांतों के प्रति प्रेम होने के कारण आपको तत्कालीन विघटनात्मक धार्मिक लहरों से महान क्षोभ ही हुआ। इन्हें सभी आंदोलनों के मूल में आत्म-प्रदर्शन या आर्थिक वैषम्य का ही प्रतिफलन प्रतीत हुआ। अतएव आपने भारतीय ग्रंथों के सत्य से आभासित होकर जो भविष्यवाणी की, उसे ही कांग्रेस ने प्रस्तुत शताब्दी के सातवें दशक में 'ग़रीबी हटाओ' के नारे के रूप में अपनाया। लेखक के वचन एतदर्थ विचारणीय हैं :

"बस्स जिहड़े किरत करदे हन चाहे हत्थां नाल, चाहे टंगां नाल,

---

63. Rare, rare is the Sikh a still rarer is the Khalsa, the Sikh *Commonwealth* because both are inspirations, both are flashes divine, now and then investing humanity...both the individual a society is the dream of the Angels that have met the Guru.

—Puran Singh : *Spirit of the Sikh*, Page 105.

चाहे दिमाग नाल, चाहे मिट्ठी जीभ नाल, उहो ही अन्न पानी दे इस आण वाली बिरादरी विच्च हक्कदार समझे जानगे। जिहड़े अज्जकल्ह सरमाए उत्ते ही लोकां दी छाती ते मूँग दलदे हन उन्हां नूं रोटी कपड़ा वी मिलणा मुशकल हो जायेगा...अमीरी-ग़रीबी नसल-ब नसल नहीं चल सकेगी, कि सरमाए नूं निकम्मा रक्खण दी आगिआ ही नहीं मिलेगी। किरतां उप्पर ही नबेड़े होणगे। पर जद तक उह जाइदाद ते माली धन दी बरोबरी नहीं आउंदी, तद तक चाल ओस सेध वल्ल हो जासी ते इनसानीअत ते बरोबरी दा सुफनां कदी समा पा के पूरा होवेगा।[64] (वोट ते पालिटिकस—खुल्हे लेख)

वसुधैव कुटुम्बकम्: प्रो. पूर्ण सिंह मानव-प्रेम के जिस आह्वान के साथ हिन्दी साहित्य-जगत् में अवतीर्ण हुए थे, उसे आपने विभिन्न धर्मों के मूल तात्विक सिद्धांतों के साम्य, ऐतिहासिक घटनाओं की श्रृंखला एवं महापुरुषों के जीवन की अभिन्नता के माध्यम से विकसित किया, यथा :

(क) मानव मात्र में समानता

(i) जब तक हम मनुष्य नहीं बन जाते तब तक न कोई गुरु, न कोई वेद, न कोई शास्त्र, न कोई उपदेश तुम्हारे लिए कल्याण का साधन हो सकता है। (पवित्रता)

(ii) यह सारा संसार एक कुटुम्बवत् है। लंगड़े, लूले, अंधे और बहरे उसी मौरूसी घर की छत के नीचे रहते हैं, जिसकी छत के नीचे बलवान्, नीरोग, और रूपवान कुटुम्बी रहते हैं। मूढ़ों और पशुओं का

64. बस जो श्रम करते हैं चाहे हाथों से, चाहे लातों से, चाहे दिमाग़ से, चाहे मीठी जीभ (मधुर भाषण) द्वारा, वही आगामी दिनों के भाईचारे में अन्न-पानी के अधिकारी समझे जाएंगे। जो आजकल अपने पैसे के कारण लोगों की छाती पर मूंग दलते हैं, उन्हें तो रोटी-कपड़े की प्राप्ति भी कठिन हो जाएगी...अमीरी-ग़रीबी पीढ़ी-दर-पीढ़ी नहीं चल सकेगी (क्यों) कि पूँजी को व्यर्थ (जमा) रखने की आज्ञा ही नहीं मिलेगी। श्रम के आधार पर ही न्याय (निर्वाह) होगा। किन्तु जब तक वह सम्पत्ति और आर्थिक (दृष्टि) से समानता नहीं आती, तब तक चाल उसी (शोषणवृत्ति, जमाखोरी) दिशा में रहेगी और इन्सानियत तथा बराबरी का सपना कभी समयानुसार ही पूरा होगा।

पालन-पोषण बुद्धिमान, सबल और नीरोग ही तो करेंगे। आनन्द और प्रेम की राजधानी का सिंहासन सदा से प्रेम और मज़दूरी के कंधों पर रहता आया है। (मज़दूरी और प्रेम)

(ख) **तत्व-साम्य-दृष्टि—**

(i) नयनों की गंगा से प्रेम और वैराग्य के द्वारा मनुष्य-जीवन को आग और बर्फ़ से बपतिस्मा मिलता है अर्थात् नया जन्म होता है—मानो प्रकृति ने हर एक मनुष्य के लिए इस नयन-नीर के रूप में मसीहा भेजा है . यही वह यज्ञोपवीत है, जिसके धारण करने से हर आदमी द्विज हो सकता है। (कन्यादान)

(ii) To me the word Sikh conveys a deep spiritual meaning. This word is used here with particular reference to men who are reborn of the Spirit of the Guru now, or were once "twice-born" in the near past in the Panjab—men of Cosmic consciousness. (*Spirit of the Sikh*, Page 7)

(iii) The baptism of fire and steel inaugurated by Guru Gobind Singh is the inspiration that remoulds man to a new faith and a new death in love. It is emanicipation by the touch of the Adepts who have the Guru's authority to give the gift of personality. It is the miracle of man-making, angel-making by a divine touch. (Ibid, Page 15)

(iv) विभिन्न धर्मानुयायियों के ढोल का पोल तथा सिमरिन (Simrin, स्मरण) और Sermon (धर्मोपदेश) ध्वनि साम्य वाले शब्दों का सही रूप—(1) Thundering anger, the thunder bolt and the Trishul, the calm suffering, the Cross and the Poison cup; the infinite wildness of the new-born life; the savagery of its love, the madness of its freedom; the soft glow of compassion, the holiness of self-sacrifice, the eternal peace—all are beauteous aspects of *Simrin*. The genius of *Simrin*, in its Cosmic Vastures, transcends all the petty measures of our relative ethics. (P. 36) Asia was once lit up by *Simrin*, the spiritual chant enunciated by the Buddha. All wore the yellow robe of poverty that He wore; all walked bare-footed as he had done...So the yellow Bhikku is the pathetic remanant of that great glory of Simrin that once shone

over us. (Page 43).

2. We are not quite consoled with the grand idealism of the *Sermon* on the Mount till we meet in person, once like Jesus meeting with whom we know, makes the great *Sermon* a poem of our own emanicipation Where is He ? Find Him and live the *Sermon* ..Ramkrishna Parmahansa lately gave Swami Vivekananda to the world; the latter left a scattering of Ashramas in the style of modern civilization which seem to be small pieces of his ochre robe, born out of it...And there are they caught by thorns, a few orange robe rags fluttering in the wind to no purpose ! And so the disciples created by the Sikh Gurus, once were freed men whose genius sparkled with the beauty of Self-Realization.

(*Spirit of the Sikh*, Page 38)

3. आदमियों की तिजारत करना मूर्खों का काम है। सोने और लोहे के बदले मनुष्य को बेचना मना है आज से हम अपने ईश्वर की तलाश मन्दिर, मस्जिद, गिरजा और पोथी में न करेंगे। अब तो यही इरादा है कि मनुष्य की अनमोल आत्मा में ईश्वर के दर्शन करेंगे। यही आर्ट है—यही धर्म है। (मज़दूरी और प्रेम)

इस प्रकार पूर्ण सिंह जी सभी धर्मों की शल्यक्रिया एक-साथ कर जाते हैं। वे सार वस्तु के ग्रहण और निस्सार तत्व के परित्याग की बात कर्मठ पाठकों पर छोड़ देते हैं। किन्तु उनके कटु सत्य श्रद्धालुओं के मन को एक बार झकझोर अवश्य देते हैं और सम्यक् दर्शन तथा समदृष्टि का पाठ भी कुछेक को सिखा ही देते हैं। इनके लिए तो सभी धर्म-कर्म, ग्रन्थ, पाठपूजा केवल एक ही लक्ष्य की ओर इंगित करते हैं—"मानव के महत्व को खुली आंखें देखने की। दुनिया के प्रपञ्च से रहित सरल मानव को पहचानने की", यथाः—

"जब हम मनुष्य बन जाएंगे तब तो तलवार भी, ढाल भी, जप भी, तप भी, ब्रह्मचर्य भी, वैराग्य भी, सब हमारे हाथ के कंकणों की तरह शोभायमान होंगे, और गुणकारक होंगे। इस वास्ते बनो पहले साधारण मनुष्य, जीते-जागते मनुष्य, हंसते खेलते मनुष्य, नहाए धोए मनुष्य, प्राकृतिक मनुष्य, जान-वाले मनुष्य, पवित्र-हृदय, पवित्र बुद्धि वाले मनुष्य, प्रेम भरे, रस भरे, दिल भरे, जान भरे, प्राण भरे मनुष्य। हल चलाने वाले, पसीना बहाने वाले, जान गंवाने वाले, सच्चे,

कपट रहित, दरिद्रता रहित, प्रेम से भीगे हुए, अग्नि से सूखे हुए मनुष्य।" (पवित्रता)

ऐसा दिव्य-मानव परलोक से नहीं आता। वह सर्वगुणसम्पन्न व्यक्ति तो इसी भूमि की खाद-मिट्टी से बनता है। पाश्विक वृत्तियों को तिलांजलि देने से ही ऐसे महानुभाव का निर्माण हो सकता है :

मनुक्ख दा देवता इथों बणदा,[65] मसतक हत्थ मार प्रीतम,
हैवान सारा झाड़िआ,
दिव्वय, अलौकिक इह द्रिशय, पत्थरां विच्चों कड्ढ कड्ढ,
मनुक्ख-मास नूं लचिकां दित्तीआं[66] सुहणीआं, हड्डीआं नूं मोड़िआ, मिट्टी-आदमी दो घाड़ां घड़ीआं, रब्ब दा बुत्त स्थापिआ।[67]

(सुरति ते हंकार—खुल्हे घुण्ड)

मानवोत्थान हेतु स्वार्थ रहित सेवा, प्रेमयुक्त श्रम ही न्याय की सब से बड़ी तुला है। मानव पूजा के लिए प्रयुक्त मूलमन्त्र का सही जाप इन शब्दों में हो सकता है :

The best Law is of Love;
The best service is of Labour in love;
The best thought is of the Emancipation of Man;
The best justice from man to man is Unselfishness;

(*Spirit of the Sikh*, Page 30)

अपने आत्मिक-सौन्दर्य से आभासित हज़ारों-लाखों में कोई एकाध जीवात्मा सांसारिक संघर्षों की चक्की के दो पाटों में पिसती हुई जीव-सृष्टि को अपने हृदय-मंथन से प्राप्त अनंत शांति का नवनीत भेंट कर सकती है। यह ऐसा स्नेह-स्निग्ध आदर्श है, जहाँ ईश्वरीय-प्रेम में धरती एवं आकाश निजी इयत्ता को भूलकर चिर-मिलाप के लिए उत्सुक हो जाते हैं, जैसे :

आपणी रूही सुन्दरता नूं जाणदा[68]

---

65. मनुष्य से देवता यहीं (पृथ्वी) से बनता है।

66. भली प्रकार लचकाया (साज-संवार की)।

67. भली प्रकार गढ़कर मनुष्य रूपी ईश्वर की मूर्ति स्थापित की।

68. अपनी आत्मिक सुंदरता से परिचित है।

अहंकार-रहित फुल्ल–अहंकार विच्च झूमदा[69]
कहिंदा इक सुख विच, उच्चा होइआ मान विच[70]—
धरति मेरी
अकाश मेरा
मैं उस इलाही पिआर दा
उडारी मारदा

(काली कूंज जिहड़ी मर गई[71]—खुल्हे घुण्ड)

प्रेम की जगत-व्यापी महिमा : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने प्रेम (पिआर) को जन्मजात गुण माना है। ईश्वर की उन्मुक्त देन होने के कारण ही प्रेम 'स्व' और 'पर' की ही नहीं प्रत्युत् 'साक्षर' एवं 'निरक्षर' की क्षुद्र सीमाओं को तोड़कर मानव को पूर्ण तृप्ति प्रदान करता है। इसी लिए आप अपने हिन्दी कथ्य को अंग्रेज़ी सूक्तियों के द्वारा पुष्ट करते हुए लिखते हैं :

"अपना निश्चय तो यह है कि हर एक मनुष्य जन्म से ही किसी न किसी अद्भुत प्रेम-कला से युक्त होता है। किसी विशेष कला में निपुण न होते हुए भी राम ने हर एक हृदय में प्रेम-कला की कुंजी रख दी है। इस कुंजी के लगते ही प्रेम-कला की सम्पूर्ण संभूति अज्ञानियों और निरक्षरों को भी प्राप्त हो सकती है :

All arts are nothing but Samadhi applied to love.

We are all born geniuses only if we will. The painter, the sculptor, the poet and the prophet have only been selected to love objects unseen by the ordinary human eye.

× × ×

जिस आध्यात्मिक देश में कवि, चित्रकार, योगी, पीर, पैगम्बर, औलिया विचरते हैं और किसी और को घुसने नहीं देते, वह सारे का सारा देश इन आम लोगों के प्रेमाश्रुओं से धुल-धुल कर बह रहा है। आओ मित्रो ! स्वर्ग का निलाम हो रहा है।" (कन्यादान)

अपने पंजाबी निबन्ध 'पिआर' में अनेक विरोधी भावों के द्वारा

69. अहंकारवश झूमता है।
70. अभिमान के कारण फूला न समाया।
71. काले रंग का क्रौंच पक्षी, जो मर गया।

प्रेम की स्वाभाविक आकर्षण शक्ति, दिव्य-मानवता की सहज उपलब्धि, शून्य (एकाकीपन) में उसके नाश की संभावना तथा प्रेम के क्षेत्र में आंगिक सुन्दरता तथा कुरूपता की हदबंदी से ऊपर उठने की स्थापनाएं प्रस्तुत की हैं :

"पिआर मल्लो मल्ली राह जाँदिआं पैंदे हण, 'निहुँना लग्दे जोरीं'... इह उसी तर्हां सहिज सुभा बिना किसे साधन जां जतन दे अंदर वस्सदा है, जिवें दया, संतोख आदि चिट्टी दैवी पासे दे सुभावक गुण, या काले हैवानी पासे दे सुभावक औगुण: बेरहमी, खुदगरज़ी आदि। सुभावक गुण औगुण इक्क ही वस्तू दे सिद्धे पुट्ठे पासे हण : अहंकार करूप हो सकदा है ते उहो ही अहंकार रूपवान...पिआर निरोल रूप विच जींदा, पलदा, रहिंदा ते स्वास लैंदा है। पिआर 'शून्य' फिलसफे दे 'शून्य' विच मर जांदा है।...कुछ होर मान पिआर दे इक दो द्रिष्टातां नाल ही दरसाए जा सकदे हन। लाहौर दीआं गलीआं ते शहिर दीआं बदबोआं थीं निकल के जे किसे बंदे नूं यका-यक कशमीर दीआँ किआरीआं विच जा बहालिए...सहिज सुभा उहो जिही फुल्लां दे अहंकार वरगी कोई नशीली भटक जिवें, उस बंदे दा चा, शौक फुट्टे, जिवें उसनू नशा चढ़े, तिवे ही पिआर जित्थे आउंदा है, उत्थे उह निक्का निक्का सदा रहिण वाला नशा जिहा चढ़िआ रहिंदा है।... देवतिआं दे रचे कोतकां दे अकहि रंग हन। मजनूं लैली ते आशिक हुँदा है। सच कि कूड़, कहिंदे हन कि लैली कोई मन्नी प्रमन्नी सोहणी युवती नहीं सी ते कुछ इह गल इस थीं वी सिद्ध हुंदी है कि अखान है कि भाई लैली नूं तां मजनूं दी अक्ख नाल वेखणा लोड़ीए। इथे लैली ते मजनूं दी रूह विच भेत ही नहीं रिहा सी।...आपणा आप को भुलणा सी, शरीर भुल्ल गिआ। रूह ही रूह, लैली दी याद ही याद, खिच्च ही खिच्च जीण हो गिआ.. प्रापती ते अप्रापती दी कांखिआ थीं उपर जींदा सी।[72]

(कवी दा दिल)

---

72. 'प्रेम तो राह चलते बरबस हो जाता है' नेहु ना लागे जोरी'...यह उस तरह सहज स्वाभाविक बिना किसी साधन के, यत्न के हृदय में बसता है। जिस प्रकार दया संतोष आदि स्वच्छ दैवी-पक्ष के गुण, या अस्वच्छ पाशिवक पक्ष के स्वाभाविक अवगुण : क्रूरता, स्वार्थ आदि। स्वाभाविक

(Contd. on page 177)

'मेरी' के उदाहरण में 'गुड नाइट किस' (रात्रि विछोह के चुम्बन) के साथ ही अंग्रेजी शब्द 'मेरी' में नामानुरूप अपनत्व' का अर्थ ('पिआर —पंजाबी निबन्ध) निकालकर भी लेखक वायवी-प्रेम या पूर्वराग को उचित नहीं मानता। इसी कारण वह 'कन्यादान' निबन्ध में सीता और शकुन्तला के यौवनावस्था के पूर्वराग की चर्चा के समय रांझा और हीर का प्रसंग छेड़कर अंग्रेज़ी मुहावरे Beat about the bush (अनर्गल चर्चा) का संकेत करते हुए इस प्रकार कन्नी काट जाता है :

"रांझा हीर की तलाश में निकलता ज़रूर है, मगर सच्चा योगी वह तभी होता है जब उसके लिए हीर अपने दिल को किसी बेले के झाड़ में छोड़ आती है।"

गृहस्थ जीवन और मातृत्व : प्रो. पूर्ण सिंह ने जीवन के स्वस्थ निर्वाह के लिए भारत की 'कन्यादान' प्रथा को अत्युत्तम माना है।

(Contd. from p. 176)

गुण अवगुण एक ही वस्तु के सीधे उल्टे पार्श्व हैं : अहंकार कुरूप हो सकता है और वही अहंकार रूपवान...प्रेम विशुद्धरूप में जीवित रहता, पलता, बसता और श्वास लेता है। प्यार 'शून्य' दर्शन (Philosophy) के 'शून्य' में मर जाता है।...प्यार की कुछ और आभाएं एक दो दृष्टांतों द्वारा ही दर्शाई जा सकती हैं। लाहौर की गंदी गलियों और शहर की बदबुओं से निकल कर यदि किसी व्यक्ति को एकाएक काश्मीर की क्यारियों में बैठा दिया जाए...सहज स्वाभाविक उसी प्रकार के फूलों जैसे अहंकार की नशीली मटक की तरह उस व्यक्ति का चाव, शौक प्रस्फुटित हो, मानो उसे नशा चढ़े, उसी प्रकार प्यार जहां आता है, वहाँ थोड़ा-थोड़ा चिर टिकाऊ-सा नशा चढ़ा रहता है। देवताओं के रचे कौतुकों के अकथनीय रंग हैं। मजनूँ लैली पर आशिक होता है। सच कि झूट, कहते हैं कि लैली कोई विख्यात सुंदर युवती नहीं थी और कुछ यह बात इससे भी सिद्ध होती है कहावत है कि भाई लैली को तो मजनूं की आँख से ही देखने की आवश्यकता है। यहाँ लैली और मजनूँ की आत्मा मे भेद ही नहीं रहा था। अपना-आप क्या भूलना था, शरीर (को) ही भूल बैठा। आत्मा ही आत्मा, लैली की याद ही याद, आकर्षण ही आकर्षण जीना हो गया... प्राप्ति और अप्राप्ति की आकांक्षा से ऊपर (उठकर) जी रहा था।

इसके द्वारा एक पत्नीव्रत (Monogamy) का नियम लागू हुआ था। पुरुष और स्त्री दोनों के पक्ष में एकमात्र परिणय को ही स्वाभाविक ठहराया गया है। पश्चिमी देशों में भी 'कन्यादान' प्रथा की खोज प्रोफ़ेसर साहब ने कर ली है। उनका विचार है कि पश्चिमी में अशांति का कारण गृहस्थी का विघटन है :—

"यूरोप के गृहस्थों के दुखड़े तब तक कभी न जाएंगे जब तक एक बार फिर प्रेम का कानून...लोगों के अमल में न आवेगा...आजकल पश्चिमो देशों में झूठी और जाहिरी शारीरिक आज़ादी के खयाल ने कन्यादान को आध्यात्मिक बुनियाद को तोड़ दिया है। कोई अख़बार खोलकर देखो, उन देशों में पति और पत्नी के झगड़े वकीलों द्वारा जजों के सामने तै होते हैं। और जज की मेज़ पर विवाह की सोने की अंगूठियां और कांच के छल्लों की तरह द्वेष के पत्थरों से टूटती हैं। गिरजे में कल के बने जोड़े आज टूटे और आज के बने जोड़े कल टूटे।" (कन्यादान)

विवाह से पूर्व कन्या को अपने शरीर को पुष्ट बना लेना चाहिए, यही उसका हठयोग है। बेटी गार्गी के लिए प्रोफ़ेसर साहब ने स्वयं ही वर ढूंढ लिया था। इन्होंने ग्वालियर से एक पत्र लिखकर बिटिया रानी को इस प्रकार उपदेश दिया था :—

"मैंने अब तुम्हें प्यार करने के लिए, सेवा के लिए और अपना सर्वस्व न्योछावर करने का इरादा कर लिया है। किन्तु फिर भी तुम अपनी सेवा करने में, प्यार करने में और सर्वस्व अर्पित करने में, अब से अधिक जीवित, अधिक आध्यात्मिक और अधिक प्यार करने वाली बनोगी, अन्यथा प्यार करना और सर्वस्व न्योछावर करना व्यर्थ होगा।

× × ×

मुझे बुरा लगता है कि तुम पिछले दो वर्षों से स्वस्थ नहीं रहती हो और ऊंची फलांग स्वास्थ्य की ओर लगाओ। तुम हठयोगी की भाँति अपने-आप को कड़े नियमों में रखो।

इस मानवीय-जगत् के सभी नियमों, शिक्षाओं का अपना-अपना लाभ होता है। इसी प्रकार हठयोग का। हठयोग क्या है। अपनी नाड़ियों को ठीक प्रकार से रखना, अपने शरीर में भली प्रकार रक्त-

संचार होने देना और सारे शरीर के पुट्ठों को संयत रखना।''[73]

पुरुष के लिए पत्नी के अतिरिक्त संसार की सभी स्त्रियां मां, बहन, बेटी होनी चाहिएं और स्त्री के लिए सभी पुरुष बाप, बेटा और भाई। 'खुल्हे मैदान' के 'इक वन फुल' कविता के बूढ़े खत्री दुकानदार की परिणीता युवती बलोच युवक के प्रति स्नेहशोला भगिनी भाव का प्रमाण देती है। 'इक जापानी नाइका दी जीवन कथा' शीर्षक निबन्ध का युवक मेज़बान प्रौढ़ा के रूप पर मुग्ध हो जाता है। किन्तु स्वच्छ हृदया मेज़बान महिला के बहन जैसे आग्रहपूर्वक आदेश के समक्ष उसे शिरोनत होना पड़ता है। आतिथेय महिला को रात्रि भर पति की मूर्ति के सामने नाचते रहकर जागृत रहना है। इसी तथ्य को जानकर अतिथि के मन की मैल धुल जाती है और वह घर में विद्यमान एक ही बिस्तर के उपयोग की वास्तविकता को हृदयंगम कर लेता है।

अनमेल विवाह से अभिशप्त 'लूणां' यौवनाग्नि के कारण अपने सौतेले पुत्र 'पूरन' पर मुग्ध हो जाती है। किन्तु कवि उसे भी अनुताप की अग्नि में जलाकर कुन्दन बना देता है, यथा—

"लूणां दा कड़ टुट्टा[74], हत्थ जोड़ टुट्टी......
छाती फटी रानी दी, काड़ काड़ होई, मां जागी लूणाँ[75] विच
पूरन पसचाताप विच चीखी वांग किसी देवी दे[76]
इक चीख नाल ओह हैवान थीं इसान होई[77] जोगी दे गुपत
प्रभाव नाल।

× × ×

बखशो[78] जोगीराज सच्चे, मैं हतिआरी हां![79]
बच्चा पूरन मेरा, मैं मां उसदी,

---

73. डा. महिंदर सिंह रंधावा : पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता, पृष्ठ 93।
74. लूणां की कठोरता दूर हुई।
75. लूणां में मातृत्व जगा।
76. किसी देवी की तरह चीखी।
77. पशु से मनुष्य बन गई।
78. बचाओ।
79. मैं हत्यारिन हूँ।

× × ×

पूरन पुत्त मेरा, सदा निरदोस,[80] बेलोस, महसूम;[81]
दुद्ध वरगा चिट्टा बछड़ा गऊ दा सी[82]
मैं आप जान बुझके ते चन्न नूं दाग लाया।[83]

× × ×

मैं आखदी मुड़ आ[84] बच्चा ! मैंनूं बखश बच्चा मैंनूं आपणे अन्दर
दे पशचाताप थीं तूं बखशवा बच्चा[85]

(पूरन नाथ जोगी : खुल्हे मैदान)

प्रोफ़ेसर साहब नारी के पत्नीत्व की पूर्णता मातृत्व में मानते हैं। वात्सल्य का निश्छल सागर जहाँ मां इच्छराँ के हृदय में ठाठें मारता है, वहां सच्चरित्र पूरन का व्यक्तित्व विमाता लूणां के अन्तर्तम को भी स्निग्ध ज्योति से स्नेहिल बना देता है। मां की निःस्वार्थ ममता का एक बड़ा सुन्दर चित्र पूर्ण सिंह जी ने अपनी अंग्रेज़ी कहानी 'दि मदर' (माता) में उतारा है। किस प्रकार डोईवाला में मिस्टर हैरिसन के किराएदारों की 'सिक्ख माता[86] ने 'पंजाब माता'[87] की उपाधि प्राप्त कर ली थी, उसके व्यक्तित्व की हल्की सी झाँकी प्रस्तुत है :—

"वह शाम के भोजन के लिए थोड़ा-सा नमक ख़रीदने के लिए अपनी कुटिया से रेलवे स्टेशन आती थी, और कई बार शीघ्र घर लौटने की बात भूलकर वह रात में बहुत देर से घर वापिस आती थी। एक दिन थोड़ा-सा नमक हाथ में लिए हुए जब वह घर को लौट रही थी, तब उसे निम्नजातीय एक अन्धा किराएदार मिला, जो कि अपनी झोंपड़ी का रास्ता भूल गया था। वह उसे पहुंचाने के लिए लगभग 6

---

80. निर्दोष।
81. मासूम।
82. गाय का दूध जैसा सफ़ेद बछड़ा।
83. चन्द्रमा को कलंकित किया।
84. दोबारा वापिस आने के लिए कहती हूं।
85. आंतरिक पश्चाताप से मुझे छुटकारा दिलाओ।
86. Sikh Mother.
87. The mother was known all over Doiwalla as "Mother from the Punjab."

मील तक उसके घर तक गई और तब अपने स्थान पर लौटी।

× × ×

एक बार मैं उत्सुकतावश सैर सपाटे में डोईवाला में 'माई' के घर पर पहुंचा।...आंगन के बीचों-बीच नीम के एक वृक्ष के नीचे बैठी हुई वह चर्खा कात रही थी। उसने मेरी अपनी मां की तरह मेरा अभिनन्दन किया, मुझे अपनी भुजाओं में भर लिया और मुझे आशीर्वाद दिया।"[88]

(Puran Singh Studies, April 1979, P. 2-3)

लेखक का यह अटल सिद्धांत है कि गृहस्थी के सुचारु संचालन के निमित्त पति, पत्नी और परिवार के सभी बच्चों को जुटकर परिश्रम करना चाहिए। 'कुमिहार ते कुमिहारन' कविता में कवि कहता है :—

"बैठा कुमिहार ते कोल बैठी उसदी कुमिहारन
अटक गिआ मैं दोहाँ दी मेलवीं मजूरी विच।"[89]

'इक जंगली फुल' और 'पंजाब दी अहीरन इक गोहे थप्पदी' शीर्षक 'खुल्हे मैदान' की कविताओं की नायिकाओं को बिना नाक-भौंह सिकोड़े गृहस्थी के बोझ को ढोते हुए दिखाया गया है। अंग्रेज़ी कहानी 'दि जेसमिन गारलेंड (चमेली की माला) में उच्च उपाधि-प्राप्त भारतीय युवकों की बेकारी के दुःखद वातावरण में भी परिश्रमी माता के द्वारा उत्पादित सुखी पारिवारिक जीवन का आदर्श रूप इन शब्दों में प्रस्तुत किया गया है—

"मानिक लाल की माँ अपने छोटे से परिवार के लिए भोजन बनाती थी, बर्तन मांजती थी और घर की साज-संभाल करती थी। पति से उसे जो थोड़ा-बहुत भत्ता मिलता था, उससे वह घर के चेहरे-मोहरे को चमकाती थी और घर में अतिथि के रूप में पधारने वाले संबंधियों की पर्याप्त मात्रा में आवभगत करती थी। उसके मीठे शब्द, चमकता हुआ चेहरा, सद्भावपूर्ण स्वागत उसके आतिथ्य की रही सही

---

88. She greeted me like my own mother, gathered me in her arms & blessed me.

89. कुम्हार के पास ही उसकी कुम्हारिन बैठी थी। दोनों के सहयोग से (प्रभावित होकर) मैं अचंभित हो गया।

कसर पूरी कर देता था ।"

(Puran Singh Studies, July 1979, Page 69)

प्रोफ़ेसर साहब ने हिन्दी निबन्ध 'प्रेम और मज़दूरी' में बूढ़े गड़रिए के पारिवारिक सौख्य के अतिरिक्त पंजाबी निबन्ध 'वोट ते पालिटिक्स' में स्त्री के गृहस्थ विषयक 'घरोगी जिमींदारा इनडसटरी' (घरेलू जमींदार उद्योग) में लगभग 180 रुपए मासिक की बचत के आंकड़े प्रस्तुत किए हैं। अर्थहीन विधवा को भी आत्म-निर्भरता एवं प्रभु-चिंतन का पाठ इस शब्द-चित्र द्वारा पढ़ाया गया है :—

"गाढ़े की एक कमीज़ को एक अनाथ विधवा सारी रात बैठकर सीती है, साथ–ही साथ वह अपने दुःख पर रोती भी है—दिन को खाना न मिला, रात को भी कुछ मयस्सर न हुआ। अब वह एक-एक टांके पर आशा करती है कि कमीज़ कल तैयार हो जाएगी; तब तो कुछ खाने को मिलेगा ।...खुली आंखों ईश्वर के ध्यान में लीन हो रही है ।...ऐसी मज़दूरी और ऐसा काम—प्रार्थना, सन्ध्या और नमाज़ से क्या कम है ? शब्दों से तो प्रार्थना हुआ नहीं करती। ईश्वर तो कुछ ऐसी ही मूक प्रार्थनाएं सुनता है और तत्काल सुनता है।"

(प्रेम और मज़दूरी)

चौके के बर्तनों की टनटनाहट की भाँति पति-पत्नी की थोड़ी-बहुत खटपट भी उपेक्षणीय है। गुरु साहिबान द्वारा गृहस्थी–महिमा का उल्लेख कवि ने बड़ी मधुर वाणी में ईदृश किया है :—

सच्चे साहिबां आखिआ
अन्न दा स्वाद वी[90] इक नाम दा स्वाद है ।।
इह गुरां दे गीत दे टुकड़े,[91]
मंग मंग; खोह खोह, लड़ लड़[92]
प्रीत-रस विच डुबो खावणे[93] ।।

('घर की गहल चंगी'—खुल्हे मैदान)

पंजाब-प्रेम : कतिपय प्रेरक तत्व—पंजाब के आतिथ्य सत्कार,

---

90. अन्न का स्वाद भी।
91. ये गुरुओं के गीतों के अंश ।
92. मांग-मांग कर, छीन-छीन कर ।
93. प्रेम-रस में डुबाकर खाने योग्य हैं।

परिश्रम, खाद्य-पदार्थों के बाहुल्य संबन्धी विपुल सामग्री पूर्ण सिंह जी के काव्य-ग्रन्थों और अंग्रेज़ी कहानियों में खूब संजोई गई है। पंजाबी वीरों का पराक्रम प्रकृति पर भी नियन्त्रण कर सकता है। पंजाबी माताओं के पुत्र युद्ध से नहीं भागते वे तो रणक्षेत्र में खून की होली खेलना पसंद करते हैं। क्रमशः दोनों उदाहरण प्रेक्षणीय हैं—

(क) महाराजा रणजीत सिंह ने फ़ौज से कहा—'अटक के पार जाओ।'' अटक चढ़ी हुई थी और भयंकर लहरें उठ रही थीं। जब फ़ौज ने कुछ उत्साह जाहिर किया तब उस वीर को ज़रा जोश आया। महाराज ने अपना घोड़ा दरिया में डाल दिया। कहा जाता है कि अटक सूख गई और सब पार निकल गए। (सच्ची वीरता)

(ख) बांके छबीले पंजाब-पिआरे दे रहिण वाले[94]
पंजाबी मावाँ दे पुत्तर,
रखण न जान संभाल इह
जान नूँ वारन इह जाणदे
लहू वीटण थीं न डरन इह[95]
ते जंग मैदान विच नसणा न पछाणदे[96]।

('जवान पंजाब दे'—खुल्हे मैदान)

पंजाब केवल परिश्रमी लोगों, वीरों, सिक्ख गुरुओं तथा सच्चे प्रेमियों की भूमि ही नहीं है। यहां के लोग गाना, बजाना, लोकगीतों की संरचना और भांगड़ा नृत्य जैसे कसरती करतब में भी कुशल हैं, यथा—

गाओ ढोले[97] यारो, खुल्ह विच बेशक हुण,[98]

---

94. निवासी।
95. रक्तपात से नहीं डरते।
96. भागना नहीं जानते।
97. निक्की (छोटी) 'बोली' या 'टप्पा' पंजाब का सब से पुराना और लोकप्रिय गीत है।...इसे 'बोली' इसलिए कहा जाता है क्योंकि किसी को बोली मारने (उपालंभ देने) से इसका प्रभाव सीधा हृदय को कुरेदता है। 'टप्पा' नाम इसलिए पड़ा क्योंकि इसके साथ 'टप्पिआ' (नाचा, कूदा-फाँदा) जा सकता है।...लहिंदे (पश्चिमी) पंजाब में 'माहीआ'

(Contd. on p. 184)

बजाओ अलगोजे पोठोहार दे[99] ।
बरान बैंत,[100] उड्डरा रंग गुलाब दे,[101]
दिल दीआं मौजां[102] रब्बी जवानीआं,[103] पीड़ां
मुड्ढ कदीम दीआं[104]
हां ! ऐवें जद दिल अक्के[105]
अट्ठ डाँगां बरसाओ वांग आँधीआँ[106]
इह तुसां दे डौलिआं नूँ वरज़ूश जरूर है ।[107]

(जवान पंजाब दे)

प्रत्येक बोली की अपनी लोकगीत शैलियां होती हैं, उसका निजी

(Contd. from p. 183)

अथवा 'ढोला' अत्यन्त प्रचलित है। बोली की तरह यह भी विशुद्ध भावावेश का गीत है।...उदाहरण के रूप में यदि बोली की एक तुक को थोड़ा आगे पीछे करके और लंबा करके पढ़ा जाए तो वही बोली 'माहीआ' या 'ढोला' बन जाती है, और 'माहीआ' की तुकों को आगे पीछे करके थोड़ा तीव्रता में पढ़ा जाए तो वह 'ढोला' फिर बोली का रूप बन जाता है।

—डॉ. अवतार सिंघ दलेर : पंजाबी-लोकगीत : बरातर ते विकास, पृष्ठ 29 तथा 35 ।

98. संशय रहित स्वच्छंदता पूर्वक ।

99. पोठोहार के अलगोज़े (फ़ारसी संज्ञा रूप—एक प्रकार की बांसुरी, जो मुरली की तरह बजाई जाती है। मुरली को टेढ़ा करके बजाया जाता है जबकि अलगोज़े को मुंह में सीधा रखा जाता है। पश्चिमी पंजाब में इसका विशेष प्रयोग होता है।—भाई कान्ह सिंघ: महान कोश, पृष्ठ 63) बजाओ।

100. अरबी और फ़ारसी का दो तुका छंद ।

101. गुलाबी मस्ती उड़े ।

102. हृदय का अह्लाद ।

103. ईश्वरीय देन यौवन ।

104. अतीत-कालीन पीड़ाएं ।

105. यों ही जब दिल उकता जाए ।

106. उठकर आँधियों की तरह लाठियाँ उछालो ।

107. यह आपके भुजदंडों का अवश्यमेव व्यायाम है ।

मुहावरा होता है, उसके देशज शब्दों में निहित स्वतन्त्र छटाएं होती हैं। इसीलिए पंजाबी निबंधकार अपने पंजाबी भाषा–प्रेम का व्यौरा इस प्रकार देता है :—

"इस विच्च शक नहीं कि कविता आपणी ही बोली विच्च उस खास देश दे वासीआं नूँ रूह तक अपड़ा सकदी है। इह असम्भव है कि अंग्रेज़ी कविता ते उहदा उदहारण सानूँ पंजाबीआं नूँ उन्ना तीखरण, मिट्ठा ते रसीला लग्गे, जिस तहीं अंग्रेज़ाँ नूं लगदा है। मेरी जाचे इह नामुमकन है कि पंजाबी दिल नूं हिन्दी ते उरदू बोली कदी रूह नूँ चंगी लग्गे। जिस वेले पंजाबो मां ते भैणाँ आपणे पुत्त ते भरा दे गुज़र जाण उप्पर रुदन कर कर वैण[108] पांदीआं हन, उह वैण कदी वी अंग्रेज़ी या फ़ारसो या उरदू विच नहीं हो सक्कदे। सो जिस तहीं मां दे खून ते हड्डी नाल साडा रिशता है, इसे तहीं उहदी बोली नाल। रूह तक तां मां दी बोली अप्पड़दी है। सो कवी सदा आपणी मां दी बोली विच रहिंदा है, उसे नूं उच्चा करदा है। वाक रचना तां कोई हर बोली विच कर सक्कदा है, जे उसनूं अकली हुनर आउंदे होवे, पर कविता कदी

---

108. "काले घाघरे पहने हुए प्रौढ़ाएं एवं वृद्धाएं दिवंगत प्राणी के घर पर चढ़ाई कर देती हैं। मृतक के मुहल्ले के मोड़ से ही वे ज़ोर ज़ोर से बिलखना प्रारंभ कर देती हैं। उसके घर पहुंच कर वे एक दूसरे के गले मिल कर गंभीर चीत्कार करती हैं। उस समय की अवस्था का चित्रण पंजाबी कवि शाह मुहम्मद ने यों किया है :—

शाह मुहम्मदा पैणगे वैण डूंघे
जदों होण पंजाबनां रंडीआं

(शाह मुहम्मद का कथन है कि जब पंजाबी स्त्रियाँ विधवा होती हैं तो बहुत से शोक गीत गाए जाते हैं)

वास्तव में 'वैण' (शब्दार्थ : वाक्य, वचन, वाणी) अथवा 'कीरणा' एकमात्र विलाप या क्रन्दन ही है।"

—श्रीमती सरोज बाला कपूर एवं डॉ. नवरत्न कपूर : पंजाबी लोक-चिंतन और पर्वोत्सव ('स्यापा' निबंध), पृष्ठ 37।

पराई बोली विच नहीं हो सकदी।"[109] (कविता)

पूर्ण सिंह जी को पंजाब के एक-एक कण से प्रेम है। किन्तु जहां पंजाब के लोक जीवन में सहज-स्वाभाविकता के स्थान पर कृत्रिमता, ढोंग और पाखण्ड हावी हो गए हों वहां आप उनकी बोलती बन्द करना ही उचित समझते हैं। आर्थिक विषमताओं से आक्रान्त पंजाब के विघटन का सजीव चित्र कवि ने इन शब्दों में उतारा है :—

सस्सां दे उह समुन्दराँ वरगे दिल किथे ?[110]
नूहां धीआँ दी उह लिहाज़ दी सभिअता ?[111]
जवाईआ दी पुराणी मोतीआं वरगी आब किथे ?[112]

× × ×

भरावा ! इह पुराणी बुड्ढी जिही सभिअता,
दरिआवां झनावाँ दे फेर वाली, दूरों आई, दूर जांदी

---

109. इसमें संदेह नहीं कि कविता अपनी ही बोली में उस विशेष देश (अर्थात् क्षेत्र-विशेष) के निवासियों की आत्मा तक पहुंचा सकती है। यह असंभव है कि अंग्रेज़ी कविता और उसका उदाहरण हम पंजाबियों को उतना तीक्ष्ण, मधुर और रसीला लगे जिस प्रकार अंग्रेज़ों को प्रतीत होता है। मेरी समझ में यह असंभव है कि पंजाबी दिल को हिन्दी या उर्दू बोली कभी आत्मा को अच्छी लगे (अर्थात् आत्मिक आनंद प्रदान करे)। जिस समय पंजाबी माँ और बहनें अपने बेटे और भाई के निधन पर रुदन करते हुए 'वैण' डालती हैं, वे 'वैण' कभी भी अंग्रेज़ी या फ़ारसी (संभवत: पारसी ?) या उर्दू में नहीं हो सकते। इसलिए जिस प्रकार माँ के ख़ून और हड्डी से हमारा संबंध है, उसी तरह उसकी बोली के साथ। आत्मा तक तो मां की बोली ही पहुंचती है। इस लिए कवि सदा अपनी माँ की बोली में निवास करता है, उसको उन्नत करता है। वाक्य-रचना तो कोई भी व्यक्ति प्रत्येक बोली में कर सकता है, यदि उसे बौद्धिक कला का ज्ञान हो, किन्तु कविता पराई बोली में कदापि नहीं हो सकती।

110. सासों के वे समुद्रों-जैसे हृदय कहां हैं ?

111. पुत्र वधू और बेटी के सम्मान (शर्म-लिहाज़) की सभ्यता (कहाँ है) ?

112. दामादों की पुरानी मोतियों-जैसी शोभा कहाँ है ?

बिरादरीआं मिल मिल जाण किथे ?[113]
उह सदीआं दी बोहड़ किस वड्ढी,[114]
उह पुराणा पिप्पल किथे उड्ड गिआ ?[115]
हवा आई, झक्खड़ आइआ,[116] उह किस गेरिआ[117] ?

× × ×

वपार[118] असीं करदे सी सुच्चा सुथरा
काहली विच[119] अमीर होण नूं निंददे[120]
इक रब्बी जोड़मेल[121] जाण कुल दुनीआ दी सेवा करदे
इह चाँदी दीआं ठीकरां[122] कदी नांह साडा रब्ब सी
वलाइतां जाँदे,[123] काबल कन्धार बुखारे
सुहणे उनरां दे कम्म बणे देश आपणे नूं आउणदे ।[124]

× × ×

आदमी दी पूजा छड्डी, मन्निआ गुनाह सी
पर ठीकरीआँ दी पूजा अज दी कथाईं दा पुन्न सी ?[125]

---

113. हे भाई ! यह पुरानी, बूढ़ी-सी सभ्यता, जो कि जेहलम नदी के विभिन्न मोड़ों की तरह दूर से आई थी (और अब) परे भाग रही है। अब बिरादरी के लोगों में मेल-मिलाप का जीवन कहाँ है ?
114. (सभ्यता रूपी) वट वृक्ष किसने काटा ?
115. वह पुराना पीपल कहां उड़ गया ।
116. आंधी आई ।
117. उसे किसने गिराया ?
118. व्यापार ।
119. एकाएक ।
120. निंदा करते थे ।
121. ईश्वरीय पर्वोत्सव (की एकत्रता) ।
122. मिट्टी के टूटे बर्तनों जैसा धन ।
123. विलायत (इंग्लैंड) जाते थे ।
124. सुंदर कलाएँ सीखकर देश लौटते थे ।
125. यह मानते हैं (व्यंगात्मक) कि मनुष्य की पूजा दोषयुक्त होने के कारण त्याज्य थी, किन्तु आजकल की लक्ष्मी-पूजा कहां का पुण्य है ?

सौंदर्य का वास्तविक रहस्य : शब्द-निष्पत्ति—'सुन्दर' संस्कृत का विशेषण शब्द रूप है । 'सुन्दर' शब्द की निरुक्ति इस प्रकार है :—सु (उपसर्ग)+उन्द् (धातु)+अरन् (प्रत्यय)। धात्वर्थ में 'सुन्दर' का अर्थ हुआ—सु=सुष्ठु या भली प्रकार; उन्त=आर्द्र करना; 'अरन'=कर्तृवाचक प्रत्यय । अतः 'सुन्दर' की भाववाचक संज्ञा 'सुन्दरता' का अर्थ हुआ—भली प्रकार आर्द्र (गीला, सरस) करने वाला भाव। इस शब्द की अन्य निष्पत्ति इस प्रकार भी बताई गई है—

भ्वादिगण की 'टुनादौ समृद्धौ' धातु से भी हो सकता है। 'सु' (उपसर्ग)=अच्छी प्रकार; नन्दयति=जो प्रसन्न करता है। ता=हिन्दी प्रत्यय; अर्थात् अच्छी प्रकार प्रसन्न करने वाला पदार्थ ।[126]

'ऋग्वेद' के कुछ मन्त्रों में 'सूनर' और 'सूनरी' शब्दों को दृष्टिगत रखकर सुन्दर व्यक्ति के रूप में पुलिंगवाचक एवं वस्तुादि के रूप सुन्दरी को स्त्रीवाचक माना जा सकता है । फलतः अर्थविस्तार के कारण सूनर>सु नर एवं सूनरी>सु नरी उभयलिंगी शब्द मानव के साथ-साथ मानवेतर जगत् के सौंदर्य पर भी लागू होने लगा । वेदोक्त कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(क) यो वाधते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः ।

(ऋग्वेद, मण्डल 8, सूक्त 29/1)

(ख) विश्वमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योति कृष्णोति सूनरी ।

(वही मण्डल, 1 सूक्त 48/8)

प्रो. पूर्ण सिंह ने सुन्दरता के इसी मानवीय एवं प्राकृतिक रूप को अभिव्यक्ति इस प्रकार की है—

'सुन्दरता सारी लज्जा को त्याग, घरबार छोड़, अनन्त पर्दों को फाड़ खुले मुँह दर्शन दे रही है। बालकों, नारियों और पुरुषों के मुखों की लाली और सफ़ेदी झड़ रही है। गुलाब, सेब और अंगूर के नरम नरम और लाल-कपोलों से फूट फूटकर निकल रही है। प्रातःकाल के रूप में सिर पर नरम-नरम और सफ़ेद सफ़ेद रुई का टोकरा उठाए हुए किस अंदाज़ से वह आ रही है। सायंकाल होते अपने दुपट्टे को सुर्ख फूलों से फिर कुल संसार में होली खेलती वह जा रही है। झरनों,

126. वाचस्पत्ये कोषः, पृष्ठ 5314

चश्मों और नदी नालों में नाच रही है। हिमालय की बर्फ़ों में लोट रही है। सजे धजे जंगल और रूखे बियाबानों की सनसनाहट में लोट रही है। युवती कन्या के रूप में जवानी की सुगन्ध फैलाती हुई वह चल रही है...बालक की बोलचाल में, चेहरे में, क्या झाँक-झाँककर सबको देख रही है। खुला दरबार है। (पवित्रता)

सौन्दर्य की विशदता समय और स्थान की सीमाओं का अतिवाहन करती हुई देशान्तर (Longitude) और अक्षान्तर (Latitude) में इतनी विस्तीर्ण है मानो वह भौतिक प्रकृति एवं मानव प्रकृति में साम्य-स्थापन में ही सर्वथा-सर्वदा कृतसंकल्प हो।

डॉ. भीखनलाल आत्रेय ने सौन्दर्य की अवस्था को योग की सविकल्प समाधि की अवस्था कहा है।[127] प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने तो भरपूर आंखों से सविकल्प और निर्विकल्प दोनों छायाओं में इसका दर्शन किया है। ब्रह्मकान्ति की प्रखर आभा उनके सौन्दर्यानुभव की विशालता का मुंह बोलता चित्र है, यथा—

(क) ये बादल चाहे आत्मिक जीवन के केन्द्र हों, चाहे निर्विकल्प समाधि के बाहर के घेरे, इनमें जाकर कवि ज़रूर सोता है। उसका अस्थि माँस का शरीर इन बादलों में घुल जाता है। (कन्यादान)

(ख) प्रेम की बूंदों में यह असार संसार मिथ्या रूप होकर धुल जाता है और हम पृथ्वी से उठकर आत्मा के पवित्र नभोमण्डल में उड़ने लगते हैं। अनुभव करते हुए भी ऐसी धुली हुई अवस्था में हर कोई समाधिस्थ होता है अपने आप को भूल जाता है; शरीराध्यास न जाने कहाँ चली जाती है,...प्रेम की काली घटा ब्रह्मरूप में लीन हो जाती है।...चित्रकार सुन्दरता का अनुभव करता है और तन सुन्दरता में डूब जाता है।...वह चित्र ही क्या जिसने हजार बार चित्रकार को इस योगनिद्रा में न सुलाया हो। (कन्यादान)

'कान्ति' शब्द भी 'सौन्दर्य' का पर्याय है। ब्रह्मकांति के रूप में

---

127. "It is a state of complete repose and is very much akin to ecstacy or 'Savikalpa Samadhi of Indian Yoga."
—Banaras Hindu University Journal (Silver Jubilee Number 1942) Page 44.

लेखक ने इस शब्द की तो झड़ी–सी लगा दी है, उदाहरणार्थ—

(क) ब्रह्मकान्ति के जोश में बादल गरज रहे हैं।

(ख) ब्रह्मकांति के अनन्त प्रकाश में भी मेरे लिए अन्धेरा हुआ ?

(ग) जल न जायं वह महल जहां ब्रह्मकान्ति से रोशनी न हो।

(घ) भारत तो सदा ही ब्रह्मकान्ति में वास करता है, भारत तो ब्रह्मकांति का चमकता-दमकता सूर्य है। (पवित्रता)

अमरकोष के प्रणेता ने ही 'सुषुमा परमा शोभा कान्तिर्द्युति छविः। (1/2/28) में बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के सौन्दर्य को समाविष्ट करने की छूट दे दी थी। प्रोफ़ेसर साहब ने इसीलिए कान्ति शब्द के व्यापक अर्थ को ग्रहण किया। अंग्रेज़ी शब्द 'Beautiful' एवं 'Glory' के माध्यम से इनके सूक्ष्मभावगर्भित मन्तव्य तक पहुँचा जा सकता है, यथा—

Worshipper of the Beautiful

To me the word Sikh conveys a deep spiritual meaning. It is the man in man—he who has longed for ages for the realization of his destiny and the knowledge of the self...At the dawn of time, it rang its heart-bell, and at the great dusk, it shall light its taper of mind at His altar, still to worship and to adore the life-giver.

—Men of cosmic consciousness—angles, Gods whose bodies are mere vehicles of the spirit, presences singing "Glory ! Glory !" and flooding both landscape and the face of man with the living image of their vision. Men of all races and ages... with the revealation of heaven on their own brows !

"The morning breaks,
The birds sing;
His saints glow in various, wonderous colours.

(*Guru Granth Gauri-ki-Var*, *V.6*)

[The Sikh—*Spirit of the Sikh*, Page 7)

प्रो. पूर्ण सिंह ने अपनी पंजाबी रचनाओं में 'सुन्दरता' के अन्य पर्यायों 'सुहण्णप', 'सुहप्पण,' 'हुसन' का प्रयोग किया है। यह

'सुहण्णप' (सुहप्पण) शब्द संस्कृत 'शोभनीय' से व्युत्पन्न है।[128] पंजाब में 'सुन्दराँ', 'सोहणी' (सुहणी) प्रभृति स्त्रियों के नाम होते हैं। नामानुरूप गुण का वैभव दिखाने के लिए लेखक ने कई बार पर्याय-वाची शब्दों का सहारा भी ले लिया है।[129] एक उदाहरण प्रस्तुत है—

दस ना सुन्दराँ ! इह की ते किथाई दा पिआर है
पंछी सुहणीएं ! जंगलां विच रहिण खुशी, खुल्ह विच उड्डदे...

(पूरन नाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

'हुसन' फ़ारसी शब्द है। इसका प्रयोग भी कवि ने पंजाब के लोक काव्य में प्रसिद्ध रानो सुन्दराँ और ऐतिहासिक महापुरुष दशम गुरु गोविन्द सिंह के लिए किया है। फिर भी 'सरकार' और 'परी' की संज्ञाओं से आदरणीय एवं सामान्य भाव का अन्तर स्वतः स्पष्ट है, यथा—

(क) इत्थे हुसन दी सरकार दे तम्बू आण लगदे
इत्थे गुरु गोबिन्द सिंघ पिआरा राखा साडा।

(पंजाब दी अहीरन इक गोहे पत्थदी—खुल्हे मैदान)

(ख) देख हुसन परी राणी सुन्दरां दा जोग भुल्ले टिल्ले ते बैठे
जिन्ने जोगी ...

(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

मृतक 'सोहणी' की सुन्दरता के लिए कवि ने 'नूर' (प्रकाश) और 'हीर' की सुन्दरता के लिए 'चन्न' (चन्द्रमा) के प्रतीकों को चुना है, यथा—

(क) इक खिट्टी नूर दी, इह सोहणी दा दिल है !

(सोहणी दी झुग्गी—खुल्हे मैदान)

(ख) इक हीर अक्खर तेरी कन्नी पिआ,
× × ×
मैं लिआसां चन्न सिआल नूं।

(हीर ते रांझा—खुल्हे मैदान)

---

128. सुंदरं रुचिरं चारु सुषमं, साधु, शोभनम् (अमरकोष, 3/1/52)

129. उस विच डल्ह के उहदा अछोह सुहण्णप
ते उस हुसन दीआँ सूखम चमकाँ।

—(इक जंगली फुल—खुल्हे मैदान)

शब्द के अर्थ-विस्तार में निपुण पूर्ण सिंह जी ने पंजाब के लोक काव्य की विख्यात सुन्दरी नायिका 'सस्सी' को चन्द्रमा की सुषुमा का आशय प्रदान करके एक नामरहित स्त्री के लिए उक्त शब्द के प्रयोग द्वारा नवीन उद्भावना का परिचय दिया है—

पर झुग्गी[130] अज इक मंदर पिआर दा सी

× × ×

ते 'नवी' इक सस्सी चुल्हे बैठी रोटी पकांदी सी ।

(इक जंगली फुल—खुल्हे मैदान)

सौंदर्य दर्शनीय वस्तु है स्पर्शीय नहीं : सांसारिक प्राणी अधिकतर उभयलिंगी हैं । ऐन्द्रिक सुखों की तृप्ति के कारण ही स्त्री-पुरुष के आकर्षण-विकर्षण की भावना उत्पन्न होती है । किन्तु जब यह मान लिया जाए कि सौन्दर्य व्यक्तिनिष्ठ नहीं, वह तो समष्टिभाव है तब इन्द्रियगत-सुन्दरता से मनुष्य का ध्यान हट-सा जाता है । इसी भाव को दर्शाने के लिए अंग्रेज़ी भाषा में एक मुहावरा बन गया है—Beauty is to see and not to touch । कवि ने इस मुहावरे की शरण लेकर अपनी वेदान्त दृष्टि का स्पष्टीकरण बड़ी रमणीय विधि में किया है—

सुहणप्प ना सोहणी कोई
जनानी ना मरद कोई[131]
इह बेल बूटे जिहड़े तैनूं खिच्चदे
इह मैं खड़ा, इह मैं खिड़िआ ।[132]

× × ×

खिच्च कोई चीज़ नाँह
सुहणप्प कोई फड़न वाली, गल लाण वाली शै नांह
इह ताँ सूखम, अरूप जिहा मैं हां
रस मैं तेरा, तेरा रूह रस नाल भरदा

130. झोंपड़ी ।

131. सौंदर्य न स्त्री है न पुरुष ।

132. ये जो विभिन्न आकारों वाले पौधे (बूटे) और बेलें रूप पुरुष एवं स्त्री तुम्हें आकर्षित करते हैं, यह केवल मनुष्य का अहं भाव है—केवल अपना प्रसन्न चेहरा ।

रस तेरे नैणां थीं डुल्हदा बस इह सुहणप्प है।[133]

(कुड़ीग्रां दा सी त्रिभरण दा त्रिभरण[134]—खुल्हे मैदान)

सौंदर्य के प्रति वासनाजनित प्रवृत्तियों के दमन हेतु कवि ने अनेक दार्शनिक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं—

(i) माया रूप— प्रतक्ख,[135] पर माइग्रा, सुहरणप्प उह
बुलावे, मचकावे, नस्स जावे परे, परे।[136]

(ii) क्षरण भंगुर— स्वप्न स्वछ, जिवें छाईं माईं होंवदी[137]
स्वच्छ स्वप्न × × ×
हथ न ला मैंनूं[138]
अंग ना छुहा मैंनूं
रस्सी न पा मैंनूं
नींद दा मैं सुफना।[139]

(इक जंगली फुल—खुल्हे मैदान)

नख-शिख वर्णन एवं षोड्श श्रृंगार : श्रृंगारिक कवियों ने सुन्दरता को कुछेक शब्दों, रंगों, ग्राभूषणों, वस्त्रों एवं प्रसाधनों की दासी मात्र बना डाला था। इसी कारण षोड्श श्रृंगार की कल्पना कर के शब्दों के हेर-फेर के अतिरिक्त अधिकांशतः नख-शिख वर्णनों में चर्वित-चर्वण मात्र ही हुआ। संस्कृत के शुद्ध साहित्य में सोलह श्रृंगारों का अभाव और संस्कृत के प्रामाणिक कोशों में इसके नामोल्लेख की अदृश्यता से यही निष्कर्ष निकलता है कि 'श्रृंगार षोड्शी' वाली भावना

133. आकर्षण कोई चीज़ नहीं है, सौंदर्य कोई पकड़ने वाली, गले लगाने वाली चीज़ नहीं है। यह तो 'अहं' भाव की भांति सूक्ष्म एवं आकार (रूप) रहित है। आत्माओं की आत्मिक रसिकता, जो नेत्रों से प्रवाहित हो, यही एकमात्र सौंदर्य है।
134. लड़कियों के चर्खा गीत।
135. प्रत्यक्ष।
136. दूर-दूर भाग जाए।
137. मानो छुई मुई हो रहा हो।
138. मुझे हाथ न लगाओ।
139. स्वप्न।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में थी ही नहीं।[140] डॉ.कीथ के अनुसार वल्लभ देव की सुभाषितावली में षोड्श शृंगार की चर्चा हुई है। डॉ. कीथ के अनुसार वल्लभदेव का समय 15वीं शताब्दी है जबकि डॉ. एस. के. डे. इस कालावधि को खींचकर 12वीं शताब्दी ईस्वी[141] में ले जाते हैं। अतः षोड्श शृंगार वर्णन की परम्परा की भाँति वर्ण्य शैली में भी वैविध्य ही दिखाई पड़ता है। रूप गोस्वामी[142] द्वारा चर्चित सोलह शृंगारों के उपकरणों में ही नहीं बल्कि कालान्तर में हिन्दी कवि मलिक मुहम्मद

---

140. (क) नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष 62, अंक 2-3; संवत् 2014 [डा० बच्चन सिंह : षोड्श शृंगार, पृष्ठ 169]

(ख) हमारे विचार में कन्या के शरीर की सुसज्जा की भावना प्राचीन भारत में न थी। ब्रह्मचर्य-व्यवस्था में शृंगार प्रसाधनों के लिए स्थान न था। किन्तु पंद्रह-सोलह वर्ष की अवस्था में ऋतु दर्शन के साथ ही वयः संधि की परिकल्पना ने नारी-सौंदर्य की अभिवृद्धि के लिए 'शृङ्गार षोड्शी' की अवधारणा को जन्म दिया होगा।

141. वल्लभदेव की 'सुभाषितावली' के अनुसार सोलह शृंगारों के नाम हैं : (1) मंजन (2) चीर (3) हार (4) तिलक (5) अंजन (6) कुंडल (7) नासामौक्तिक (8) केशपाश रचना (9) कंचुक (10) नूपुर (11) सुगंधि (अर्थात् अंगराग) (12) कंकण (13) चरणराग (अलक्तक) (14) मेखलारशन (क्षुद्रघंटिका) (15) तांबूल (16) करदर्पण (आरसी)

—ना. प्र. पत्रिका, वर्ष 62, अंक 2-3, संवत् 2014 [डॉ. बच्चन सिंह : षोड्श शृङ्गार], पृष्ठ 170।

142. रूपगोस्वामी के आधार पर षोड्श शृङ्गार गणना : (1) स्नान (2) नासाग्रजाग्रन्मणि (नासामौक्तिका) (3) असितपट (4) सूत्रिणी (नीवीबंधयुक्ता) (5) वेणीबंधन (6) कर्णावतंस (7) शरीर के अंगों पर सुगंधित पदार्थों का मर्दन (8) पुष्पमाल धारण करना (9) हाथों में कमल लेना (10) बालों में फूल खोंसना (11) तांबूल सेवन (पान खाना) (12) चिबुक को कस्तूरी से चित्रित करना (13) काजल (14) मकरी पत्रभंगादि से शरीर को चित्रित करना (15) अलक्तक (16) तिलक।

—उज्ज्वलनीलमणि, पृष्ठ 77 (निर्णय सागर प्रेस)।

जायसी[143] और केशवदास के शृंगार प्रसाधनों[144] में भी विभिन्नता मिलती है। पुराने शृंगारिक तत्वों के परित्याग एवं नवीन उपकरणों की स्वीकृति के अतिरिक्त एक ही काल के दो व्यक्तियों में एकमत्य के अभाव के कारण प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने नितान्त स्वतन्त्र मार्ग ग्रहण किया है। इन्होंने समय और स्थान के अनुसार व्यक्ति-विशेष के व्यक्तित्व के अनुकूल अंग-वर्णन किया है। इनके विवरणों में शृंगारिक उछल कूद न होकर मानव शरीर की प्राकृतिक अवस्था, आयु के साथ-साथ चिह्नित शरीर-विज्ञान पर आधृत परिवर्तनों (Biological Changes) का बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से उल्लेख किया गया है, यथा—

कुमारी का रूप वर्णन : 'हीर रांझा' (खुल्हे मैदान में संगृहीत) कविता में प्रोफ़ेसर साहब ने शरीर के सभी अंगों का वर्णन 'हीर' के मुख से करवाया है। किन्तु यह केवल वस्तु-परिगणनात्मकता की शर्त की पूर्ति-मात्र है। कवि ने तो हीर के अगम्य एवं सतोगुणी सौंदर्य (सुहण्प) को रांझा की आंखों से झांका है—

ओधर रांझा वेखदे सार आखदा—[145]
हीर इह है, इस विच शक नहीं

---

143. जायसी-वर्णित सोलह शृङ्गार : (1) मज्जन (2) स्नान (जायसी मज्जन और स्नान में अन्तर मानते हैं (3) वस्त्र (4) पत्रावली-रचना (5) सिंदूर (6) ललाट पर तिलक (7) कुण्डल (8) अजन (9) अधरों को रगना (10) तांबूल (11) कुसुमगंध (12) कपोलों पर तिल (13) हार (14) कंचुकी (15) छुद्र घंटिका (16) पायल।
—जायसी ग्रंथावली, पृष्ठ 131-32 (ना. प्र. सभा; वाराणसी), चतुर्थ संस्करण।

144. (1) उबटन (2) स्नान (3) अमलपट्ट (4) जावक (5) वेणी गूंथना (6) माँग में सिंदूर भरना (7) ललाट में खौर लगाना (8) कपोलों में तिल बनाना (9) अंग में केसर मलना (10) मेंहदी (11) पुष्पाभूषण (12) स्वर्णाभूषण (13) मुखवास (लवंगादि भक्षण) (14) दंतमंजन (15) ताँबूल (16) कज्जल।
—सरदार कवि कृत 'कविप्रिया' की टीका, पृष्ठ 51।

145. उधर रांझे ने देखते ही कहा।

अरणडिट्ठी नूं पछारणदा, दिल दी ढो नाल ।[146]
रूह तक हीर दा खड़ा नंगा
ते बिजलीग्राँ दे फीतिग्रां दे फटे जिहे कपड़े[147]
लीरां लीराँ छज्ज छज्ज, नूर दीग्रां लमकदीग्रां ![148]
हवा झनां[149] दे मसत अलमसत झोकिग्राँ नाल,[150]
मुड़ मुड़ हिलदीग्रां उह सारीग्रां[151]
कदी कोई हिस्सा नंगा करन ज़रा-ज़रा,[152]
अद्धा दस्सरण, अद्धा कज्जरण वांग मौज दरयावां[153]
इस अगम्मी सतोगुरणी सुहरणप्प नूं ।[154]
(हीर रांझा—खुल्हे मैदान)

'खूह उत्ते' (खुल्हे मैदान) में भी कवि ने कुमारी कन्याओं के शरीर का लगभग इसी प्रकार वर्णन किया है । 'आए गए कदी 'कवीशर' नूँ पाणी बुक्कां नाल पिग्रालदीग्रां !' के द्वारा प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने कवीश्वर केशवदास की ओर संकेत करके नारी के अंगों, वस्त्रों और अलंकारों का भी थोड़ा-बहुत वर्णन कर दिया है :

चुन्नी निक्की जही[155] मेरे सिर ते
वाल मेरे सिज्जे खूह दे पाणीग्रां ![156]
वीणी मेरी विच्च कच्च दीग्राँ वंगां,[157]

---

146. दिल ही गहराई से अनदेखी को पहचानता है ।
147. फटे हुए कपड़े बिजली के अणुओं (फीतों) की तरह चमकते हैं ।
148. मानो प्रकाश के ढेरों चीथड़े लटक रहे हों ।
149. चनाब नदी ।
150. मस्ती भरे झोकों सहित ।
151. वे सभी (चीथड़े) बार बार हिलते हैं ।
152. कभी-कभी किसी शारीरिक अंग को थोड़ा-सा नंगा करते हैं ।
153. आधा प्रकट हो, आधा ढका रहे—नदी की उर्मियों के (उठने-गिरने के) समान ।
154. इसी अगम्य सतोगुणी सौंदर्य को (फटे पुराने कपड़े प्रकट करते हैं) ।
155. छोटी सी चुनरी ।
156. कुएं के जल से सिंचित मेरे बाल हैं ।
157. मेरी भुजा में कांच की चूड़ियां हैं ।

कन्नां विच[158] चाँदी सोने दे मच्छरिग्राले[159]
रल मिल रल मिल गहिरणे सारे
मेरी सिफ़त पए करदे ।[160]

(खुह उत्ते[161]—खुल्हें घुण्ड)

कवि पूर्ण सिंह को ऐसा वर्णन भाया नहीं। इसीलिए इन्होंने अगले ही पद में ग्रामीण-जीवन की शिष्टता के प्रतिकूल नागरिक जीवन की प्रदर्शनात्मक विलासिता पर व्यंग्य भी कस दिया :—

खूह उत्ते वस्सदा
गिरां वी इक शहिर ही दिस्सदा[162]
फकीर साईं लोक इत्थे मिलदे[163]
ते इन्हाँ कुड़ीग्रां दीग्रां ग्रक्खाँ बिच्च
लज्जां सुट्ट सुट्ट पाणी उह भरदे[164]
इह मेला संजोगी हुन्दा ।[165] (खुह उत्ते—खुल्हे मैदान)

बूढ़े केशवदास को—जिसने अपनी वृद्धावस्था का उल्लेख 'बाबा ! कहि कहि जाईं' के द्वारा किया था—कुमारी सौन्दर्य का वर्णन इस प्रकार करना चाहिए था :

जांगलीग्रां दी छोहर जांदी[166]
ग्रंझानी तक्कदी मैंनूं हस्सदी पिच्छे तक्क तक्क[167]

---

158. कानों में।

159. मछली के आकार का आभूषण ।

160. सभी आभूषण एकत्र होकर (मेरे गहन सौंदर्य—श्लेषार्थ) मेरी प्रशंसा करते हैं।

161. 'कुएं पर' शीर्षक कविता ।

162. कुएं पर बसा गांव भी (केशव दास) को एक नगर ही दिखाई पड़ता है ।

163. यहाँ पर भेंट होती है।

164. इन लड़कियों की आँखों में (प्रेम की) रस्सी डालकर वे (सौंदर्य रूपी) जल भरते हैं। (लाज-शर्म की मारी लड़कियां स्वभावतः गहन सौन्दर्य रूपी कुआँ हैं)।

165. संयोगवश इस प्रकार का मेल-मिलाप होता है।

166. जाँगली (जाति की) कन्या जा रही है ।

167. अबोध (बालिका) मुड़ मुड़ कर मुझे ताक-ताक कर हँस रही है।

× × ×

मोई मिट्टी कूकदी उहदे सुबक मलूम कदमां नूं चुम्मके[168]
बार दे फुल्लां नूं ख़बर उहदे काले केसां दी खुशबू दी
नीले ते लाल रंगे बसतर वाकफ़[169]
दिसदे उहदी रूह दे सहज सुहणप्प-ग्रहंकार दे

× × ×

इस मिट्टी, रेत, खाद विच किहा कमाल[170]
है इस काफर इक बुत्त दी
सुहणप्प दी शान दा
जिवें सुफ़ने विच खिड़िग्रा दिस्से
ग्रसच्च जिहा सच्च कंवल दा
फुल्ल मुखड़ा ।[171] (जांगली छोहर—खुल्ह घुण्ड)

भारतीय संस्कृति में तो कुमारी कन्या के लिए लाजवन्ती होना ग्रनिवार्य ठहराया गया है । 'खुह उत्ते' कविता में भी कवि ने 'लज्ज' शब्द का श्लेषार्थ 'रस्सी' ग्रौर 'लज्जा' को लेकर शरीर की तड़क-भड़क पर नियन्त्रण लगाने का संकेत किया है । ग्रन्यत्र तो वह ग्रपने मनोभावों को शाब्दिक जामा पहना ही देता है :—

मेरे मत्थे दे चन्न ने
इस गगन नहीग्रों चढ़ना,[172]
माए ! किसे ग्रणडिट्ठे दे नैनाँ दे गगनां दा इह चन्न नीं ।[173]
मैं मत्थे किसे दे नहीग्रों लग्गणा[174]
कज्ज दे, कज्ज दे, कज्ज ढक्क रखना[175]

---

168. हल्के फुल्के सुन्दर क़दमों को चूम कर ।
169. वस्त्र भी परिचित हैं ।
170. कैसा कमाल है ।
171. मानो स्वप्न में ग्रसत्य-सा सत्य रूपी कमल के फूल-सा मुखड़ा खिला हुग्रा दिखाई पड़ता हो ।
172. मेरे माथे का चन्द्रमा इस गगन में उदय नहीं होगा ।
173. किसी ग्रनदेखे ग्राकाश का चाँद है ।
174. मैं किसी के सामने (लज्जावश) नहीं ग्राना चाहती ।
175. मुझे पूरी तरह ढक कर पर्दे डालकर रखो ।

दिल मेरा करदा लुक्क लुक्क रहिए नूं,[176]
दिल मेरा करदा चुप्प चुप्प बहिए नूं ।[177]

(कंवारी पदमनी—खुल्हे मैदान)

कन्या के शारीरिक परिवर्तन में, जो कि रजोदर्शन से प्रकट होता है—जिसे प्रायः वयः संधि का नाम दिया जाता है—सृष्टि-विकास के चिह्न निहित हैं। इस अवस्था को पवित्रतम मानकर कवि ने बड़ी शिष्ट भाषा में इसका चित्रण किया है :—

"सच है, संसार के गृहस्थ मात्र के सम्बन्धों में पिता और पुत्री का सम्बन्ध दिव्य-प्रेम से भरा है। पिता का हृदय अपनी पुत्री के लिए कुछ ईश्वरीय हृदय से कम नहीं।...एक समय आता है जब पुत्री को अपने माता-पिता का घर छोड़कर अपने पति के घर जाना पड़ता है :

त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धि पतिवेदनम्
उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीयमामुतः। शु. यजु.

"आओ, आज हम सब मिलकर अपने पतिवेदन उस त्रिकालदर्शी सुगन्धित पुरुष का यज्ञ करें, जिससे जैसे दाना पकने पर अपने छिलके से अलग हो जाता है, वैसे ही हम इस घर के बन्धनों से छूटकर अपने पति के अटल राज को प्राप्त हों।"

प्राचीन वैदिक काल में युवती कुवाँरी लड़कियां यज्ञाग्नि की परिक्रमा करती हुईं ऊपर की प्रार्थना ईश्वर के सिंहासन तक पहुँचाया करती थीं।" (कन्यादान)

कन्या से युवती बनने की भूमिका—पतिंवरा होने के मांगलिक चिह्नों के अंकन की झांकी में भारतीय कन्या के जीवन की पवित्रता का सागर हिलोरें लेता हुआ प्रतीत होता है, यथाः—

'भाई की प्यारी, माता की राजदुलारी, पिता की गुणवती पुत्री, सखियों की अलबेली सखी के विवाह का समय समीप आया। विवाह के सुहाग के लिए बाजे बज रहे हैं...उसकी पवित्रता और उसके शरीर की वेदनावर्द्धक अनावस्था माता-पिता और भाई-बहन को चुपके-चुपके प्रेमाश्रुओं से स्नान कराती है।...विवाह के एक दो दिन पहले हाथों

---

176. मेरा दिल करता है कि छुप कर बैठूं।
177. चुपचाप बैठने के लिए।

और पाँवों में महंदी लगाने का समय आता है। (पंजाब में महंदी लगाते हैं, कहीं कहीं महावर लगाने का रिवाज है) कन्या के कमरे में दो एक छोटे छोटे बिनौल के दीपक जल रहे हैं। कुशासन पर अपनी सहेलियों सहित कन्या बैठी है। सम्बन्धीजन चमचमाते थालों में महंदी लिए आ रहे हैं। कुछ देर में प्यारे भाई की बारी आई कि वह अपनी भगिनी के हाथों में महंदी लगाए...वह नीर भरा अपनी बहन के हाथों में मेहंदी लगा रहा है।' (कन्यादान)

युवती : 'तरुणी' के सौन्दर्य के भी कुछेक चित्र पूर्ण सिंह जी की कविताओं में मिलते हैं। 'पूरन नाथ जोगी' में लूणाँ का स्वार्थी चरित्र उसके कृत्रिम सौन्दर्य-प्रसाधनों द्वारा प्रकट किया गया है :—

इन्नी, आप मुहारी, खुदगरज, मां होण दी चाह कदी उहनूं उठ नहीं सी सकदी[178]
ननां, बैनां, अँगाँ दी चतुरता सोहणाँ वांग सप्प सी[179]

× × ×

आपणे मूंह तुल न समझदी चन्न सूरज नूर वी[180]
रक्ख शीशा साहमणे पहिलाँ इह मंतर उचारदी[181]
मेरे जिहा सोहणा होर कोई नाह जग्ग ते[182]

× × ×

कदी अलस, अलस[183] ! बाहां चक्क चक्क इकांत विच अद्धी कज्जी, अद्धी नंगी,आपे नूं शीशे विच देखदी[184]

---

178. इतनी आत्म-परायण, स्वार्थी माता होने की इच्छा उसके मन में नहीं हो सकती थी ।
179. साँप के समान ।
180. वह अपने मुख के सामने सूर्य एवं चांद की ज्योति को भी तुच्छ समझती थी ।
181. यह मंत्र उच्चारण करती थी ।
182. संसार में मेरे समान अन्य कोई सुन्दर नहीं है ।
183. कभी आलस्यवश (चमक=सौन्दर्य रहित) ।
184. भुजाएं उठा उठा कर अपने शरीर की अर्द्धनग्नता और अध ढंपा रूप देखती थी ।

कदी लेट जांदी शीशे साहमरगे, इक पासे सिर रक्ख ग्रापरगी
बाहां दीग्राँ वंगां ते चूड़ीग्रां ते[185]
इक लूरगां दी लक्ख लूरगां हुंदो वन्न वन्न दे कपड़े पांदी[186]
वन्न वन्न दी तरजां बदलदी, बैठरग उठरग, खलोरग ते
चलन दीग्राँ[187]

'घर की गहल चंगी' में इन्होंने एक सुन्दर युवती का वर्णन किया है, जिसके हाथों में मेंहदी तथा भुजाग्रों में हाथी दाँत का चूड़ा है। उसने लाल रंग की ग्रोढ़नी ले रखी है। 'तड़फदी घुग्गी' में तो इन्होंने 'फ़ाख़्ता' पक्षी के गले की धारियों को 'उच्ची सरकार की गानी' (ईश्वर प्रदत्त मंगल सूत्र; कंठाभूषरग) ही बना दिया है। कवि को गोरा रंग ग्रत्यन्त प्रिय है। इसी कारण 'इक जंगली फुल' की ग्रज्ञातनामा युवती सधवा के सौन्दर्य-वर्णन में लेखक ने प्रकाश से सम्बद्ध उपमानों ग्रौर प्रतीकों की झड़ी लगा दी है। चांद, सूर्य एवं दीपक से ज्योतिष्मान इस 'प्यार के मन्दिर' में 'प्रकाश वाली रूह' (ग्रात्मा) का निवास है। लेखक ने वृद्ध पति की तरुरगी पत्नी के हृदयावेगों को विभिन्न कांतियुक्त तत्वों, पूर्णिमा एवं ईद के पर्वों के माध्यम से ग्रत्यन्त पुनीत बना डाला है। कुछेक झलकियां ग्रवलोकनीय हैं :—

नैन उसदे नशीले, कुझ[188] लाल लाल
ग्रद्ध मीटे, ग्रद्ध खुल्हे
सुफने भरे, इक ग्रकहि जोती दे बलदे दीवे
नुहार रसीली, गोरा बदन
गोरे गोरे ग्रंग कुड़ी दे
ते गोरे बदन फुल गुलाब दी भाग्र
इक बोलदी बोलदी गुलाबी भख
प्रभा-जोत, इक जंगली फुल वांग

× × ×

185. भुजबंद तथा चूड़ियों पर।
186. विभिन्न सजावटों वाले कपड़े पहनती थी।
187. ठहरते ग्रौर चलते समय उसके नए-नए रंग-ढंग होते।
188. किंचित्-सा।

ते उन्हाँ नैनां विच, झुग्गी दे अन्दर
इक पूरनमां दा चन्न चढ़ रिहा है
उच्चा उच्चा हुंदा आउंदा है।

× × ×

वाह चहिल बहिल लग्गी इकल्ली झुग्गी[189] विच
ते नैणां वाले दी आप सारी ज़िआफ़त पई हुँदी[190]

× × ×

गोरीए ! नी गोरीए !
नैणां विच आ लुकावां तैनूं [191]
दिल विच दुर आ छुपावां तैनूं[192]
मन विच वसावां आ ईद मेरीए[193]

'अकहि जोति' द्वारा अकथनीय दिव्य ज्योति की ओर इंगित किया गया है। गोरे बदन में गुलाब के फूलों की महक कविता के शीर्षक के उपयुक्त भावधारा है। 'पूरनमां' एक ओर 'पूर्णिमा' (चान्द्रमास की अंतिम तिथि) बनकर शरद पूर्णिमा, गुरु पूर्णिमा के हिन्दू-सिक्ख मांगलिक पर्वों का स्मरण करवाती है। दूसरी ओर बलोच युवक के हृदय में मुंह बोली बहन का प्रथम मिलन 'ईद का चांद' मुहावरे की अर्थवत्ता को प्रकट करके हिन्दू-सिक्ख और मुस्लिम धर्मों में एक समान चांद के महत्व का संदर्शन करवाता है। 'पूरनमां' शब्द में सभंग श्लेष के कारण उक्ति-वैचित्र्य प्रकट हो रहा है। यौवन की चरमान्विति—नारी जीवन की पूर्णता—मां बनने में है। 'सौंदर्य' के आधार स्तम्भ, माता की कोख की प्रशंसा कवि ने बड़ी भाव भीनी भाषा में की है :—

ठीक, रब्ब वी मां कुक्ख आउंदा,[194] पुत्तर रब्ब दा जग्ग विच आउंदा,

---

189. एकांत झोंपड़ी में चहल पहल हो गई।
190. आंख वालों की दावत (दृष्टव्य पदार्थ) बनती जा रही थी।
191. आँखों में तुझे छुपा लूं।
192. आओ तुम्हें दिल में छुपा लूं।
193. हे मेरी ईद (के चांद) तुम्हें मन में बसा लूं।
194. भगवान् भी माँ की कोख में आता है।

इह उह वेदी है जित्थो[195] जगत सारा, रूप रंग विच वरण
वरण निखरदा,
मां होणा धी-भैण दा इक दैवी राज है,[196]
इहो देवी, इहो कंन्यां, इहो भवानी, इहो दुरगा, इहो मां है।
(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

एक पर पुरुष पराई युवती के सौंदर्य का दर्शन या तो बहन के रूप में करे, जैसा कि 'इक जंगली फुल' में बलोच युवक के द्वारा हुआ था, अथवा उसे ईश्वरीय वरदान मानकर मन ही मन प्रजापति एवं विश्व कर्मा रूप उस अज्ञात ज्योति की प्रत्यक्षमान सुन्दरी समझे, यथा :

मैंनूं डुल्हदे नूं वेख के[197]
कुमिहारन सोहणी हस्स पई[198]
उहनूं देख मेरे उह कुमिहार याद आइआ
जिस इह हस्सदा बरतन बणाइआ[199]।
(कुमिहार ते कुमिहारन—खुल्हे मैदान)

प्रौढ़ा : ढलती उम्र की स्त्री ढलते सूरज की आभा-सी प्रतीत होती है। किन्तु जिस प्रकार प्रातःकाल में संध्या, जप, आरती द्वारा ईश्वर का स्मरण किया जाता है, उसी प्रकार सायंकाल को भी। इसी दृष्टि से कवि ने प्रभु–ज्ञान में लीन प्रौढ़ा की शोभा का दर्शन किया है, जो कि जीवन के बोझों से दबी, प्रत्याशित वैधव्य को भी ईश्वरेच्छा मानकर कर्त्तव्य-परायणता से किंचित् भी विमुख नहीं होती :

सवाणी सोहणी[200] किसी दी हसी इक आपणी
उह सरब गिआन देण वाली मटक विच मारदी
इहदे सारे वरत नेम पक्के[201] सभ गोशट कीते कच्च दीआं

---

195. जहाँ से।
196. बेटी और बहन का (विवाह द्वारा) मां बनना एक दैवी राज्य प्राप्त करने के समान है।
197. मुझे रस युक्त नेत्रों से देखते समय।
198. सुन्दर कुम्हारन हँस पड़ी।
199. प्रसन्नचित्त पात्र बनाया है।
200. सुन्दर प्रौढ़ा।
201. इसके (पारिवारिक) सारे नियम व्रत अटल हैं।

वंगां वांग सजन मार सोटी भन्नदे ।[202]

(मेरा दिल—खुल्हे घुण्ड)

बस हुणे ही रब्ब इत्थे सी
हुण ही इस कमाल सुहरणप्प नूं ग्रापणी हत्थी सी रब्ब ने
शिंगारिग्रा, हुणे गिग्रा है ।[203]

× × ×

मैं तक्किग्रा
सवाणी दे नैण सन ग्रनंद नाल बंद होए...

(सवाणी जिसनूं रब्ब पिग्रारदा[204]—खुल्हे घुण्ड)

पुरुष-सौंदर्य : 'खुल्हे मैदान' में संगृहीत छोटी कविता 'जवान पंजाब दे' एवं 'पूरननाथ जोगी' तथा 'इक जंगली फुल' शीर्षक दोनों लम्बी कविताग्रों में प्रोफ़ेसर साहब ने युवकों के सुडौल शरीर के ग्रंगोपांग की ग्रच्छी चर्चा की है । श्रृंगार-प्रसाधनों में 'दिठौने' के रूप में काला तिल बनाने, माथे की एक ग्रोर काली बिन्दी लगाने की प्रेरणा दी गई है । सजीले नौजवानों को भी नज़र लग जाती है—इस वहम को भी कवि ने एक कौतूहल जागृति का विषय बनाकर कथा में रमणीयता का समावेश किया है, यथा :—

पूरन दा प्रभाव कोई कलावान सी

× × ×

पूरन देख देख निगाहां ख़लक़ दीग्रां ना रज्ज दीग्रां[205]

× × ×

उहदा दरशन मुड़ मुड़ भुक्ख लांदी सी[206]

---

202. (बाहर की) सभी गोष्ठियां स्वामी ने कांच की चूड़ियों की तरह (प्रौढ़ा के विधवापन में) लाठियों की चोटों से तोड़ डाली हैं। (ग्रर्थात् वह घर तक सीमित रह गई है) ।

203. ग्रभी-ग्रभी इस ग्रद्‌भुत सुन्दरता को भगवान् ने ग्रपने हाथों सजाया था, वह ग्रभी-ग्रभी लुप्त हुग्रा है।

204. प्रौढ़ा स्त्री, जिसे भगवान् प्रेम करता है ।

205. संसार की ग्राँखें न भरती थीं ।

206. उसके दर्शनों के लिए बार बार लालसा (भूख) होती थी ।

× × ×

पर कोई कोई बुड्ढा आखदा रब्ब मिहर करे[207]

× × ×

इहो जिहे सुहप्पण ते चा नूं धरत ते है थां घट्ट[208]

× × ×

रब्ब मिहर करे, कोई विघन ना पवे, पूरन दे राज तिलक
लैण विच।

(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

जब रूप पानी में घुल जाने वाले नमक के ढेले के समान हो तो जन्मदात्री माता को दीठि लगना भी आश्चर्य की बात नहीं। मां को पुत्र का सौन्दर्य किस प्रकार देखना चाहिए, इस सम्बन्ध में कवि का कथन है—'जवानी इक अजिही रब्ब दा पिआर है' (यौवन मानो ईश्वरीय प्रेम है)।

वृद्ध के स्वरूप का एक सजीव चित्र 'मज़दूरी और प्रेम' शीर्षक निबन्ध में उपलब्ध होता है। सफ़ेद ऊन वाली भेड़ों का पालन करने वाला और हिमालय की सफ़ेद बर्फ़ानी पहाड़ियों में 'विष्णु के समान क्षीर सागर में लेटा हुआ बूढ़ा गड़रिया' इसका सुन्दर उदाहरण है।

'पिआर' (खुल्हे लेख) शीर्षक निबन्ध में साहित्यकार ने बताया है कि सौंदर्य के लिए रंग-रूप की कोई सीमा नहीं है। यद्यपि लैला अधिक सुन्दर नहीं थी, फिर भी मजनूं उसे चाहता था। रूह (आत्मा) का रूह को पहचान लेना ही वास्तविक सौन्दर्य दृष्टि है। इसीलिए पंजाबी में एक मुहावरा है—"भाई लैली नूं तां मजनूं दी अक्ख नाल वेखणा लोड़ोए (भाई! लैला को तो मजनूं की आंख से देखने की आवश्यकता है।")

प्रकृति सौंदर्य : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह की गद्य और पद्य दोनों प्रकार की रचनाओं में प्रकृति का विशद वर्णन हुआ है। किन्तु इन्होंने किसी पूर्व-नियोजित दर्पण में प्रकृति को झांकने की चेष्टा नहीं की। 'पंजाब दे दरिआ' के दूसरे कविता खण्ड में गर्मी, सावन और वसंत ऋतु का

---

207. एकाध बूढ़ा कहता था कि ईश्वर कृपा करे।

208. ऐसे सौन्दर्य और चाव के लिए धरती पर बहुत कम जगह है।

क्षणिक उल्लेख हुआ है। 'बारां विच वसन्त बहारां' (खुल्हे असमानी रंग) में तो कवि ने सामान्य जड़ी-बूटियों की उदीयमान नवीन सुषुमा के माध्यम से रूप की नूतन उद्भावना की है। पतझड़ का संक्षिप्त उल्लेख 'पिआरा कोलों मेरे लंघ जांदा' (खुल्हे मैदान) में हुआ है। प्रभात का चित्रण, 'प्रभात आकाश विच' (खुल्हे मैदान) और हिन्दी निबन्ध 'पवित्रता' के आरम्भ में हुआ है। 'सूरज असत' (खुल्हे असमानी रंग) में दिन ढलने और 'काली रात दा तारिआं गगन' (खुल्हे असमानी रंग) कविताओं में तारामण्डित नभोमण्डल में दृश्यमान प्रकृति में रहस्यानुभूति का परिचय दिया गया है। वस्तु-परिगणनात्मक वर्णन में 'खुल्हे मैदान' संग्रह की 'देश नूं असीस साडी गरीबां दी' तथा उद्दीपन-विभाव-विवरण में 'पूरननाथ जोगी' के अन्तर्गत इच्छरां के विरह-वृत्तांत को रखा जा सकता है। उपमा, रूपक, विरोधाभास, दृष्टांत और उत्प्रेक्षा के रूप में प्रकृति का आलंकारिक उपयोग अनेक स्थलों पर किया गया है।

प्रकृति के सौम्य चित्रों के अतिरिक्त तथाकथित विकराल रूपों—बादल की गर्जन (हिन्दी निबन्ध, पवित्रता), चंद्रग्रहण (इक जंगली फुल) और सूर्यग्रहण (पूरननाथ जोगी) के प्रसंगों को कवि ने आशावादी दृष्टि से उज्ज्वल रूप ही प्रदान किया है। हवा का मानवीकरण एक नशीले व्यक्ति के रूप में 'बसंत आई सभ लई, मेरी बसंत किथे गई' (खुल्हे मैदान) में किया गया है। पगड़ी का महत्व केवल पंजाब में ही सिक्खों द्वारा स्वीकृत नहीं, देश के अन्य भागों में भी इसकी महिमा शिरोधार्य है। स्वामी विवेकानन्द विदेशों में आयोजित धर्म सम्मेलनों में पगड़ी बांधकर गए थे। दक्षिण भारत के अनेक विद्वानों—विशेषत: भारत के दिवंगत राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन—ने भी शिरोवस्त्र को महत्ता दी है। अत: पूर्ण सिंह जी ने अपने कई वर्णनों में प्राकृतिक पदार्थों को पाग-सम्पन्न बना दिया है, यथा :—

(क) बर्फ़ का दुपट्टा बांधे हुए हिमालय इस समय तो अति सुन्दर, अति ऊंचा और अति गौरवान्वित मालूम होता है; परन्तु प्रकृति ने अगणित शताब्दियों के परिश्रम से रेत का एक-एक परमाणु समुद्र के जल में डुबो-डुबोकर और तन को अपने विचित्र हथौड़े से सुडौल कर के इस हिमालय के दर्शन कराए हैं।

(ख) लालिमा युक्त पोस्त के फ़ूल (Poppy flowers) को भी पगड़ी

पहने पुरुष के रूप में बिम्बित किया गया है :—

पोसत दे फुल ने बद्धी[209] लाल पगड़ी
लाल चीरे वाला दस्सो किस दा ?[210]
तेरे नंदलाल दी अद्धी मिटी अक्ख विच
हुसन-रज सारा अज है
तैनूं तक्क के उह हुसन दी छहिबरां ।[211]

(अद्धमीटी अक्ख भाई नंदलाल जी दी—खुल्हे घुण्ड)

'घास' के प्रति प्रोफ़ेसर साहब का विशेष आकर्षण रहा है। इन्होंने वाल्ट ह्विटमैन की 'Leaves of Grass' के कुछ अंशों का अनुवाद 'घाह दीआं पत्तीआं' (घास की पत्तियां) शीर्षक से पंजाबी में किया था। जीवन के अंतिम दिनों में जड़ांवाला में इन्होंने 'रोशा घास' का फार्म बनाया ही था। इस प्रकार हरी और सूखी घास इन्हें अत्यंत प्रिय हो गई और इन्होंने इसके माध्यम से जड़ पदार्थ को भी चेतनत्व प्रदान किया :—

(क) खुब्बल घाह ते सावल हरयावलां सड़, मनूर सभ खाको खाक होईआं। (पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

(ख) तोड़ तोड़ तिनके सारी आसा दे, माता इच्छरां दा दिल... नवीं ते सजरी मौत मरदा। (पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

(ग) निक्का जिहा सावा घाह वी आपणी निक्की निक्की जंघां ते खलोके सिर चक्क चक्क देखदा। (पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

(घ) इक कक्खां दी झुग्गी[212]
कक्ख पीले पीले नवें छवाए
ते कक्खां ते पैंदीआं झुरमुट पांदीआं
बेताब सूरज दीआं किरनां
कक्ख सभ सोने दे। (इक जंगली फुल—खुल्हे मैदान)

प्राकृतिक तत्वों का मानव पर तथा मानवीय तत्वों का प्रकृति

209. बाँधी है।
210. बताओ यह लाल पगड़ी वाला कौन है ?
211. सुन्दरता की झड़ियाँ।
212. फूस की एक झोंपड़ी।

पर आरोप करके पूर्ण सिंह जी ने दोनों में तादात्म्य-स्थापना की है। उन्होंने प्रकृति को मानव के सखा-सखी, बहन और माता के पदों से भी गौरवान्वित किया है, यथा :

(क) दिन मेरा संगी
रात मेरी सहेली
दूरों दूरों चल मैनूं मिलण आउंदे ।

(दिल मेरा खिचींदा—खुल्हे मैदान)

(ख) भैण जोगी दी सी प्रकिरती होई, रक्खड़ी बन्ही सी पूरन
दे हत्थ[213] उस आप आ ते भेत अगम्म[214] वाला दोहां
दे सीनिआं दे खुल्हे भैण भरा विच सन ।

(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

कुछेक विद्वानों ने तो प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह और श्री सुमित्रानंदन पंत के प्राकृतिक चित्रण की तुलना के समय भौतिक एवं मानवीय प्रकृति में एकात्मीयता-प्रतिष्ठापन के अवसर पर प्रोफ़ेसर साहब को इक्कीस बताया है। डॉ. प्रेम प्रकाश सिंह जी के शब्दों में—"प्रकृति जड़, अचेतन, अचर और अचल नहीं है। उसमें जीवन है, ममता है और मानव जगत् के लिए सहानुभूति है। इसी को हम प्रकृति का चेतनीकरण कह सकते हैं। पूर्ण सिंह का मानव प्रकृति के इस शोभनीय वातावरण में विचरण करता हुआ उससे एकात्मीयता ग्रहण करता है।"[216]

सौंदर्य विषयक सूक्तियां :

(i) सौंदर्य में ईश्वरीय दर्शन समष्टि भावना का प्रतीक है :

---

213. बहन स्वरूपा प्रकृति ने योगी पूर्ण की कलाई में राखी बाँधी थी।
214. अगम्य रहस्य।
215. दोनों के वक्ष में भाई-बहन का स्नेह प्रकट हुआ ।
216. (क) ईशर सिंघ अटारी : प्रो. पूरन सिंघ : जीवन ते रचनावां (श्री प्रेम भूषण गोइल : निराला अते पूरन सिंघ—तुलनात्मक अधिऐन) पृष्ठ 78 ।
(ख) प्रो. पूरन सिंघ (जनम शताबदी) साहित गोशटी (भाषा विभाग, पंजाब) दे खोज पत्तर [डॉ. प्रेम प्रकाश सिंघ : प्रो. पूरन सिंघ दे कावि विच मानव दा संकलप] पृष्ठ 22 ।

बहुं बहुं, हो हो
किहा सुहणप्प रब्बी पिआ निखरदा ।
(मुल्ल पा पा तू आपणा--खुल्हे मैदान)

(ii) सौंदर्य स्वतन्त्र वस्तु है, जिसका आकाश में भो दम घुटता है :—
सुहपण कद किसी दे खारे पैंदी, जेहड़ी गगनां विच्च
वी घुट्टदी खुल्ह पूरी न होण करके ।
(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

(iii) सौंदर्य से प्रेम करने वाली आत्मा सदैव अमर रहती है :
इउं सुहणप्प दे पिआर विच
× × ×
मोई सदा दी हर घड़ी,
सदा जीऊंदो, मरदी नांह ।
(करम करम कूकदे कौण करदा—खुल्हे घुण्ड)

रूह और सिक्ख को प्रतिष्ठा : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने ब्रह्मज्ञानियों की चर्चा के एक विवादग्रस्त विषय को 'गारगी' (खुल्हे मैदान) कविता में बड़े विचित्र ढंग से उठाया है, जैसे :—

"मेरा अनंत सुहणप्प
× × ×
मैं तां निरोल रूह हां सणदेही,[217]
× × ×
'इह मरद[218] है', 'इह तीमो'[219]
इह की कमोना हैनेरा है दुवल्ली दा[220]
× ×
तीमीं विच मैं मरद पूरा[221]

217. देह युक्त ।
218. पुरुष ।
219. स्त्री ।
220. दुविधा का अंधेरा (अज्ञान) ।
221. स्त्री में मैं पूरा मनुष्य हूँ ।

मरद विच मैं तीमी पूरी हां।"

अब प्रश्न यह है कि इस 'निरोल रूह' (शुद्ध आत्मा) का लिंग आख़िर क्या है ? कोषकारों ने व्याकरण को लक्षित करके 'रूह' के स्वरूप-निर्धारण की चेष्टा की है। 'रूह' (ruah) मूलत: हिब्रू भाषा[222] का शब्द है, यही बाद में अरबी भाषा में स्त्रीलिंग वाचक रूप में प्रचलित हुआ।[223] इसे शरीर की चेतन-सत्ता, आत्मा, जीव,[224] जान, ख़ुलासा (सार), जौहर, अमर-ए-इलाही (ईश्वरीय तत्व), 'वोह लतीफ़ भाप जो ज़िंदगी का बाइस होती है' (वह आनंददायक भाप, जो जीवन का कारण बनती है) बताया गया है[225]। इसका एक और अर्थ फ़रिश्ता जेब्रिल किया गया है तथा भूत भी।[226]

प्रोफ़ेसर साहब ने अपनी पंजाबी रचनाओं में 'रूह' शब्द का प्रयोग पुलिंग तथा स्त्रीलिंग दोनों रूपों में किया है। कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

(क) **पुलिंगवाचक**

(i) रूह मंगदा पूरन दा साया।

(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

(ii) इत्थे जान आई, रूह आया, रब्ब आइआ।

(जवान पंजाब दे—खुल्हे मैदान)

---

222. The Oxford English Dictionary Vol. X, (Reprint 1970), Page 620.
223. S. Halim : New Persian English Dictionary, Vol. I (1934) Page 966.
224. (क) भाई कान्ह सिंह : महान कोश, पृष्ठ 782।
(ख) बाबू रामचन्द्र वर्मा : प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृष्ठ 1104।
225. फ़ीरोज़-उल-लुग़ात, पृष्ठ 357।
226. Rooh—(1) A Spirit; a ghost; a soul (2) Life (3) Breath (of) Life (4) Essence; (5) An angel specially the angel Gabriel.
—S. Halim : New Persian English Dictionary, Vol. I (1934); Page 966.

(iii) जिवें चन्न दा सुभाव चानरण,[227] तिवें रूह दा
प्रकाश पिआर है। (पिआर—खुल्हे लेख)

(ख) **स्त्रीलिंगवाचक**

(i) साडा तजरबा कालख दा ढेर है कि असीं जवारीआं वांग रूह नूं हार चुके हां।[228] (पिआर—खुल्हे लेख)

(ii) सुहरप्प दे रूपां ते रंगां दी छोह[229] पाके रूह मुंद जांदी है, इहदे नैन बंद हो जांदे हन ते इह पिआर दी जोत नूँ जगा अंदर विगसन लग जांदो है। (पिआर—खुल्हें लेख)

(iii) मैं तां निखरी नुहार हां[230]...**नक्क**, कन्न, मत्था मेरा आपरणा हत्थ, पैर, जिसम सारा मैं रूह हां।

(पिआर दा सदा लुकिआ भेत[231] —खुल्हे घुण्ड)

इस प्रकार अरबो शब्द 'रूह' से सम्बद्ध 'फ़रिश्ता जेब्रिल' और 'भूत' (Ghost) वाले अर्थ के अतिरिक्त 'रूह' (आत्मा) से सम्बद्ध सभी अर्थ उपर्युक्त उदाहरणों में उपलब्ध हो जाते हैं। लेखक के रूह (आत्मा) विषयक इस बहुलिंगी और परिणामत: अलिंगी (Multi-gender and ultimately genderless) स्वरूप की स्थापना एकमात्र शब्दजाल नहीं है। भारतीय दर्शन में जीव एवं आत्मा के अस्तित्व को हृदयंगम करवाने के लिए आर्य-मनीषियों ने ही लिंगभेद की सृष्टि कर दी थो। इतना ही नहीं 'जीवात्मा' (संयुक्त शब्द) को नित्य-वस्तु, तुरीय, क्षेत्रज्ञ, पुरुष तथा चैतन्य की संज्ञा भी प्रदान की गई; उदाहरणार्थ :—

(क) कठोपनिषद् में 'आत्मा' को एक नित्य-वस्तु कहकर इसकी उपमा 'रथ स्वामी' (पुलिंगवाचक) से दी गई।[232]

(ख) माण्डुक्योपनिषद् में 'शुद्ध आत्मा' को 'तुरीय' बताया

227. जिस प्रकार चन्द्रमा का स्वभाव प्रकाश है।
228. हम जवारियों की तरह आत्मिक दृष्टि से हार चुके हैं।
229. स्पर्शित होकर।
230. मैं तो निखरा हुआ रूप हूं।
231. प्रेम का सदा लुप्त भेद।
232. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव व—कठोपनिषद्, 2/3-4 माण्डुक्यो-पनिषद्/7।

गया[233]। अवस्थावाचक शब्द होने के कारण 'तुरीय' के अधीन आत्मा (रूह) स्त्रीलिंगवाचक शब्द बन गई। किन्तु 'तुरीय आत्मा' का निर्देशक अक्षर 'ओ३म्कार' माना गया। इस प्रकार अक्षर रूप में व्याकरण की दृष्टि से आत्मा पुलिंग-रूप भी मानी जाने लगी।

(ग) श्रीमद्भगवद्गीता में इसे जीव और आत्मा दोनों ही अभिधाओं से सम्बोधित किया गया।[234] इसके अतिरिक्त पैर से लेकर मस्तक तक के प्रत्येक शारीरिक अंग को स्वाभाविक अथवा उपदेश के माध्यम से प्राप्त अनुभव से जानने वाला होने के कारण 'क्षेत्रज्ञ' भी कहा गया।[235] फलतः आत्मा (रूह) पुलिंगवाचक (क्षेत्रज्ञ) शब्द बन गया।

(घ) सांख्य दर्शन में 'आत्मा' को 'पुरुष' बताया गया है। संभवतः इसी से प्रेरित होकर वात्स्यायन ने स्पष्ट रूप में कहा कि आत्मा अनुमान का विषय है और इच्छा, द्वेष, प्रयत्न आदि इस अनुमान के लिंग हैं। यहां पर 'लिंग' का अर्थ शरीर में वर्तमान प्राण, अपान की सत्ता, निमेष, उन्मेश, जीवन कार्य आदि को कणाद ऋषि ने आत्मसिद्धि हेतु लिंग (सामूहिक साधन) बतलाया[236]। ऐसा प्रतीत होता है कि दार्शनिक जगत् के 'साधन' का वाचक 'लिंग' शब्द क्रमशः व्याकरण के क्षेत्र में 'आत्मा' के लिंग (भेद) का निर्धारक बन गया।

(ङ) आश्चर्य नहीं कि वात्स्यायन तथा कणाद के मतों को सम्मुख रखकर अद्वैत वेदान्त दर्शन के प्रमुख चिंतक शंकराचार्य ने 'जीव' और 'आत्मा' के वैयाकरणिक लिंगभेद के निराकरण हेतु संयुक्त शब्द 'जीवात्मा' की अवतारणा कर दी हो।[237] इसकी व्याख्या उन्होंने इस प्रकार की है—"अन्तःकरणावच्छिन्न चैतन्य को जीव कहते हैं। शरीर

---

233. बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृष्ठ 54।

234. (क) उद्धरेदात्मानात्मानं नात्मानमवसादयेत्।—श्रीमद्भगवद्गीता: 6/5
(ख) ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।—तत्रैव, 15/7

235. इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः।—तत्रैव, 13/1

236. बलदेव उपाध्याय : भारतीय दर्शन, पृष्ठ 713-1 4।

237. अस्ति आतमा जीवाख्यः शरीरेन्द्रिय पञ्जराध्यक्षः कर्म फल सम्बन्धी।
—शांकर भाष्य, 2/3/17।

तथा इन्द्रियः समूह के अध्यक्ष और कर्मफल के भोक्ता आत्मा को ही जीव कहते हैं।''

इन सभी झंझटों से मुक्ति पाने के लिए पूर्ण सिंह जी ने अपनी अधिकांश पंजाबी रचनाओं में 'रूह' शब्द का प्रयोग किया और इच्छानुसार उसके पुलिंग और स्त्रीलिंग रूपों को अपनाया। इसके लिए इन्होंने संस्कृत के धातु रूप 'रूह' का अर्थवत्ता को भली भांति हृदयंगम करके प्राकृतिक उपमानों के चयन में भी सहायक बनाया। संज्ञा रूप में रुह (ह्रस्व स्वरीय 'उ' युक्त) का अर्थ है—कमल, दूर्वा और वृक्ष। विशेषण रूप में यह प्रत्यय (Suffix) बनकर जन्म, उत्पत्ति (जैसे सरः+ रुह=सरोरुह अर्थात् सरोवर से उत्पन्न कमल), उगना, बीजांकुर, उत्थान आदि का अर्थबोधक बन गया।[238] बाबू रामचन्द्र वर्मा ने तो अरबी शब्द 'रूहना' और संस्कृत शब्द 'रोहण' की समानता दिखाते हुए तीन अतिरिक्त अर्थों का परिज्ञान करवाया है—(1) चढ़ना (2) उमड़ना (3) चारों ओर से घिरना।'

इसी शब्द-निरुक्ति से लाभ उठाकर पूर्ण सिंह जी ने अपने एक पंजाबी निबन्ध में 'रूह' (दीर्घ स्वरीय) का प्रयोग करके इसी विकासमय अर्थ की अभिव्यक्ति की है। यह बिम्ब-विधान द्रष्टव्य है :—

"पंजां या छिआं दरवाजिआं विच रूह इक जींदा बीज फुल्ल ते ब्रिछ वांग निकलदा है और आपणे असले वल्ल ब्रिछ वांग उच्चा हुन्दा है, वधदा है ते कुल जगत् ते उहदे पदारथ इस रूह दे विगसण लई हन, ते रूह चम्बे दी बेल वांग सब खिच्चाँ खा खा, तणुके खा खा; रस दीआँ लहिरां विच तर तर आपणे फुल्ल ते फल नूं प्रापत हुंदा है।[239]

(पिआर—खुल्हे लेख)

---

238. (क) भाई कान्ह सिंह : महान कोश, पृष्ठ 780।

(ख) बा. रामचन्द्र वर्मा : प्रामाणिक हिन्दी कोश, पृष्ठ 1102।

239. पाँच या छ द्वारों (ज्ञानेन्द्रियों) में आत्मा एक जीवित बीज-पुष्प (है) और (जो) वृक्ष की भांति अंकुरित होता है और अपने मूल की ओर वृक्ष की भाँति उन्नत होता है, बढ़ता फूलता है और सारा जगत् और उसके पदार्थ इस आत्मा के विकास के लिए हैं; और आत्मा चंपे की बेल के समान सभी आकर्षणों एवं हिचकोलों से युक्त होकर; रस की उर्मियों में डुबकी लगाकर (उतराते हुए) अपने फूल (जीवन-विकास) और फल (प्रभु-प्राप्ति)—को ग्रहण करता है।

प्रोफ़ेसर साहब ने 'इह मैं जड़ है पर चैतन्नय मय' (यह 'अहं' जड़ है किन्तु चैतन्यमय—'पारस मैं' : खुल्हे घुण्ड) में 'चैतन्य' शब्द का प्रयोग किया है। हिन्दी निबन्धों में भी आप आत्मा के 'रूह' वाले अर्थ (1) 'सुगन्धि' (फूलों का रस Essence); (2) भूत (Ghost) और 'आत्मा' एवं (3) विकासशील पेड़ को भी कहीं कहीं अभिव्यंजित करते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। क्रमशः इनके उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

(1) फूल भी हो सुगंधित, मिट्टी भी हो सुगंधित, पर मेरे नेत्र और वाणी और अन्य अंग हों दुर्गन्धित ?...महर्षि भी बोल उठे 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'...पर मुझे देख...उनके हृदय में भी प्रश्न उठे कि ब्रह्म को कैसे भूल गया। (पवित्रता)

(2) कौन-सा कलयुग मेरे मन में भूत की तरह आन समाया है कि मुझे सब कुछ भूल गया। खुश हो-होकर जुआ खेलने लग गया। अपनी आत्मा को भी हार बैठा। (पवित्रता)

(3) वीर पुरुष का दिल सबका दिल हो जाता है...वीरों के बनाने के कारखाने कायम नहीं होते। वे तो देवदार के दरख्तों की तरह जीवन के अरण्य में खुद-ब-खुद पैदा होते हैं और बिना किसी के पानी दिए, बिना किसी के दूध पिलाए, बिना किसी के हाथ लगाए तैयार होते हैं। (सच्ची वीरता)

वीर के इस वृक्षोपम आत्मिक विकास की अगली कड़ियाँ प्रो. पूर्ण सिंह की सिक्ख धर्म विषयक कृतियों में जुड़ती प्रतीत होती हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'Spirit of the Sikh' में आत्मा (रूह) के अंग्रेजी पर्यायों Soul तथा Spirit को लेकर अनेक अर्थ छटाएं दिखाने की चेष्टा की है, यथा :—

In all ages, the life of the *Spirit* descends on man as Heaven's great favour. It is truly the alighting of the 'Holy Ghost' on one's shoulder as a little white dove. Initiation into Discipleship, or Sikhhi as we call it, is inspiration. (Page 1) All poetry and scriptures of man are shadows of this sublime state of *inspiration* of man by the "Holy Ghost", the Word of God. Without this "Holy Ghost" coming and filling us, there can be no *sprouting* of the life of the *spirit* in man. (Page 28)

(2) Bhai Gurudas great poet of *spiritual* experience traces

in his "Odes to the *Spirit* of Discipleship" a continuous kinship that runs through the ages The D'sciples of all ages he says are bound in an *indissoluble spiritual comradeship.* He sings how Rani Tara leaving her bed by the side of her husband each night, used to go to the Guru's Sat Sang (Holy Communion) ..... (Page 2)

(3) "But, says Gurbani, the *soul* of man doth close after taking the seed of Nam from the Guru, and sink deep into silence, thence forward moving as the winds may move him (Page 17). We are consistent only with the impressions recorded by this light in our *soul*, and we are faithful only to the light of the Guru's Lamp burning within us. (Page 18) The man in Love hears the voice of the hidden God....The Creation gathers in Him, for he has already become a great temple where angles come to worship. The stars burn incense and all see God in Him as the *Muslims* see their 'Id Moon. He is the *Akali*, the deathless man, who walks on the waters, and sits unharmed in the fire arching over him, singing the song of the Masters. He is a pure *soul*.

नितान्त सत्य के लिए प्राचीन अंग्रेज़ी ग्रंथों में 'The Spirit of the Truth' or Verity का प्रयोग हुआ है। प्रोफ़ेसर साहब ने इस पर्याय को भी अपने ग्रन्थों में व्यहृत किया है, यथा :—

"The Guru Granth is the history of the Sikh *soul* and its translation is to come through the social reconstruction of human society as Khalsa, where man shall reign in love, and not in hatred. It is a society founded on the highest *verity*[240] of love informed by the inspiration of God-like men..."

(Guru Gobind Singh : *Reflections and Offerings*, Page, 96)

अवतार भावना की विस्तृति : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'सच्ची

---

240. That spiryte of veryte whiche is sent from God our Father through our Sauyour...to lyghten our darke ignorance (Frith Answ More Lij. b; 1533 A.D.)
—The Oxford English Dictionary (Reprint 1970), Vol. X, Page 617.

वीरता' निबन्ध में ईश्वर के अवतारों की प्रशंसा इस प्रकार की है :

'वीरता एक प्रकार का इलहाम (Inspiration) है। जब कभी इसका विकास हुआ तभी एक नया कमाल नज़र आया, एक नया जलाल पैदा हुआ; एक नई रौनक, एक नया रंग, एक नई बहार, एक नई प्रभुता संसार में छा गई...हिन्दुओं के पुराणों का वह आलंकारिक खयाल, जिससे पुराणकारों ने ईश्वरावतारों को अजीब-अजीब और भिन्न-भिन्न लिबास दिए हैं. सच्ची मालूम होती है...

वीरता के संदर्भ में लेखक की अवतार-महिमा[241] विषयक धारणा महाभारत युद्ध के परिप्रेक्ष्य में ही निर्मित हुई प्रतीत होती है। कुरुक्षेत्र के मैदान में विराजमान भगवान् कृष्ण अवतारों के विभूतिमत्व, श्रीमत्व एवं ऊर्जितत्व के लक्षणों का उल्लेख निम्नोक्त श्लोक में करते हैं :—

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

(श्रीमद्भगवद्गीता, 4/8)

'वहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन' (श्रीमद्भगवद्गीता, 4/5) में भी 'जन्मानि' और 'सम्भवामि' शब्द प्रादुर्भाव[242] के पर्याय बन जाते हैं। इस प्रकार पृथ्वी पर भगवान् के नर रूप में अवतरित होने से ही 'अवतार' तत्व की कल्पना की गई।[243] 'वाल्मीकि रामायण' में

---

241. 'अवतार: का पद विच्छेद इस प्रकार है='अव+तृ+घञ' ।
—वामन शिवराम आप्टे : संस्कृत हिन्दी कोश, पृष्ठ 108 ।

242. (क) 'रघुवंश' (3/36 तथा 5/24) में उल्लिखित—'नवावतारं कमलादिवोत्पलम्' के आधार पर 'अवतार' शब्द का अर्थ 'नवजन्म एवं असंभावित प्राकाट्य' (New & unexpected appearance) किया गया है ।
—Monier Williams : A Sanskrit English Dictionary, P. 98.

243. (क) विष्णुर्येन दशावतार गहने क्षिप्तो महासंकटे ॥
—भर्तृहरि शतक, 3/95 ।
(ख) कोऽप्येष संप्रति नव: पुरुषावतार: ॥
—उत्तर रामचरित, 5/33 ।

भगवान् राम ने भी उक्त तथ्य की पुष्टि इस प्रकार की है :—

'आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम् ।'

(वा. रा. 6/117/11)

पद्मपुराण के स्वर्गखण्ड (62/2–7) में तो अठारह पुराणों को भगवान् विष्णु के अंगोपांग में ही निर्दिष्ट किया गया है, यथा :—

पुराण का नाम	विष्णु के अंग
1. ब्रह्मपुराण	मस्तक
2. पद्म पुराण	हृदय
3. विष्णु पुराण	दाहिनी भुजा
4. शिव पुराण	बाई भुजा
5. श्रीमद्भागवतपुराण	दोनों जांघें
6. नारदीय पुराण	नाभि
7. मार्कण्डेय पुराण	दाहिना चरण
8. अग्नि पुराण	बायां चरण
9. विष्णु पुराण	दाहिना घुटना
10. ब्रह्मवैवर्त पुराण	बायां घुटना
11. लिंग पुराण	दाहिना गुल्फ़ (टखना)
12. वाराह पुराण	बायां टखना
13. स्कन्द पुराण	रोएं
14. वामन पुराण	त्वचा
15. कूर्म पुराण	पीठ
16. मत्स्य पुराण	मेदा
17. गरुड़ पुराण	मज्जा
18. ब्रह्माण्ड पुराण	अस्थियां (हड्डियां)

श्रीमद्भागवत् पुराण में सूत जी ने बताया है कि जिस प्रकार एक अक्षय जलाशय से असंख्य छोटे बड़े जल-प्रवाह निकलकर चारों ओर धावित होते हैं, उसी प्रकार सर्वशक्तिमान (सत्वनिधि) परमेश्वर से विविध अवतारों की उत्पत्ति होती है :

अवतारा ह्यसंख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।
यथाविदासिनः कुल्या सरसः स्यु सहस्रशः ॥ (1/3/26)

गुणावतार, कलावतार, युगावतार, पूर्णावतार, अंशावतार, कलावतार, आवेशावतार और पुरुषावतार इसके अवांतर भेद हैं। फिर भी श्रीमदभागवत् (1/6) तथा अन्य पुराण ग्रंथों में भगवान् के अद्भुत एवं मंगलकर चौबीस अवतारों का उल्लेख हुआ है।[244] किन्तु कालांतर में पाँचरात्र मत में अन्य चार प्रकार से अवतारों का स्मरण किया गया :—व्यूह (संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध) विभव, अन्तर्यामी तथा आर्यावतार। फिर भी दशावतार की कल्पना ही नितांत लोकप्रिय है, जिनकी प्रख्यात संज्ञा इस प्रकार है :—

वनजौ वनजौ खर्वस्त्रिरामी सकृपोऽकृप:।
अवतारा दशैवते कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ।।[245]

'महाभारत' में दशावतार में 'बुद्ध' को छोड़कर 'हंस' को अवतार मानकर संख्या पूर्ति की गई। भागवतपुराण के अनुसार 'बलराम' की दशावतार में गणना हुई है, क्योंकि कृष्ण तो स्वयं भगवान् ठहरे। वे अवतार नहीं अवतारी हैं; अंश नहीं अंशी हैं।

चतुर्युग के अनुसार विष्णु के अवतारों की कल्पना इस प्रकार की गई है :—

सत्युग—मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन।
त्रेता—परशुराम और रामचन्द्र ।
द्वापर—कृष्ण।
कलियुग—बुद्ध एवं कल्कि[246] ।

---

244. सनकादि, वाराह, नारद, नर-नारायण, कपिलमुनि, दत्तात्रेय, यज्ञ, आदिराज पृथु, मत्स्य, कूर्म, धन्वंतरि, मोहिनी, नृसिंह, वामन, हयग्रीव, हरि, परशुराम, व्यास, हंस, राम, कृष्ण, बुद्ध, कल्कि।
— कल्याण (श्री विष्णु अंक), वर्ष 47; जनवरी, 1973।

245. दो पानी वाले जीव (मत्स्य, कच्छप); दो जल थल चारी (वाराह, नृसिंह); तीन राम (परशुराम, दाशरथिराम तथा बलराम); सकृप: (बुद्ध); अकृप: (कल्कि), खर्व (वामन)।
—हिन्दी विश्वकोश, पहला खण्ड, पृष्ठ 277।

246. (क) भाई कान्ह सिंह, महान कोश, पृष्ठ 460।

(Contd. on p. 219)

वाल्मीकि रामायण, श्रीमद्भागवत् एवं अन्य पौराणिक ग्रन्थों में 'अवतार' शब्द का अर्थ 'उद्भव', 'उत्पत्ति', 'जन्म', ही स्वीकृत किया गया है : इसी अर्थवत्ता को हृदयंगम करके भक्ति काल के सगुणमार्गी एवं निर्गुणमार्गी कवियों ने 'अवतार' शब्द को इसी रूप में अपनाया, यथा :—

भक्त प्रवर तुलसीदास

(क) कलप-कलप प्रति प्रभु अवतरहीं। (रा. च. मा. 1/140/1)

(ख) निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज, लाग।
(वही, 4/26)

(ग) सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। (वही, 1/152/2)

(घ) जगदम्बा जहँ अवतरी। (वही, 1/794)

(ङ) एक कलप एहि हेतु प्रभु लीन्ह मनुज अवतारा।
(वही, 1/139)

(च) प्रभु अवतरेउ हरन महिभारा। (वही, 1/206/3)

गुरु अर्जुन देव

(क) कई कोटि आकाश ब्रह्मण्ड। कई कोटि होइ अवतार।
(सुखमनी साहिब, म. 5, 10/7/3)

(ख) संत सरनि जो जनु परै सो जनु उधरनहारु।
संत की निंदा नानका बहुरि बहुरि अवतारु॥
(वही, सलोक 13/2)

(ग) कोटि करम करै हउ धारे। स्रमु पावै सगले बिरथारे।
अनिक तपसिआ करे अहंकार। नरक सुरग फिरि फिरि
अवतार॥ (वही, 12/3/4)

(Contd. from p. 218)

(ख) कुछ पुराणों में 'यज्ञ', 'सनकादि' और 'नर' के स्थान पर 'कच्छप', 'बलराम' एवं वैवत्समनु को अवतारों में गिना गया है।

(ग) स्वयं भगवान् वासुदेव ने सृष्टि के आरंभ में धर्म की सहधर्मिणी मूर्ति से दो रूपों में अवतार धारण किया...उनका सम्पूर्ण वेष तपस्वियों का था। वे अत्यंत तेजस्वी, रूप-रंग और स्वभाव में एक-से थे। उन वर दाता तपस्वियों के नाम थे—'नर और नारायण।'
—कल्याण (श्री विष्णु अंक) वर्ष 47, जनवरी 1973, पृष्ठ 268

(घ) नाराइणु नह सिमरिग्रो मोहिउ सुग्राद बिकार ।
नानक नाम बिसारीऐ नरक सुरग ग्रवतार ।
(रागु थिती गउड़ी, म. 5, पउड़ी 13)

नवजन्म एवं चमत्कारयुक्त प्रादुर्भाव

प्रो. पूर्ण सिंह ने नए जन्म एवं महापुरुष की ग्रलौकिक लीलाग्रों के लिए प्रादुर्भाव को ही 'ग्रवतार' कहा है । पूर्ण सिंह की माता ग्रौर उसके ग्रपने जन्म, हिमालय की ग्रलौकिक विभूतियां ग्रौर गुरु गोविन्द सिंह का ग्रद्वितीय व्यक्तित्व 'ग्रवतार' शब्द की विभिन्न ग्रर्थ छटाग्रों का बोधक है, यथा :—

(i) गुरु गोविन्द सिंह

पिग्रार दा ग्रादर सतकार करन वाला 'जवाहरी'
ग्रोह "मरद दा चेला" नानकी निरंकार जोत वाला
सूरजां दा सूरज ।

× × ×

ग्रोह ग्रकथ ग्रकह ग्ररूप शबद विच ग्ररूप नित्त्य ग्रवतार
दम बदम ग्रावण वाला ।
(गुरपरब गुलज़ार सच्ची पातशाही)

(ii) हिमालय

होर कोई धरत ते थां नांह,
जिहड़ा सहारे ग्रसमान दे प्रताप नूं,
इह हमाले दीग्रां जोतां सहारन,
उसदे पूरन कला ग्रवतार नूँ ।
(हिमाले दीग्राँ वलदीग्राँ जोताँ—खुल्हे मैदान)

(iii) पूरन

मां सहिज सुभा योगी पिग्रार दी
रब्ब दे रचाए जग दी पूरणता
मां विच रब्ब ग्राप हर बाल लई नित्त्य ग्रवतार हुँदा

× × ×

ठीक रब्ब वी मां कुक्ख ग्राउंदा, पुत्तर रब्ब दा
जग्ग विच ग्राउंदा ।

(iv) माँ

अज्ज असां धिआन विच तक्की मां तेरी, लम्म डील ते
देवी कुल्ल नुहार उसदी, धुर दी राणी माँ तेरी .....
(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

इस प्रकार प्रोफ़ेसर साहब ने 'अवतार' की बहुलार्थकता में जीव और ब्रह्म को एकता का दर्शन किया है। यह अर्थ-वैचित्र्य का द्योतक है और अदृष्ट की व्याख्या भी है।

गुरु-अवतार-सुरति : श्री गुरु ग्रन्थ साहिब में 'हउमै' (अहं) की अत्यन्त भर्त्सना की गई है। फिर गुरवाणी का रसिया मनुष्य अपने मनोभावों को कैसे अभिव्यक्त करे ? इसके लिए 'सुरति' (उचित सूझ-बूझ, Consciousness) और प्रभु में अनुरति (लीनता) ही प्राणी के लिए मार्गदर्शक बन सकते हैं। दसों गुरुओं के मधुर वचन किस प्रकार ज्ञान-ज्योति का प्राकाट्य एक गुरमुख के लिए कर सकते हैं, उसका विवरण 'गुरु अवतार सुरति' कविता में श्रवणीय है :—

"सूरज जे अक्ख तूटे,
जगत मरदा, जीवन-आस टुट्टदी
गुरू-अवतार-सुरति सूरजाँ दा सूरज[247]
सहंसर नैनां बलदीआँ[248]

× × ×

सिपाही इकल्ली हंकार दस आइआ हां
फौज नाल मिलिआं उहो सुरति सिक्ख दी[249]

× × ×

फौजाँ हुक्म लैण, दे नांह सकदीआं, जरनैल सुरति दस्सदी ?[250]

---

247. गुरु के अवतार की सूझ-बूझ अनेक सूर्यों के प्रकाश रूपी ज्ञान का दाता है।
248. हज़ारों नेत्रों में ज्ञान-ज्योति का प्रसार।
249. अहंकारी व्यक्ति अकेले सिपाही के समान होता है, संगत (रूपी सेना) में मिलने वही 'अहं' भाव गुरु-शिष्य की सूझ-बूझ में परिणत हो जाता है।
250. 'सुरति' रूपी सेनानायक ही ईश्वरीय आदेश देता है।

खबत[251] सारी वाली,
हुकम सारे वाली
सुरति गुरू अवतार दी।
इह सहंसर नैणी,
सहंसर बाहुई,[252]
मिहरां नाल[253] सिख सुरति पलदी।
दिन-रात माँ-मजूरी करदी पूरी-पिआर दी
पिआर-पहिरे दिंदी
सुता[254] होवे सिक्ख, गुरू जागदा
भुल्ला होवे[255] सिक्ख, गुरू बड़ दिल उहदे
सिक्ख-प्राण कस्सदा,[256]
खिच्चदा सिक्ख नूं प्रीत-पीड़-पीड़दा[257]।

'अहंकार' से भुताए भक्त का अहंकार-नाश गुरबाणी की महिमा के श्रवण में जुटी संगत में ही होता है। वहां अहंकार का अकेलापन सामुदायिक भाव की सूझ बूझ प्रदान करता है। गुरु (गुरुबाणी के शब्द) ही शिष्य के लिए माता रूप बनकर पग-पग पर उस की चौकसी करके माया-मोह से बचाते हैं और उसे 'प्रेम की पीर' (प्रेमाभक्ति) की ओर आकृष्ट करते हैं।

शब्दावतार श्री गुरु ग्रन्थ साहिब : श्री गुरु नानक देव और उनके ज्योति स्वरूप अन्य पांच गुरु साहिबान (क्रमशः गुरु अंगद देव, गुरु अमरदास, गुरु रामदास, गुरु अर्जनदेव एवं नवम गुरु श्री तेग बहादुर) के अतिरिक्त भक्तों की वाणी के संकलन का पवित्र ग्रन्थ है—'श्री गुरु

251. उन्माद, धुन।
252. विराट-रूप (विष्णु की तरह) हज़ार नेत्रों वाला और सहस्रबाहु।
253. कृपापूर्वक।
254. शयन, अज्ञान-निद्रा।
255. पथभ्रमित।
256. गुरु उसके हृदय में पहुंचकर सिक्ख (शिष्य) के प्राणों को नियन्त्रित करता है।
257. प्रेम की पीर के लिए प्रेरित करना।

ग्रन्थ साहिब।' शब्द-ब्रह्म के माहात्म्य के संदर्शक इसी पवित्र वाणी-संग्रह को कवि ने 'शब्दावतार' की संज्ञा से विभूषित किया है :—

'शबद-अवतार' गुरु ग्रन्थ मैं हाँ,
रब्ब दी याद बस्स माँ मेरी,[258]
याद करो, गुरू तुसां विच है
करतार दी करतारता दी छोह दा रस-रूप याद है[259]

× × ×

रस नाम दा खुनक-पिआर, बस्स इहो जी जीण,
इहो सुख इहो सच्च है।
होर कोई नाम नांह, बस इक इह नाम है,
इह करतार है अकाल है
अकाल उसतत इक निरोल सच है

× × ×

सतिनाम उसनूं गुरू-अवतार आखदा
एका पहिला लाउँदा इक है
पर गुरू ग्रन्थ सारा इस इक रंग दी नानता[260]
पिआर वेख, पिआर पी, पिआर छुह
पिआर नूं मिल, पिआर भोग, पिआर जोग
पिआर गीत, पिआर निरतय, पिआर रस
बस पिआर दी नानता।

[फ़लसफ़ा ते आरट (उनर)—खुल्हे घुण्ड]

श्री गुरु ग्रन्थ साहिब का मूलमन्त्र है—"१ ओंकार सतिनाम करता पुरखु निरभउ निर्वैर अकाल मूरति अजूनी सैभं।" इस सच्चे नाम में ही प्रभु के सभी नाम मिश्रित हैं। श्री गुरु ग्रंथ साहिब के इस मूलमन्त्र में '१' (एक) का चिह्न पारब्रह्म के अद्वैत रूप को भासित करता है। इसी

---

258. एकमात्र भगवान् की याद ही मेरी माँ (जन्मदात्री) है।

259. ईश्वर की सृजनात्मक शक्ति (Creative Power) के स्पर्श का रस रूप स्मरण है।

260. एक जैसे भावों से सम्पन्न छः गुरुओं एवं भक्तजनों की विविध वाणियों का संग्रह।

प्रकार 'आदि ग्रंथ' की प्रत्येक तुक में 'नानक' शब्द ही सभी गुरुओं में 'एक जाति सर्व व्यापक' की सूचना देता है। अतएव 'शब्द' ब्रह्म के प्रतिपादक श्री गुरु ग्रन्थ साहिब 'अवतार' रूप हैं। ईश्वर-स्मरण ही वाणी निसृत (वाणी-जन्मा) शब्द है। प्रस्तुत पवित्र ग्रन्थ में मानव का जीवनदायक 'पिआर' (प्रेम) तत्व सर्वत्र विद्यमान है।

कवि-अवतार रूप : पौराणिक ग्रन्थों में 'विष्णु' के 'कलावतार' की कल्पना से ही अनुप्राणित होकर प्रो. पूर्ण सिंह ने कवि को भी अवतार के आसन पर आसीन करने का साहस किया है :—

"The Poet reveals to our souls his own self-realization and in an instant we undergo the growth of centuries. The power of giving peace to the life-beaten man we see only in our poet; he is as the banyan tree which affords shade to the sun-beaten way farer. The poet is not one of us, he is the messanger of God, His Prophet; he is God in human clay. In Hindu phraseology he is an Avtara. The Poet has the gift of gods whom we on earth know not, his powers are not acquired, but are as natural to him as light is to the sun.

The Poet (or as we call him, the Guru, the Master, the Buddha, the Christ) fills the hungry soul, and enriches the poor. Desire dies and we are satiated and nourished by his touch. "None may be idle where the king-poet has pitched his tent. The musician, the poem-maker, the dancer, the singer are mere rank and file."

(*The Spirit of Oriental Poetry*, P. 2-3)

गुरु; प्रभु, बुद्ध, ईसा की अभिधाओं से अभिषिक्त 'कवि' रूप विष्णु के अन्य अवतार संगीतज्ञ, गायक, नर्तक और काव्य-रचयिता हैं। स्वानुभूतियों से सम्पन्न 'कर्ता' रूप बनकर कलाकृति का निर्माता, अपनी छत्रच्छाया में जीव-जगत् के लिए शांति का छाता ताने उपस्थित होता हैं। उपर्युक्त कवि में विद्यमान अवतार (कर्ता) के लक्षण बहुत-कुछ निम्नोक्त वाक्यों में निहित हैं :—

'कवि को देखिए, अपनी कविता के रस—पान से मत्त होकर वह अन्तःकरण से भी परे आध्यात्मिक नभो-मण्डल के बादलों में विचरण करता है...वहां ब्रह्मरस को पान करता है और अचानक बैठे बिठाए

श्रावण-भादों के मेघ की तरह संसार पर कविता की वर्षा करता है। हमारी आंखें कुछ ऐसी ही हैं। जिस प्रकार वे इस संसार के कर्ता को नहीं देख सकतीं उसी प्रकार आध्यात्मिक देश के बादल और धुन्ध में सोए हुए कलाधार पुरुष को नहीं देख सकतीं। (कन्यादान)

पूर्णावतार योगीराज भगवान् कृष्ण : पौराणिक शास्त्रों के अनुसार भगवान् विष्णु के जिन अवतारों में दिव्यता का पूर्ण प्रकटीकरण होता है, उसे 'पूर्णावतार' कहा जाता है। जिसमें इस अलौकिकता की आंशिक अभिव्यक्ति होती है, उसे 'अंशावतार' अथवा 'कलावतार' की उपाधि से विभूषित किया जाता है। श्रीमद्भागवत् पुराण के अनुसार श्री कृष्ण भगवान् विष्णु के 'पूर्णावतार' थे। 'पूर्णावतार' को सोलह कला-संपन्न बताया जाता है। 'ब्रह्मवैवर्त पुराण' में वर्णित उक्त सोलह कलाएं अवतार के गुणमात्र हैं, यथा—ज्ञान, ध्यान, शुभकर्म हठ, संयम, धर्म, दान, विद्या, भजन, सुप्रेम, यति, अध्यात्म, दया, नियम, चातुर्य और शुद्ध-बुद्धि।

षोड्श कला संभूत भगवान् कृष्ण की बाल लीलाओं और ब्रह्म विद्या की संदेशवाहिका भगवद्गीता के प्रयणन की ख्याति चतुर्दिक फैली हुई थी। प्रो. पूर्ण सिंह के वेदांती गुरु स्वामी रामतीर्थ भगवान् कृष्ण के परमोपासक थे। इनके हृदय में अपने इष्टदेव कृष्ण के दर्शन की लालसा जागृत होने पर ये रात-रात भर रोते रहते। भक्ति की चरम सीमा होते ही स्वामी जी कीटभृङ्गवत् अद्वैत स्तर पर उतर आते।

इन्हीं दिनों भारत में ईसाई धर्म का प्रचार खूब ज़ोरों पर था। हिन्दुओं और ईसाइयों के शास्त्रार्थ होते थे, धर्म प्रचार में एक-दूसरे के महापुरुषों की तुच्छता दिखाने की चेष्टा भी की जाती थी। ब्रह्मतत्ववेत्ता कृष्ण के नामकरण में 'क्राइस्ट' (Christ=ईसा) से ध्वनि-साम्य सिद्ध करके ईसाई विद्वानों ने अनेक अटकलें लगाना आरम्भ कर दिया। ग्रियर्सन, केनेडी और वेबर प्रभृति पाश्चात्य चिंतकों ने गोपाल कृष्ण की बाल-लीलाओं को क्राइस्ट के बाल-चरित का अनुकरण-मात्र बताया। मैथ्यू के 'न्यू टेस्टामेंट' में भी कंस-जैसे क्रूर राजा के विवरण से भगवान् कृष्ण के मामा से साम्य बैठाने की चेष्टाएं वाद-विवाद में की जातीं। कृष्ण-लीलाओं में भक्त के लिए 'प्रसाद' की प्राप्ति परम ध्येय

है। इसे पाश्चात्य विद्वानों ने 'प्रेम भोज' (Love Feast) की प्लेट में सजाकर कृष्ण भक्तों को चखाने की चेष्टा की। सांप्रदायिकता से सनी इस छेड़खानी को प्रोफ़ेसर साहब ने अपने बचपन के मसख़रेपन की पृष्ठभूमि बनाकर समन्वयवाद का परिचय दिया है, यथा :—

A carvan of woman going down the river banks to fill their empty pitchers and coming home with their pitchers full was a sight, that I can never forget...Life at its best is caught in their red earthern pitches that moved on like a river.

Was Goethe thinking of this attitude of non-attached look at life as it passes ?

Wonderful indeed is it to contemplate that both Christ and Krishna, the Prophets of Passion sat watching them at the walls of Palestine or on the banks of Jamuna, and they came to them giving up their tasks of drawing of waters from the wells or the river, and forgetting themselves in the contemplation of the Divine before them in flesh.

(*On Paths of Life*, P. 34-35)

भगवान् कृष्ण और ईसा मसीह के भक्तों द्वारा निर्मित अपने-अपने आराध्यदेव से सम्बद्ध घटनाओं की नाप–जोख करने के लिए लेखक ने गेटे जैसे मनीषी को भाँति 'तटस्थ दृष्टि' (non-attached-look) अपनाने का संकेत ही पर्याप्त समझा। 'एक चुप सौ को हरावे' का नुस्खा पल्ले बांध लेने में ही पूर्ण सिंह जी ने अपनी चतुराई समझी है।

गीता और गुरमति : श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण ने 'अहं ब्रह्मऽस्मि' आदि तुकों के द्वारा ब्रह्म का स्वरूप समझाने की चेष्टा की है। किन्तु गुरमति में तत्त्वमसि का स्वर निनादित हुआ है। इस पार्थक्य को दर्शाने के लिए प्रोफ़ेसर साहब ने एक गहन दार्शनिक होने के साथ साथ उपदेशक और उपदेष्टा का शब्दचित्र प्रस्तुत करके अपनी काव्य-क्षमता का उत्तम साक्ष्य प्रदान किया है, यथा.—

(क) गीता विच आवाज़ दे क्रिशन महाराज पछोताइआ,
उपनिखदां दी ब्रहम—मैं कौण समझे ?

['सुरति ते हंकार (Consciousness and Ego)'—खुल्हे घुण्ड]

(ख) गीता बोली मैं—
हैवान हंकार तलूं बोलिग्रा मैं ![261]
कौरण पछाणे क्रिशन—मैं होर, इह उह नहीं है,[262]
'वाज इक काला—ग्रक्खर इक
धूणी उहो गूंजदी,[263]
ते काल—ग्रसिग्रा मन बोलदा ठीक इको है,
ग्ररजन दी ग्रसचरजता भगती,
ग्रज—जग रही नहीं है,[264]
ग्रसली गल्ल उह विशाल मूरत सारी इक निक्के साधे
काले क्रिशन विच बस उहो सच्च सारा बाकी फ़लसफ़ा,
ते उहो कूड़ दिस्सदा !
जादू सिर चढ़ बोलदा ! (गुरू ग्रवतार सुरति)

कवि ने ग्रभिमान से भरपूर गीता के ग्रनुयायियों पर काफ़ी करारी फब्ती कसी है। वे भगवान् कृष्ण के छोटे से शरीर में विराट् रूप का दर्शन करने में ग्रसमर्थ रहते हैं। उनमें ग्रर्जुन-जैसी ग्रलौकिक भक्ति कहां है ? 'मैं' (ग्रहं) शब्द में एक ही ध्वनि होने के कारण परम्परावादी भक्तों ने केवल काले ग्रक्षर को ही पहचानकर ग्रपने ग्रज्ञान का परिचय दिया, वे भगवान् कृष्ण द्वारा प्रयुक्त 'मैं' का 'सामान्य-मैं' से भेद करने में ग्रसमर्थ रहे हैं।(कौरण पछाणे क्रिशन—मैं होर, इह उह नहीं।)

उपनिषदों से निसृत ब्रह्मविद्या को श्रीमद्भगवद्गीता में दर्शन का रूप दे देना उचित नहीं था :—

उपनिखदां दी ब्रहम-विद्दिग्रा नूं प्रणाम साडा,

---

261. सामान्य बुद्धि के लोगों ने गीता के 'ग्रहं' का साधारण ग्रर्थ 'मैं' (पाशविक वृत्ति) ही लिया है।
262. भगवान् कृष्ण द्वारा उल्लिखित मैं (ग्रहं) को उन्होंने उत्तमवाचक पद के ग्रर्थ में नहीं लिया; यह सामान्य ग्रर्थ गीता के ग्राधार पर स्वार्थियों को नहीं निकालना चाहिए था।
263. दोनों ग्रर्थों का मूल एक ही शब्द-ध्वनि युक्त है।
264. ग्रफ़सोस ! कृष्ण जी के गूढ़ भावों को समझने वाले ग्रर्जुन-जैसी ग्रलौकिक भक्ति ग्राज दृष्टिगत नहीं होती।

ब्रह्म सत्ता सारी
गुरू-अवतार दी सुरति मूरती
× × ×
किसे अकहि खेड़े, आवेश दा भाग सारा आगमन है।
उसनूं फलसफा बणाउणा गीता दी भुल्ल है,
इह भुल्ल आखर हुण जा वज्जदी बुड्ढे उपनिखद दे सिर' ते,
पुरख सूकत दा अगम्मी गीत हाये ! किंज गूँजदा
मनुक्ख दा भरिआ दिल सिफ़त सलाह करतार विच फटदा।
हां ! रब्ब आप बोलदा,
ब्रहम गिआन नूं प्रणाम है ! (गुरू अवतार सुरति)

भगवान् कृष्ण की लीलाएं : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह गोपाल कृष्ण की बाँसुरी की मधुर तान पर मुग्ध हैं। गुरु गोविन्द सिंह के दरबारी कवि भाई नन्दलाल से सम्बद्ध कविता में इन्होंने 'नन्दलाल' में 'कृष्ण' का साम्य देखकर स्वर और नृत्य का समा बाँध दिया। रासलीला के समय कृष्ण के बांसुरी वादन के दृश्य में नाद-सौंदर्य भी श्रवणीय है :—

इक इक तीवीं दीआं लक्ख लक्ख तोवीआं[265] ! लक्खां बाहां,
लक्खां हत्थां, लक्खां जंघां, लक्खां सिरां वाले नच्चदे[266]
मरद ते तीवीआँ अंग सारे लहिरां हो,
मिलवीआं मिलवीआं[267]
पुलाड़ सारा भरिआ
हासे टुरदे हस्सदे मिलदे लक्खां लक्खां
सभ हासे मिलवें मिलवें,[268] खड़कदे, खड़कदे
दिस्से कुझ नाँह पर निरतय राग होंवदा,
खड़कदे साज सारे वज्जदे
शरीर लक्खाँ तुले तेरी बांसरी दी अवाज़' ते
कड़े, कस्से, लिशकन,[269] नच्चदे, नच्चदे वाँग वजदीआँ

265. एक स्त्री से लाखों स्त्रियां।
266. नाचते हैं।
267. सारे अंग लहरों की भाँति मिलकर (जल प्रवाह की तरह)।
268. सभी का हास्य मिलता-जुलता है।
269. चमकते हैं।

तारां दे सितारां दे[270]

सभ कम्बदे सूरज दी खुशी—फुलीग्रां सवेर दीग्राँ किरनां वाँग,[271]
सहंसर झणकारां, लक्खाँ झणकारां, छाण, छाण,
ताण, ताण

झमां, झम्म झम, थमां थम थम्म,

थर थर कम्बे ग्रसमान सारा नाच नाल...

('ग्रद्धी मीटी ग्रक्ख भाई नन्दलाल जी दी'—खुल्हे घुण्ड)

भगवान् कृष्ण के लीलामय स्वरूप का वर्णन करने के लिए प्रोफ़ेसर साहब ने जयदेव के 'गीत गोविन्द' का ग्रनुवाद ग्रंग्रेज़ी में करके ग्रपनी साध पूरी कर ली। इसके मंगलाचरण के दशावतार-वर्णन में भगवान् कृष्ण से सम्बद्ध पद्यांश में ग्रनुवादक का शब्द-चयन प्रशंसनीय है :—

Thou, that un-venomed the pride-venom of the king of
serpents, the Kali-serpent,

Thou, whose beauty's joy conquers everything,

Thou, the Lotus of the Race of Yadvas, the Sun !

Hail, hail to Thee, O Beloved Hari !

('The Gita Govind'—*The Spirit of Oriental Poetry*, P. 172)

विराट्त्व : भगवान् कृष्ण के गोपालक—कृषक रूप की कल्पना श्री सुमित्रानन्दन पन्त जैसे हिन्दी कवियों ने 'ग्राम गीत' कविता में की है। प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'खुल्हे मैदान' में निबद्ध 'क्रिशन जी' कविता में यमुना किनारे कदम्ब के नीचे कृष्ण के बांसुरी वादन के साथ ही सगुण ग्रौर निर्गुण ब्रह्म की एकता का दृश्य देखा। 'मज़दूरी ग्रौर प्रेम' निबन्ध में...'गुरु नानक ग्रौर भगवान् श्रीकृष्ण का मूक पशुग्रों को लाठी लेकर हाँकना' शब्दों द्वारा जिस किसान रूप की कल्पना की गई थी, उसे ही पंजाबी निबन्ध 'किरत' में 'क्रिसान' के कार्यों में ईश्वरास्था का दर्शन करवाकर ध्वनि-साम्य के ग्राधार पर 'क्रिसान' ग्रौर 'क्रिशन' (कृष्ण) की एकरूपता द्योतित कर दिखाई है। इसकी पृष्ठभूमि में गीता

270. सितार की तारें मानो झंकृत हो उठती हैं।

271. प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान प्रफुल्लित।

में भगवान् कृष्ण के लिए वर्णित 'क्षेत्रज्ञ' शब्द ज्योतिर्मान हो रहा है।

'पवित्रता' निबन्ध में भगवान् कृष्ण के चित्रकार की तूलिका की विचित्रता में छिपे पूर्णावतार के गुप्त रहस्य की एक ही कुंजी है—'पवित्रता' पर टिकी हुई हृदय की शांति, जिस तक युधिष्ठिर और अन्य पाण्डव पहुँचने में असमर्थ रहे, यथा :—

'वाह रे चित्रकार ! शाबाश है तेरी कला को, जिसने इस चित्र में पता नहीं किस तरह विराट् स्वरूप जगत् दर्शाया है। और यह भी किसी की आंख में, परन्तु किस कला से दर्शाया है, न तो आँख नज़र आती है, और न आंख वाले के कहीं दर्शन होते हैं।...मुझे कृष्ण महाराज का खयाल आया।...इस अद्भुत चित्र के अन्दर ही अन्दर गुप्त प्रकार से लिखा है 'पवित्रता'...भला ऐसे चित्र को देखना और उसके दर्शन की शर्त को न बजा लाना ऐसा ही पाप है कि मृत्यु हो जाए ! (पवित्रता)

योग का जीवनोपयोगी निर्वचन एवं निरुक्ति : धातुपाठ के अनुसार 'योग' पद की निष्पत्ति 'युजिर् योगे' (7/7) तथा 'युज समाधौ' (6/64) दो रूपों में मानी गई है।[272] वाचस्पति मिश्र एवं विज्ञानभिक्षु ने स्पष्ट किया है कि पातंजल योगदर्शन का 'योग' पद 'युज समाधौ' से निष्पन्न है। भाष्यकार व्यास (व्यासभाष्य) के मतानुसार 'योग' एवं 'समाधि' पर्यायवाची शब्द हैं। भोजदेव,[273] हरिहरानन्द आरण्य[274] तथा सदाशिवेन्द्र[275] सदृश व्याख्याकारों ने व्यास की धारणा की पुष्टि की है। पतंजलि ऋषि ने अपने 'योगसूत्र' में 'योग' का लक्षण बताया है—योगश्चित्त-

---

272. (क) 'युज समाधौ', इत्यास्मद्व्युत्पन्नः समाध्यर्थो न तु 'युजिर योगे' इत्यास्मात्संयोगार्थ इत्यर्थः। —तत्ववैशारदी, पृष्ठ 3

(ख) युज् समाधावित्यनुशासनतः प्रसिद्धो योगः। —योगवार्तिक, पृष्ठ 6

273. 'युज् समाधौ' अनुशिष्यते व्याख्यायते। —भोजदेववृत्ति, पृष्ठ 3

274. न च संयोगाद्यर्थकोऽयं योगः 'युज् समाधौ' इति शाब्दिकाः। —भास्वती, पृष्ठ 6

275. 'युज् समाधौ' इति धातोर्योगः समाधि। —योग सुधाकर, पृष्ठ 3

वृत्तिनिरोध : (1/2)—अर्थात् चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा जाता है। वाचस्पति मिश्र ने 'चित्त' का तात्पर्य 'अन्तःकरण बुद्धि' लिया है।[276] विज्ञानभिक्षु ने वृत्तिभेद के आधार पर 'अन्तःकरण बुद्धि' या चित्त के चार विभाग स्वीकार किए हैं ।[277] डॉ. पवन कुमारी गुप्ता की अवधारणा है कि ये चतुर्विध वृत्तियां इस प्रकार हैं—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार[278] ।

व्यावहारिक अर्थवत्ता : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने पातंजल योग तथा अन्य दार्शनिक ग्रन्थों में वर्णित 'योग' के मूल आशय 'चित्त-निरोध' का तिरस्कार करने और लिप्सा-वृद्धि में लीन योगियों पर ख़ूब फब्तियां कसी हैं, यथा :

"पतंजलि जी महाराज ने अपना ग्रंथ मनुष्यों के लिए लिखा था। पशु तो उसका पाठ भी नहीं कर सकते। पतंजलि महाराज की कृपा कटाक्ष से आपको कुछ बुद्धि उत्पन्न हो गई थी।...यह महाग्रंथ काठ के पुतलों के लिए कदापि नहीं लिखा गया, जिनके हाथ में माला आई और सहस्रों वर्ष व्यतीत हुए ।...कुटिलता, नीचता कपटता अन्दर भरी हुई है और माला मनकों के ऊपर से हज़ारों बार चली जाती है और इतनी सदियां हुईं अब तक चली ही जा रही है।

× × ×

भारत निवासियों ने एक प्रकार की पुड़िया और गोली बनाई है जिसको खाते ही चन्द्रमा चढ़ जाता है, ज्ञान हो जाता है...हृषीकेश में वह अनमूल्य गोली बिकती है, और सिर्फ़ दो चपाती के दाम, जिस गोली के खाने से सारे जन्म कट जाते है, सब पाश टूट जाते हैं और जीवनमुक्त हो सारे संसार को अपनी उंगलियों पर नचा सकोगे, बिना नेत्र के, बिना बुद्धि के, बिना विद्या के, बिना हृदय के बुद्ध वाली निर्वाण, पतंजलि वाली कैवल्य, वैशेषिक वाली विशेष, वेदान्त वाली विदेहमुक्ति

---

276. चित्तशब्देनांतःकरणं बुद्धिमुपलक्ष्यति —तत्व वैशारदी, पृष्ठ 3

277. चित्तमन्तःकरण सामान्यमेकस्यैवांतःकरणस्य वृत्तिभेदमात्रेण चतुर्धाऽत्र दर्शने विभागात । —योगवार्तिक, पृष्ठ 12

278. डॉ. पवन कुमारी गुप्त : पातंजल योगसूत्र—एक समालोचनात्मक अध्ययन, पृष्ठ 2 ।

मिलती है। बेचने वाला देखो वो जा रहे हैं, तीन चार पुस्तकें हाथ में हैं और तीन-चार पुस्तकें बगल में, आपको इन दो पुस्तकों को पढ़ने से ही ब्रह्म की प्राप्ति हो गई।" (पवित्रता)

पुस्तकों के सीमित ज्ञान को शास्त्रार्थ में तर्क एवं प्रमाण का साधन मानकर इन योगियों ने केवल वासना-तृप्ति को ही अपने जीवन का साध्य मान लिया। अर्थलोलुप साधुओं की कुटियाओं का निर्माण कलकत्ते के सेठों और पेशावर के ठेकेदारों की चोरबाज़ारी की रक़म से होता है। शोषण की यह चक्की ख़ूब चल रही है। मार्कण्डेय जैसे त्यागी महात्मा के स्थान पर महल-माड़ी की चिंता करने वाले आधुनिक साधुओं द्वारा अपनाई गई बगुला-भक्तों वाली 'घूसख़ोरी' रूपी शोषणवृत्ति से कैसे मुक्ति पाई जा सकती है, देखिए :—

"वह किसी अंगरेज़ के दफ्तर के हैडक्लर्क जा रहे हैं। कलम जब चलती है दूसरी का गला काटती है। लिखते तो ठीक मेलट्रेन की तरह हैं, क्यों न हो योग का बल हाथ में है।" (पवित्रता)

योगवासिष्ठ आदि ग्रन्थों में मनुष्य के मन में विरक्ति उत्पन्न करने के लिए स्त्री के अंग-प्रत्यंग की चर्चा करके उनमें विद्यमान घिनौने तत्वों की विस्तृत व्याख्या की गई है। इन्हीं की ओर इंगित करते हुए पूर्ण सिंह जी ने लिखा है :—

'बड़े बड़े वैराग्य के ग्रंथ खोल, गेरु रंगे हम अपनी माता, बहिन और कन्याओं को नग्न कर करके उनके हड्डी माँस की नस-नस को गिन गिन कर तिरस्कार करते हैं...ज़रा अपने शरीर को देखो, ज़रा बुद्ध के शरीर को देखो, ज़रा शंकर भगवान् के रूप को देखो, ज़रा बड़े बड़े महात्माओं के शरीर को देखो, यदि ये शरीर पवित्र है, तब उनकी माता का शरीर किस लिए अपवित्र मान लिया। यदि इन सब को पीताम्बर पहने पूजते हो तब वैराग्य में मस्त लोगो! भला इनकी माताओं को इनकी बहनों को इनकी कन्याओं को क्यों नग्न कर रहे हो'
(पवित्रता)

योग की इस विचारधारा में बहकर भारतीय आश्रम व्यवस्था ही बिगड़ गई। अतएव लेखक को ब्रह्मचर्य का सही स्वरूप समझाने के लिए अपनी लेखनी उठानी ही पड़ी, यथा :—

'आश्रमबद्ध ब्रह्मचर्य के विचार ने सामाजिक जीवन में न तो कभी पवित्रता उपस्थित की है और न कभी उपस्थित कर सकता है, यह उत्क्रमित होगा और अपवित्रता उत्पन्न करेगा। ऐसी आश्रमबद्ध विचारों पर आधारित शैक्षणिक या धार्मिक संस्थाएं भी इस प्रकार गार्हस्थ्य जीवन में कभी पवित्रता न प्रस्तुत करेंगी...कोई ही समाज हो मन्दिर हो, सभा हो, सत्संग हो जहाँ इस देश में ब्रह्मचर्य-पालन के ऊपर उत्तम से उत्तम व्याख्यान और उपदेश न होते हों, परन्तु अपने दैनिक जीवन को देखो। कल यदि सात फुट लम्बे आदमी थे तब आज 6 फीट रह गए। कल के कॉलिजों में तो 5 फ़ीट के ही रह गए। क्या उलटा परिणाम है। न हृदय में बल, न हृदय में शक्ति, न मन में साहस, न उच्च विचार, न पवित्र जीवन, न दया, न धर्म, न धन, न माल। इंग्लैंड (England) में जहां इस पर कभी इतना ज़ोर न दिया गया, वहां के आजकल के लड़के हम से अधिक बलवान, तेजवान्, ज्ञानवान्, विद्वान, सम्पत्तिमान, बुद्धिमान हैं। हमारी कन्याएं दुर्बल, पीले रंग की, जवानी में भी बुड्ढी के समान और उस देश की माताएं और कन्याएं 6-6 फुट ऊंची और बल और तेज की हँसी लिए हुए... (पवित्रता)

'संन्यास' का अर्थ तो 'सम्+न्यास'=समुचित विश्वास (Proper Trust) था, किन्तु पोंगापंथी साधुओं के कारण भारतीय आश्रम व्यवस्था का 'संन्यास' एकमात्र प्रदर्शनवाद का परिचायक बन कर रह गया। एतदर्थ निबन्धकार का कटाक्ष अवलोकनीय है :—

"ए शंकर भगवान् !...अपने अपवित्र देशनिवासियों के विरुद्ध अपील लेकर आया हूँ, आपके जाने के बाद (सं) न्यासाश्रम का नाश हो गया...आपने तो इन लोगों की खातिर अपने एकांत के सुख को जो, आचार्य गौड़पाद ने भी न छोड़ा, त्यागकर इनके कल्याण के लिए दिग्विजय किया। काश्मीर से रामेश्वर तक आपने ब्रह्मकांति का गायन किया। परन्तु आपके जाने के बाद इस देश में गंगोत्तरी, हृषिकेश, केदारनाथ, बद्रीनाथ को भी अपवित्र कर दिया। गेरू रंग को तो पवित्र धरा पर ही रहने दिया और न आपके शरीर पर। अब तो गेरूवा रंग मखमल के तकियों पर, चमड़े की बग्घियों पर, जागीरों और मठों के एकत्र किए हुए खजानों पर रखा है। दासत्व, कमज़ोरी, कमीनापन,

कपट का पर्दा हो रहा है।" (पवित्रता)

जगत् गुरु कहलाने वाले भारत में ही परस्पर विरोधी प्रवृत्तियों के परिचालन के कारण किसी भी सुधी जन को वितृष्णा होना स्वाभाविक ही है। भारत से बाहर भी दर्शन (Philosophy) के विरुद्ध आवाज़ उठी थी।[279] प्रोफ़ेसर साहब ने भी दर्शन की व्यवहार शून्यता के कारण एक उकताहट-सी प्रकट कर दी, यथा :—

(क) फ़लसफ़ा जिन्नां आरट रूप है,[280]
उह कुझ इंज है, जिवें अनपढ़ जिमींदार ज़िमीं वाहुँदा
ते दाणे पांदा आपणे घर, बिनां जाणे गल्लां बाहलीआं[281]

(ख) दिल ख़ाली सक्खणा सक्खणेपन काले दा धिआन, आकाश

---

279. ये लोग अपनी दार्शनिक चिंता में गड़े रहने के कारण प्रायः इतने समाज विमुख होते हैं कि वे व्यावहारिक दुनिया के विरुद्ध निरन्तर हड़ताल की स्थिति में रहते हैं। इसीलिए हम प्रायः देखते हैं कि दार्शनिक और उनकी अनन्य चिंता का विषय दर्शन अनादिकाल से दुनिया के उपहास के ही विषय रहे हैं। दार्शनिकों को व्यवहार-शून्य और दर्शन को 'घटपट की खटपट' कहा गया है।...दार्शनिक होना व्यवहार–शून्यता का अपर पर्याय-सा हो गया है।

यह बीसवीं सदी वैज्ञानिक उन्नति का युग है। इस अवकाश–युग में मानव अन्य ग्रहों पर पहुंचने का अपना स्वप्न साकार करने के बहुत कुछ समीप पहुंच चुका है। ऐसी स्थिति में इस दिशा में प्रयत्नशील होना छोड़कर हम मध्ययुगीन माया-ब्रह्म, घट-पट-मट और अवच्छेकावच्छिन्न की काल्पनिक दुनिया में कब तक रमते रहेंगे...ऐसे समय दर्शन की साधना काल-बाह्य और युग-धर्म से विपरीत है।

—संस्कृति : डॉ. आदित्यनाथ झा अभिनंदन ग्रन्थ; (श्री राम माधव चिंगले का लेख 'दर्शन और जीवन') हिन्दी खण्ड, पृष्ठ 26-27।

280. दर्शन जितना कलात्मक है।

281. वह कुछ इस प्रकार है जिस प्रकार कोई ज़मींदार जमीन में हल चलाता, बीज डालता—अपने घर में काल्पनिक उड़ानें भरता हो।

दोआं ब्रितीआँ फ़लसफ़ा सिखांदा[282]

(ग) इउं आख़र फ़लसफ़ा कौमाँ दी मौत है,[283]
सदीआं लम्मी रात[284] पाउंदा,
सारा धरम करम मारदा।[285]

[फ़लसफ़ा ते आरट (उनर)—खुल्हे घुण्ड]

लेखक दार्शनिकों के वितंडावाद का भण्डाफोड़ अपने हिन्दी[286] निबन्धों एवं 'खुल्हे मैदान' में करता आया था। इन्होंने योग सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दावलि का मानव-भावनाओं से मेल भी बैठाना आरम्भ कर दिया था। प्रोफ़ेसर साहब ने शरीर में अवरुद्ध रक्त को नाड़ियों में संचरित होने की विधि बताकर हठयोग की वैज्ञानिक एवं नूतन व्याख्या करने का साहस भी दिखाया[287]। उलटी-सीधी करवटें लेने को कदापि योग नहीं कहा जा सकता।[288] इसी कारण इन्होंने गीता के ध्यान-योग को हनुमान की रामभक्ति की सात्विकता में इस प्रकार अनुस्यूत किया है :—

(क) भखदी इक माला लालां दी,
हनूमान नूं लंका दे राजे ने भेंट कीती

---

282. फ़लसफ़ा (दर्शन) हृदय की शून्यता, अन्धकारपूर्ण शून्यता, आकाशीय वृत्तियों की शिक्षा देता है।

283. राष्ट्रों की मृत्यु।

284. अज्ञान का चिरकालिक घटाटोप अन्धेरा।

285. धर्म कर्म नाशक है।

286. ये बादल चाहे आत्मिक जीवन के केन्द्र हों, चाहे निर्विकल्प समाधि के बाहर के घेरे, इनमें जाकर कवि ज़रूर सोता है। उसका अस्थिमाँस का शरीर इन बादलों में घुल जाता है। कवि वहां ब्रह्मरस का पान करता है।—कन्यादान

287. प्रो. पूर्ण सिंह ने अपनी पुत्री गार्गी को उसकी सगाई की सूचना भेजते समय यही उपदेश दिया था।

288. पर मूंधे मत्थे पै बेहोश जिहा, सुद्ध बुद्ध विसार, होंद नूं गवाणां, हीरे नूं कुट्ट कुट्ट खेह जिही विच रुलाणा, मुड़ जित्थूं जतनां नाल लभिआ इह कुछ योग नहीं ?—(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

× × ×

पर हनूमान नूं तां खाण दा सुवाद सी,
भन्न भन्न तक्कदा, इन्हां विच कोई गिरीग्रां ?
गिरी न निकली कोई,
तोड़ तोड़ वेखदा,
इह की ? इन्हां दे दिल नांह ?
चिहरे इन्हां दे किहे सन भखदे ?[289]
ग्रन्दर इन्हां दे किधरे राम नाम नांह ?

('हनुमान'—खुल्हे मैदान)

(ख) "When the armies of the victors entered the Golden land, as is told in the Ramayana, the new king, Bhabikhan, offered a string of rubies to Hanuman—the devotee of Rama. Hanuman broke open every gem to see if there was the image of Rama as it is in his own soul! He broke away every ruby and threw the string away, it was "heavy".

(*The Spirit of Oriental Poetry*, P, 19)

सहज-योग की सिद्धि के लिए नटकला की भाँति हठ योगियों की मुद्राग्रों के स्थान पर इन्होंने माता के सात्विक वात्सल्य को 'प्यार-योग' के ग्रासन पर ग्रारूढ़ कर दिया :—

ठीक ! मां दा प्यार-योग इक सहज-योग है
मन नूँ टिकाना, चित्त नूं संभालना, इह कम्म तां बस्स मनुक्ख
होण, ना होण, सभ्य, ग्रसभ्य दा फ़रक है;[290] इह कोई करामात
नहीं !
करामात इक बस्स पिग्रार है ।
जिहड़ा दिल दी टोह नाल सभ कुछ जाणदा ।

× × ×

---

289. हनुमान को विभीषण द्वारा दी गई माला के मनके जलते हुए प्रतीत हुए ।

290. यह कार्य तो केवल मनुष्य होने, न होने ग्रर्थात् सभ्य-ग्रसभ्य के ग्रंतर के के समान है ।

पिश्रार विच डुल्हणा मां वांग हां, इच्छरां मां वांग होणा योग
दा अन्दरला रहस्य है।
(पूरननाथ जोगी—खुल्हे मैदान)

प्रेम-योग का एक अन्य उदाहरण 'कन्यादान' निबंध में उपलब्ध होता है। सात्विक प्रेम के कारण आँखों से बहने वाली अश्रु-गंगा की धारा में कवि को योग की अनेक अवस्थाओं का दर्शन होता है, यथा :—

'आज हम उस अश्रुधारा का स्मरण नहीं करते जो ब्रह्मानन्द के कारण योगीजनों के नयनों से बहती है।...प्रेम की बूँदों में यह असार संसार मिथ्या रूप होकर घुल जाता है और हम पृथ्वी से उठकर आत्मा के पवित्र नभो-मण्डल में उड़ने लगते हैं। अनुभव करते हुए भी ऐसी धुली हुई अवस्था में हर कोई समाधिस्थ होता है; प्रेम की काली घटा ब्रह्मरूप में लीन हो जाती है। चाहे जिस शिल्पकार, चाहे जिस कला-कुशल-जन के जीवन को देखिए उसे इस परमावस्था का स्वयं अनुभव हुए बिना अपनी कला का तत्वज्ञान नहीं होता...वह चित्रकार ही क्या जिसने हज़ार बार चित्रकार को इस योग-निद्रा में न सुलाया हो।'
(कन्यादान)

कर्म-योग : कार्यक्षमता का पर्याय : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के जीवन-काल में किरती-किसान की जो लहर चली थी, उसमें साम्यवादी तत्वों का प्राचुर्य था। इन्हें तो अपने अनेकशः अनुभवों के कारण इस नई चेतना में कोई आकर्षण प्रतीत न हुआ। जब गृहस्थ के प्राणियों के सहयोग से ही सब कुछ प्राप्य हो सकता हो, तब बाहरी विचारधारा की तड़क भड़क से चमत्कृत होना कोई विशेष बुद्धिमता नहीं है। फलतः इन्होंने इस तथ्य को दर्शाने के लिए श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के कर्मयोग की वैज्ञानिक तत्वों द्वारा बड़ी सुन्दर व्याख्या की है :—

'निष्काम कर्म करने के लिए जो उपदेश दिए जाते हैं उनमें अभावशील वस्तु सुभावपूर्ण मान ली जाती है। पृथ्वी अपने ही अक्ष पर दिन रात घूमती है। यह पृथ्वी का स्वार्थ कहा जा सकता है, परन्तु उसका यह घूमना सूर्य के इर्द गिर्द घूमना तो है और सूर्य के इर्द गिर्द घूमना सूर्यमण्डल के साथ आकाश में एक सीधी लकीर पर चलना है। अन्त में, इसको गोल चक्कर खाना सदा ही सीधा चलना है। इसमें स्वार्थ का अभाव है। इसी तरह मनुष्य

की विविध कामनाएं उसके जीवन को मानो उसके स्वार्थ रूपी धुरे पर चक्कर देती हैं। परन्तु उसका जीवन अपना तो है ही नहीं, वह तो किसी आध्यात्मिक सूर्यमण्डल के साथ की चाल है और अन्ततः यह चाल जीवन का परमार्थ रूप है। स्वार्थ का यहां भी अभाव है, जब स्वार्थ कोई वस्तु ही नहीं तब निष्काम और कामनापूर्ण कर्म करना दोनों ही एक बात हुई।'
(मज़दूरी और प्रेम)

निष्काम और सकाम उभयवाची कर्मयोग का सामंजस्य स्थापित करके प्रोफ़ेसर साहब ने कर्मयोग के व्यावहारिक रूप—श्रम गौरव—पर टिकी ख़ून-पसीने की कमाई से जुड़े निजो उद्योगों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, यथा :—

'अन्न पैदा करना तथा हाथ की कारीगरी और मिहनत से जड़ पदार्थों को चैतन्य करना, क्षुद्र पदार्थों को अमूल्य पदार्थों में बदल देना इत्यादि कौशल ब्रह्मरूप होकर धन और ऐश्वर्य की सृष्टि करते हैं।'
(मज़दूरी और प्रेम)

हस्तकर्मियों को प्रायः निम्न श्रेणी (शूद्र) के माना जाता है। किन्तु निबन्धकार ने महापुरुषों के कार्यों में श्रम-महिमा का उद्घाटन करके छोटे-बड़े का भेद मिटाने का बहुत बढ़िया नुस्ख़ा बताया है :—

(क) हमारे यहां के मज़दूर, चित्रकार तथा लकड़ी और पत्थर पर काम करने वाले भूखों मरते हैं तब हमारे मन्दिरों की मूर्तियां कैसे सुन्दर होंगी ? ऐसे कारीगर तो यहां शुद्र के नाम से पुकारे जाते हैं। याद रखिए बिना शूद्र-पूजा के मूर्ति-पूजा किंवा, कृष्ण और शालिग्राम की पूजा होना असम्भव है।
(मज़दूरी और प्रेम)

(ख) मज़दूरी करना जीवनयात्रा का आध्यात्मिक नियम है। जोन ऑव आर्क (Joan of Arc) की फ़कीरी और भेड़े चराना, टॉलस्टॉय का त्याग और जूते गांठना, उमर खैयाम का प्रसन्नतापूर्वक तम्बू सीते फिरना, ख़लीफ़ा उमर का अपने रंग महलों में चटाई आदि बुनना, ब्रह्म ज्ञानी कबीर और रैदास का शूद्र होना, गुरु नानक और भगवान् कृष्ण का मूक पशुओं को लाठी लेकर हांकना—सच्ची फ़कीरी का अनमोल भूषण है।
(मज़दूरी और प्रेम)

सन् 1871 में फ्रांसिसी क्रांति के दौरान स्वशासित स्वतन्त्र इकाई

(Commune) की जो आवाज़ उठी थी, वही बहुत कुछ साम्यवादी देशों में किसान-मजदूर आंदोलनों का स्वर बन गया। किन्तु प्रो. पूर्ण सिंह ने इस स्वशासन का प्रतिबिम्ब सिक्ख-इतिहास के दर्पण में झांकने में लिए हमें प्रेरित किया है :—

"The true vindication of the Khalsa *commune* and its ideals, as announced by Guru Gobind Singh, have yet to materialise in the daily life of the Guru's labourers. The modern world is, however, busy evolving the Guru Khalsa's state out of social chaos. This much be said at once, that the Khalsa state is more than a mere republic of votes and ballots...without the transmutation of the animal substance of man, there can be no true Soviets. (Page 67).

(*Guru Gobind Singh : Reflections and Offerings*).

किसी क्षणिक आवेग में बहकर लेखक किसानों को कोई ऐसा नारा नहीं देना चाहता, जिससे वे अपनी कठिन कमाई से हाथ धो बैठें। वह यह जानता है कि ऋतुओं के अनुसार खेतिहरों को भूमि मोड़ना, बीज बोना एवं सिंचाई के कार्य करने पड़ते हैं। ज़रा-सी ढील हो जाने पर उस बेचारे किसान का सब चौपट हो जाता है। इसलिए प्रो. पूर्ण सिंह ने 'किरती' को अपना कर्त्तव्य पहचानने के लिए निम्नोक्त सन्देश दिया है :—

'ईसाई मत बादशाही महल्लाँ विच टॉलसटॉय नूं नज़र नहीं सी आइआ, पर भोले भाले रूस दे क्रिसानां दे वहिमां दे हनेरे विच बिजली लिशकदीआं धारीआं सच्चे सिदक दीआँ ओहनूं नजर आईआँ। क्रिसान जिमींदार जिहड़े हल वाहुंदे ते मज़दूरीआँ करदे हन, उन्हां विच सहिज सुभा दया, उदारता, तिआग, रज़ा आदि महान गुणां दी छाया हुंदी है। किसी अमीर दे दिल विच नुकसान उठा के रज़ा दा नुकता नहीं आउंदा। पर मैं किरती क्रिसानां दी सिक्ख ते की मुसलमान ते की हिंदू सभ नूं वेखिआ है कि ओह बड़े बड़े नुकसान नूं रब्ब दी रज़ा दे नुकते विच गुज़ार दिंदे हन, ओह गम ते दुक्ख दी ओनी कांब नहीं खांदे जिन्नी अकलां वाले।...किरसान मिहनत करन वाला कुदरत दे इस नेम दा दरशन कराउंदा है कि हत्थ पैर तों जे कोई कार करे ते चित आप मुहारा निरंजन नाल जुड़न लग्ग जांदा है ते समा पा के किरत ही पूजा

हो जांदो है। कारलाईल ने ठीक वचन कीता है, कि इहो जिही रज़ा सहिज-सुभा रब्बता दी चुप्प सिदक विच जींदी थींदी किरत रब्ब दी पूजा तुलय है।'[291]

('किरत'—पंजाबी निबन्ध)

इंग्लैण्ड में जापानी माल की बड़ी खपत है। यह उनकी हाथों और उंगलियों का खेल है। अतः प्रोफ़ेसर साहब का मत है कि भारतीयों को भी एशिया द्वीप के जापान देश से प्रेरणा लेकर अपने हस्तकौशल से अपनी आर्थिक स्थिति को सुधार लेना चाहिए, यथा :—

'जापान में मैंने कन्याओं और स्त्रियों को ऐसी कलावती देखा है कि वे रेशम के छोटे छोटे टुकड़ों को अपनी दस्तकारी की बदौलत हज़ारों की कीमत का बना देती हैं।...पश्चिमी देशों के लोग हाथ की बनी हुई जापान की अद्‌भुत वस्तुओं पर जान देते हैं। एक जापानी तत्वज्ञानी का कथन है कि हमारी दस करोड़ उंगलियाँ सारे काम करती हैं। इन

291. टाल्सटॉय को शाही महलों में ईसाई मत दिखाई नहीं पड़ा था, किन्तु भोले भाले रूस के किसानों के पुराने विचारों (वहम) के अन्धेरे में बिजली की चमकती धारियाँ—सच्चे सन्तोष की उसे दिखाई पड़ीं। किसान—ज़मींदार जो हल चलाते और मज़दूरी करते हैं. उनमें सहज-स्वाभाविक रूप में दया, उदारता, त्याग (ईश्वर) आज्ञा (पालन) आदि महान गुणों की छाया होती है। हानि उठाकर कोई भी अमीर 'ईश्वरेच्छा बलीयसी' की बात नहीं करता। किन्तु मैंने तो किरती-किसानों (कर्मशील कृषकों; तत्कालीन एक राजनैतिक लहर) क्या सिक्ख, और क्या मुसलमान और क्या हिन्दू, सभी को देखा है कि वे बड़ी-से-बड़ी हानि को 'ईश्वर की आज्ञा' पर केन्द्रित करके चलता कर देते हैं, वे ग़म (शोक) और दुःख की (अतिशयता से) इतना नहीं काँपते, जितना बुद्धिमान लोग। किसान, मेहनत करने वाला प्रकृति के इस नियम का दर्शन करवाता है—हाथ पैर से यदि कोई परिश्रम करे तो चित्त स्वयं 'निरंजन' से जुड़ने लगता है और समयानुसार 'कर्म ही पूजा' हो जाती है। कारलायल ने ठीक ही कहा है कि इस प्रकार (ईश्वर, आज्ञा सहज स्वाभाविक ईश्वरीय मौन, निष्ठा पर सजीव रूप में टिका कर्म भगवान् की पूजा के तुल्य है।

उंगलियों ही के बल से, सम्भव है हम जगत् को जीत लें (We shall beat the world with the tips of our fingers)...यदि भारत की तीस करोड़ नर-नारियों की उंगलियां मिलकर कारीगरी के काम करने लगें तो उनकी मज़दूरी की बदौलत कुबेर का महल उनके चरणों में आप ही आप आ गिरे।'

(मज़दूरी और प्रेम)

पंजाबी मुहावरे 'दसां नौहां दी कमाई' (परिश्रम पूर्वक दोनों हाथों के योग से काम करना) का हिन्दीकरण करते समय लेखक ने स्वदेशी का सच्चा राग अलापा है। इन्होंने पश्चिमी देशों के अंधानुकरण पर बल नहीं दिया, प्रत्युत् वहां की मशीनी सभ्यता को भारत की कलामयी भुजा शक्ति से पछाड़ने के लिए आह्वान किया है, यथा—

'यदि हम में से हर आदमी अपनी दस उंगलियों की सहायता से साहसपूर्ण अच्छी तरह काम करे तो हम मशीनों की कृपा से बढ़े हुए परिश्रम वालों को वाणिज्य के जातीय संग्राम में सहज ही पछाड़ सकते हैं। सूर्य तो सदा पूर्व से ही पश्चिम की ओर जाता है। पर, आओ पश्चिम में आने वाली सभ्यता के नए प्रभात को हम पूर्व से भेजें।

(मज़दूरी और प्रेम)

निष्कर्ष यह है कि प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'योग' शब्द के जोड़ने वाले अर्थ को भली प्रकार हृदयंगम किया। इन्होंने 'योग' को अनेक उपसर्गों से युक्त करके प्रयोग एवं उद्योग, धन और ऐश्वर्य की जन्मदात्री—हाथ की कारीगरी की उन्नति—को अर्थवत्ता प्रदान करके पराधीन भारत की आर्थिक दशा को सुधारने का सच्चा संदेश दिया। फ़क़ीर (योगी) से अमीर बनने की प्रक्रिया को कवि ने अपनी काव्य-रचना द्वारा इस प्रकार प्रसारित किया है :—

पुराणे उनरां दी अक्ख मीटी, खुल्ही, वेदां वाले धिआन दी
 अक्ख इह नाँह।
शुनय दे धिआन विच जुड़ी, मीटी, खुल्ही अक्ख वहिशी,
 हैवान अक्ख हाले
योग किस गल्ल दा ?
दूजा होइआ कोई नांह,

जुड़ी किस नाल है ?[291]
पिग्रार किस चीज़ दा ?

[सुरति ते हंकार (Consciousness and Ego)—खुल्हे घुण्ड]

---

291. (क) पुरानी कलाओं की यह मुंदी आंखें खुल गई हैं। यह वेदों वाले (योगियों के) ध्यान की आँख नहीं है। शून्य के ध्यान में जुड़ी (योगनिद्रा) आँख (अभी भी) बंद है। वह पशुओं वाली आँख अभी तक (क्यों नहीं) खुली। योग (साधना) किस के लिए ? हमसे भिन्न कोई नहीं है फिर यह (योगदृष्टि) किस से जुड़ी है। हमारा जोड़ (एकता) तो प्यार पर निर्भर है—अर्थात् हम तो प्यार-योग (प्यार पर आधारित एकता) के इच्छुक हैं।

(ख) The Samadhi of yoga has come out of the old caves of the Himalayas and is seen here moving in the mud-stained limbs of the Khalsa labouring with the plough, in the smithy and the carpenter's work plank.

In action's storm, I am bidden to sleep,
And the saddle of my horse is the cave for
me to meditate;
While ploughing and sowing, I am to fill my
throat with the dove-coos of His Name.
While loving and clinging to my wife and child.
I am to float up like a lotus to receive the Sword-Kiss of the Sun of sums.

—Puran Singh : *Spirit of the Sikh*, Page 95.

सैद्धांतिक-समीक्षा-संकल्प

उपक्रम : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह का दूसरा निबन्ध 'कन्यादान' है। यह निबन्ध पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में प्रकाशित होने वाली 'सरस्वती' पत्रिका (अक्तूबर, सन् 1909 ई.) के माध्यम से साहित्य-जगत् के सम्मुख अवतरित हुआ। इसके अन्तर्गत आप लिखते हैं :—

'पाठक, अब तक न तो आपको और न मुझे ही ऊपर की लिखी हुई बातों का ऊपरी दृष्टि से कन्यादान के विषय से कुछ संबन्ध मालूम होता है। तो फिर लेखक ने सरस्वती के सम्पादक को नीली पेंसल फेरने का अधिकार क्यों नहीं दिया। उसका कारण केवल यह है कि ऊपर और नीचे का लेख लेखक की एक विशेष देश-काल सम्बन्धी मनोलहरी है। पता लगे चाहे न लगे कन्यादान से सम्ब्रन्ध अवश्य है।'

दस वर्ष की अवस्था में ही पूर्ण सिंह जी की सगाई माया देवी जी से हो गई थी। किन्तु जापान में शिक्षाकाल के समय ये वेदांती साधु बन गए थे। वहां से लौटने के बाद कलकत्ता में क्रांतिकारी गतिविधियों के कारण गिरफ्तार हुए पूर्ण सिंह को माता-पिता ने खोज निकाला था। गांव में आने पर मृत्यु-शैया पर लेटी छोटी बहन गंगा ने इनसे वचन ले लिया कि ये माया देवी से अवश्य विवाह करेंगे। कुछ ही क्षणों के बाद बहन ने भाई की गोद में प्राण त्याग दिए। भावुक भ्राता ने अनुजा भगिनी की उस अंतिम स्मृति को 'नयनों की गंगा' ('कन्यादान' का अन्य नाम) निबंध के माध्यम से श्रद्धांजलिवत् भेंट करने का निश्चय किया।

उन दिनों दक्षिण अफ्रीका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश मिस्टर सर्ले ने एक निर्णय दिया। इसी फ़ैसले के अधीन दक्षिण अफ्रीकी

सरकार ने एक क़ानून बनाकर ऐसे विवाहों को अमान्य घोषित कर दिया जो न तो ईसाई रीति से सम्पन्न हुए थे और न ही जिनका निबंधन वहां की अदालतों में हुआ था। इस निर्णय के विरुद्ध दक्षिण अफ्रीक़ा स्थित श्री मोहनदास कर्मचन्द (बाद में महात्मा) गांधी के नेतृत्व में सत्याग्रह किया गया। भारत में भी इस नियम के प्रति बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ।[1] इन परिस्थितियों ने भावुक साहित्यकार की कल्पना-शक्ति को कुरेदा और वह अपने यौगिक ज्ञान की पारिभाषिक शब्दावलि को विश्व के सर्वमान्य संस्कार—कन्यादान (पाणिग्रहण)—के महत्व की स्थापना के लिए पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों को एक ही धरातल पर लाने के लिए आतुर हो गया।

नरगिसवाद का मिथ्यारोप : प्रो. पूर्ण सिंह अत्यन्त सुन्दर व्यक्ति थे। 'On Paths of Life' शीर्षक आत्मकथा में इन्होंने निजी सौंदर्य की प्रशंसा की है।[2] जापान में इनके शिक्षा-प्राप्ति के समय 'भारत जापानी क्लब' की ओर से शैक्सपियर का 'जूलियस सीजर' नाटक खेला गया, जिसमें पूर्ण सिंह जी ने मार्क ऐण्टनी का अभिनय किया था। ये रोमन वेशभूषा में रंगमंच पर उतरे थे। दर्शक स्त्रियाँ भी इनके सौन्दर्य से ईर्ष्या करने लगीं। अंग्रेज़, अमेरिकन और रूसी स्त्रियों ने प्रशंसा में इन से हाथ मिलाया और रंगमंच पर प्रकट होने वाली इनकी शारीरिक सुन्दरता की सराहना भी की।[3] डॉ. रोशन लाल आहूजा ने इसी प्रसंग को उठाकर प्रो. पूर्ण सिंह को यूनानी रोमांचक कथाओं के

1. डॉ. नवरत्न कपूर : हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की मूलभूत प्रवृत्तियां और प्रेरक शक्तियाँ, पृष्ठ 274।
2. Puran Singh : *On Paths of Life*, P. 37.
3. An Antony came on the stage in Roman toga. The mob was set on fire. But Antony had gone. I was caught in a stream of beautiful ladies—all foreigners to Japan—English and Americans and Russians, they so admirably shook me taking my hands and complimented me, "you looked so handsome on the stage".. I smiled and I replied in a pretty vain tone of a self-inebriated person, "I am the God of beauty."

   —Puran Singh : *On Paths of Life*, P. 82.

पात्र 'नरगस' (Narcissus) की भांति आत्म-सौंदर्य प्रशंसक होने के कारण एक महान् नरगस (नर्गिस) वादी कवि बताया है :—

'पूर्ण सिंह का व्यक्तित्व प्रभावशाली था। वह अपनी सुन्दरता का स्व:चेतन था, जिस प्रकार यूनानी रोमांचक कथा का युवक नारसी (नरगस) अपनी सुन्दरता पर इतना मोहित हुआ कि वह किसी सुन्दर स्त्री की ओर झांकता भी न था...एक करोड़पति स्त्री 'पूरन जोगी' के स्पर्श से नीरोग हो गई और उसे अमेरिका जाने के लिए प्रेरित करती हुई निराश लौट गई। यदि उसे मृतप्राय छोटी बहन—जिसका उस की गोद में प्राणांत हो गया था—निश्चित् (पूर्व निश्चित् !) विवाह के लिए आग्रह न करती तो पूर्ण सिंह यूनानी नरगस का रह जाता।...दूल्हा बने सुन्दर पूर्ण सिंह ने जो 'बैंत' पढ़े, उनमें स्वयं को 'सोहणा राम' कहा तथा माया को 'खुदा' और 'वहिदत' कहा।...इस प्रकार अपने काव्य की भावुकता और विचित्रता में पूर्ण सिंह को भावुक तथा नरगसवादी अनुरेखित किया जा सकता है...हरेक साहित्यकार सामान्य लोगों की अपेक्षा स्व: प्रेमी होता है। इसलिए हम प्रत्येक साहित्यकार को विशेषत: कवि को 'नरगसवादी' कहेंगे। पूर्ण सिंह, पूर्ण सिंह के नाते साहित्यकार के नाते और विशेषकर एक बड़ा 'नरगसवादी' है...कुएं पर अर्द्धनग्न गार्गी जैसी लड़कियों को पूर्ण सिंह इस प्रकार ताकता है मानो स्वयं को शोशे में देखता हो...हुसन के मतवाले पूर्ण सिंह की कुछ कविताएं नरगसवादी भी हैं, यथा—'पारस मैं', 'मुल्ल पा तूं आपणा' ...'सोहणी दा बुत्त', 'कुड़ीआं दा त्रिंझण'।'[4]

आहूजा साहब के अपने कथन में ही अनेक विरोधाभास हैं। करोड़पति स्त्री ने प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह को 'अमेरिका' जाने के लिए प्रेरित किया था तो इन्हें किस प्रकार 'यूनानी नरगस' का प्रेमी बनाया गया है। यदि प्रत्येक साहित्यकार 'स्व: प्रेमी' (सम्भवत: आत्म-सौंदर्य की अनुभूति से अभिप्राय है) होने के कारण 'नरगसवादी' निश्चित-रूप से होता है तो इसमें 'खुल्हे मैदान', 'खुल्हे घुण्ड' और 'खुल्हे असमानी रंग' के प्रणेता पूर्ण सिंह के व्यक्तित्व की निजी विशेषता ही क्या हुई?

---

4. अमरजीत सिंघ ढिल्लों (संपा.) : प्रोफ़ेसर पूरन सिंघ—इक शरधांजली (डॉ. रोशन लाल अहूजा—नवीं संवेदनशीलता दी सृजनहार), पृष्ठ 43-44.

डॉक्टर साहब ये भी भूल गए हैं कि 'खूह उत्ते'[5] और 'गारगी'[6] दोनों ही रचनाएं 'खुल्हे मैदान' की स्वतन्त्र कविताएं हैं। 'खूह उत्ते' में किसी 'गारगी' पात्र का उल्लेख नहीं हुआ।

पूर्ण सिंह शरारती बालक था। बचपन में वह पानी भरने के लिए जाती हुई स्त्रियों के घड़े फोड़ देता था। इसी संदर्भ में इन्होंने ब्रजलोक के बाल-कृष्ण और फिलस्तीन के ईसा की इसी प्रकार की चुहलबाज़ी का वर्णन भी किया है। क्या इतने पर ही हम इन्हें कृष्ण भक्त अथवा ईसा का अनुयायी कहना उचित समझेंगे? चैरी के फूल की हिलडुल में इन्होंने निजी आत्मा के सन्तरण का दृश्य देखा? गुलाब, पोस्त के फूल, केवड़े, कमल आदि फूलों की चर्चा इन्होंने अनेक रचनाओं में की है। इन्होंने 'आत्मकथा' (On Paths of Life) के तेरहवें अध्याय का शीर्षक ही 'मैं एक भटका हुआ फूल था, जो तोड़ लिया गया (I was a waylaid flower that was plucked away) रखा है।[7] इसी प्रकार 'Unstrung Beads' पुस्तक के पांचवें अध्याय का नामकरण 'फूलों का संग्रहण' (Gathering of Flowers) हुआ है।[8] क्या हम इन पुस्तक खण्डों के आधार पर इन्हें 'पुष्पवादी' कहना उपयुक्त समझेंगे? हमारे

---

5. देखिए 'हृदय मंथन' अध्याय का 'सौंदर्य का वास्तविक रहस्य' ('कुमारी का रूप वर्णन' शीर्षक अनुच्छेद)।
6. देखिए 'प्रणयन शक्ति' अध्याय का खुल्हे मैदान' खण्ड।
7. Puran Singh : *On Paths of Life*, Page 103.
8. (a) Seeing the cherry flowers floating in air, I thought it was my soul flowing. I was fresh like a rose, soft like dew. My friends tolerated my eccentricities......
(Ibid, Page 82).
   (b) The day passes, gathering my smiles and maiden blushes as it goes; and the night stays, making my tears its own—said the rose.
   (Puran Singh : *Unstrung Beads*, chapter V.)
   (c) My own flame burns me down, life is but a moment's firework—Said the Poppy.
   —(Ibid, Chapter V).

विचार में ऐसा करना कवि के साथ सरासर अन्याय है।

प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने तो 'नरगिस' का उल्लेख बड़े पवित्र भावों में किया है, यथा—

(क) परमाणु भी ब्रह्मकांति से मनोहर रूपों से सजे हुए, ज्योति से लदे हुए जगमग कर रहे हैं। परमाणु सूर्य रूप हो रहे हैं और सूर्य परमाणु रूप है। सुन्दरता सारी लज्जा को त्याग, घरबार छोड़, अनंत पर्दों को फाड़ खुले मुंह दर्शन दे रही है। बालकों, नारियों, पुरुषों के मुखों की लाली और सफ़ेदी झड़ रही है...युवती कन्या के रूप में जवानी की सुगन्ध फैलाती हुई बही चल रही है। नरगिस (एक फूल) की आंख में किस भेद से छिपी हुई है कि प्रत्यक्ष दर्शन हो रहे हैं। (पवित्रता)

(ख) मौन रूपी व्याख्यान की महत्ता इतनी बलवती, इतनी अर्थवती और इतनी प्रभाववती होती है कि उसके सामने क्या मातृभाषा क्या साहित्यभाषा और क्या अन्य देश की भाषा सब की सब तुच्छ प्रतीत होती हैं। अन्य कोई भाषा दिव्य नहीं, केवल आचरण की मौन भाषा ही ईश्वरीय है। विचार करके देखो, मौन व्याख्यान किस तरह आपके हृदय की नाड़ी–नाड़ी में सुन्दरता को पिरो देता है।...कमल और नरगिस में नयन देखने वाले नेत्रों से पूछो कि मौन व्याख्यान की प्रभुता कितनी दिव्य है। (आचरण की सभ्यता)

प्रोफ़ेसर साहब ने अपनी पंजाबी कविताओं में भी 'नरगस' शब्द का प्रयोग किसी न किसी गूढ़ार्थ में किया है, यथा :—

(क) नैनां दे नरगसां विच भरो त्रेल मिहर दी,[9]
दीदार तेरा आ वसिआ,
नरगस दी नैनां हुण अद्ध मीटीआं[10]
खोहले कोण हुण,[11] बाहर कोई नहीं वरणा,[12]

9. दया की ओस।
10. अधमुंदे नेत्र।
11. अब इन्हें कौन खोले ?
12. अन्यथा; वरेण्य (श्लेषार्थ)।

तैनूं तक्क के उह शहित-भरे शबद-गुरू पूरिश्रा ।[13]

(श्रद्धमीटी श्रक्ख भाई नंदलाल जी दी— खुल्हे घुण्ड)

(ख) सूरज गगनां दा जे है डुब्ब गिश्रा
गुम्म गिश्रा जे श्रासमानी नरगस
इन्हाँ नीले छप्पड़ां दे जादू-मुलख विच[14]
पाउ जाल[15]
बचाउ प्रकाश, यारो
दुनीया हनेर हो जावसी[16]

(पंजाब बार दी बिलोच दी धी[17]—खुल्हे श्रसमानी रंग)

प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने 'मौन रूपी व्याख्यान' (श्राचरण की सभ्यता) द्वारा संकेत किया है कि इनके पाठक 'ब्रह्मकांति' की नई श्रर्थवत्ता को हृदयंगम करके इसे मनुष्य के सौन्दर्य से जोड़ें श्रौर श्रज्ञान की भटकन (दुनीश्रा हनेर हो जावसी) से बचकर 'नरगिस' को श्रपने ही सौन्दर्य में सम्मोहित पुरुष (Narcissus) का रूप देकर 'वाद' (Ism) का पुट न चढ़ाएं। पर 'नरगस' (नर्गिस) क्रमश: (क) दिव्य सौंदर्य, (ख) परम सन्तोष की श्रवस्था 'मौन' (एक चुप सौ को हरावे),(ग) ईश्वर प्रेम में श्रधमुंदे लाल-डोरों वाले नेत्रों में उमड़े हुए श्रश्रुकण, (घ) सूर्य का प्रतीक 'नरगिस' के भावों की श्रभिव्यक्ति करता है। 'नरगस' में सभंग श्लेष के पारखी स्वभावत: ही इस फ़ारसी शब्द-युग्म के विच्छेद से 'मनुष्य' (नर को) 'बेसुध' (ग़श=गस) करने वाले श्राशय से परिचित हो सकते हैं।

श्रपने निबन्धों श्रौर कविता दोनों में ही प्रोफ़ेसर साहब ने 'प्रेम' (पिश्रार) श्रौर 'सौंदर्य'=सुहणप्प, सुहप्पण, हुसन) के प्रसंगों की श्रनेक बार श्रावृत्ति की है। वस्तुत: संस्कृत के विद्वान् पंडितराज जगन्नाथ के द्वारा 'श्रृंगार रस' को रसराज के रूप में सिंहासनारूढ़ किए जाने के उपरांत

---

13. तुम्हें देखते ही पूर्ण गुरु के शहद से भरपूर (शिष्य-प्रशंसा स्मरण हो श्राती है)।
14. इस नीले सरोवरों के जादू-भरे देश में।
15. जाल डालो (डूबे सूरज को निकालने के लिए)।
16. श्रन्यथा दुनिया में श्रंधकार हो जाएगा।
17. 'पंजाबी बार के बिलोच की बिटिया' शीर्षक कविता।

श्रृंगार के स्थायीभाव 'रति' से बहुत खिलवाड़ किया गया। इसी कौतुक में सौंदर्य का अर्थ नारी का एकमात्र नखशिख वर्णन ही रह गया। इसके अतिरिक्त प्रेम को स्वकीया,परकीया तथा गणिका रूप स्त्री के भेदोपभेदों के माध्यम से पति अथवा पर-पुरुष के साथ उचितानुचित सम्बन्धों की उछलकूद में जकड़बद्ध कर दिया गया। मानव और भौतिक प्रकृति का सामंजस्य प्रदर्शित करने के लिए संयोगावस्था में षट्ऋतु वर्णन तथा वियोग-दशा के चित्रण हेतु बारहमासा-प्रणाली में ही भारतीय कवियों की दृष्टि उलझकर रह गई। प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह जापान-निवास के समय जापानी कलाकार ओकाकुरा के सम्पर्क में आए थे, जिसने अपनी पुस्तक 'Ideals of the East' में लिखा था :—

"विक्रमादित्य का जवाहारात से सजा दरबार बस एक लुप्त स्वप्न है। ऐसा लुप्त हुआ है कि कालिदास का काव्य भी स्मरण नहीं कर सकता...एक अतीत शोभा को ढूँढते हैं इलोरा की मूर्तियों में या पहाड़ों में आरेखित उड़ीसा के चित्रों की मौन आहों और हवश (विलास भावना)...के रूपों में..." ।[18]

विदेशियों द्वारा कालिदास की संकुचित दृष्टि के रहस्योद्घाटन के उपरांत लेखक को अपने स्वाध्याय से यह आभासित हो गया कि कवि कालिदास ही नहीं प्रत्युत् शैक्सपियर ने भी श्रृंगार के नाम पर पाश्विक वृत्तियों को ही बढ़ावा दिया है :—

"जिन्हां नूं हिन्दुस्तान वासीआं ने शिंगार, वैरागय, करुणा आदि रसाँ विच वंडिआ है उह रस नहीं हन, उह तां इनसानी फितरत दे वलवलिआं दे उतार, चढ़ा आदि हन। इह पुराने लोकी चित्त दे पल छिन दे टका, भोगां आदि दी खुशी विच आए टिका नूँ रस मन्नदे हन। ...कालीदास ते शेकसपीअर आदि सभ इक सकूल दे मुण्डे हन, जेहड़े आपणे इस यतन विच हन कि किसे तर्हां कविता दे रब्बी रंग नूं पहुंच सकीए।...शैकसपीअर ते कालीदास आदि दा चित्त हैवान-आदमी ते हैवान-कुदरत दे साए आपणे अन्दर लैके वेहलीआं घाड़ां कर बाहर ले आंदे हन...शैकसपीअर प्रासपीरो थीं वद्ध ते हैमलेट दे आपणे मोए होए

18. डॉ. महिन्दर सिंध रंधावा : पूरन सिंघ दी वारतक ('आरट' निबन्ध) पृष्ठ 63-64.

पिश्रो दे प्रेत देखण थीं वद्ध होर कोई श्रादृशट देशाँ दा हाल नहीं दस्स सकिश्रा। कालीदास इन्ना दस्सदा है कि सुहप्पण उप्परो आउँदी है, पर फिर सिवाइ शिंगार रस दीश्रां उच्चीश्रां तसवीरां दे की होर खिच्चदा है।[19]
(कवी दा दिल - खुल्हे मैदान)

कवि कालिदास सामूहिक रस चेतना के कवि नहीं थे, उन्होंने केवल श्रृंगार-वर्णन में ही कमाल किया है। प्रोफ़ेसर साहब ने प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में नारी-रूप का सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने वाले 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' तथा 'विक्रमोर्वशीयम्' के नाटककार कालिदास की काव्य-प्रतिभा को स्वीकार भी किया है। रस-चर्चा के विषय में श्रृंगार-वर्णन की एकांगिता वाले कविचूड़ामणि कालिदास, जैदेव एवं सतसई रचयिता हिन्दी के रीतिकालीन कवि किस धरातल पर अवस्थित हैं; इस तथ्य की तुलनात्मक अभिव्यक्ति हेतु निम्नोक्त उद्धरण पढ़िए :—

"पूरबी श्रारट आदरशां दी परख बिहारी दे दोह्रे ते रती भावाँ नं उस नज़ाकत ते सहज सुभावता नाल नहीं दरशा सके, जिस तहीं कालीदास जी इस संसार नूं वी इक नवीं कुदरत बणा दिंदे हन। सत्तसई विच बनाँ दी खुशबू नहीं, महलां दी सिर दुखा देण वाली शिंगारक इतरां दी घड़ी बदबू है। जिस तहीं उरदू कवीश्रां ने फ़ारसी कवीश्रां दी माड़ी जिही नकल कीती, इस तहीं सत्तसई इक माड़ी जिही

---

19. जिन भारतवासियों ने श्रृंगार, वैराग्य, करुणा आदि रसों में बाँटा है वे रस नहीं हैं, वे तो मानवीय प्रकृति के उद्वेगों के उतार-चढ़ाव हैं। ये पुराने लोग चित्त के क्षणिक टिकाव, भोगों आदि की खुशी में आए टिकाव को रस मानते हैं...कालिदास और शेक्सपियर आदि सभी एक स्कूल के विद्यार्थी हैं, जो यह यत्न कर रहे हैं कि किसी प्रकार कविता के दिव्य-भाव तक पहुंच सकें...शेक्सपियर और कालिदास आदि का चित्त पाशिवक, मानवीय और पशु-प्रकृति की छाया अपने भीतर लेकर व्यर्थ की कल्पनाएं बाहर ले आते हैं...शेक्सपियर तथा प्रास्पिरो से बढ़कर और हैमलेट के स्वर्गीय पिता के प्रेत देखने से आगे बढ़कर कोई अदृिष्ट देशों का हाल नहीं बता सका। कालिदास इतना ही बताता है कि सौन्दर्य ऊपर से आता है, किन्तु तदुपरांत श्रृंगार रस के महान् चित्रों के अतिरिक्त और क्या खींचता है ?

धुंधली जिही जैदेव जी दी इलाही रचना गीत गोबिन्द विच आए अरथां मूरतां दी नकल है । पूरबो आरट आदरशाँ केवल कालीदास जी ने शिंगार रस दी कादर दी कुदरत नाल मिलदी आपणी इक नवीं कुदरत रस दरसाई है, उह कविता दा दरजा पा गई है।"[20]

(कावय विदया दा रस चमतकार)[21]

पूर्ण सिंह जी ने अपनी काव्य-रचनाओं में श्रृंगार के विभाव, अनुभाव और संचारियों में निबद्ध चित्रों से एकदम किनाराकशी की है। किन्तु श्रृंगार रस के सुन्दर नमूने खोज निकालने में इन्होंने कभी कोताही नहीं की । साहित्यिक सन्तुलन की दृष्टि से आपने 'The Spirit of the Oriental Poetry' ग्रन्थ का लगभग आधा भाग श्रृंगार रस को ही समर्पित किया है । पांचवें अध्याय 'श्रृंगार : यौवन का प्रस्फुटन (Shringar : The Blossom of Youth) में इन्होंने पंजाब के लोकगीतों का अवलंबन-ग्रहण करके 'श्रृंगार रस' को हिन्दी के रीतिकालीन कवियों के ऊहापोह से एकदम विभिन्न रूप में दर्शाया है। छठे अध्याय 'गीत गोविन्द : जब प्रेम हो पूजा है' (The Gita Govinda) में जयदेव

---

20. पूर्वी कला-आदर्शों की परख बिहारी के दोहे रति भावों को उस नज़ाकत और सहज स्वाभाविकता से नहीं दर्शा सके, जिस तरह कालिदास जी इस संसार को भी एक नई प्रकृति बना देते हैं। 'सतसई' (बिहारी) में वनों की सुगन्धि नहीं है, महलों की सिर-दर्द करने वाले श्रृंगारिक इत्रों की क्षणिक बदबू है...जिस तरह उर्दू कवियों ने फ़ारसी कवियों की थोड़ी-सी नक़ल की, इसी तरह सतसई एक मामूली-सी धुंधली-सी जैदेव जी की दिव्य रचना 'गीत गोविन्द' में आए अर्थों रूपी मूर्तियों की नक़ल है। पूर्वी आर्ट-आदर्श (को ध्यान में रखकर) केवल कालिदास ने शृङ्गार रस की ईश्वरीय-प्रकृति (दिव्य-गुण) से साम्य स्थापित करने वाली अपनी एक नई रस-प्रकृति को दर्शाया है (अतः) वहां कविता की कोटि पर (रचना) पहुंच गई है।

21. काव्य-विद्या का रस चमत्कार (पंडित पद्म सिंह शर्मा द्वारा 'बिहारी सतसई' की टीका की प्रो. पूर्ण सिंह द्वारा की गई समीक्षा)।

की प्रसिद्ध रचना का पद्यानुवाद मिलता है।[22] श्रृंगार रस विषयक उक्त सामग्री के आधार पर हम प्रो. पूर्ण सिंह के मत का आकलन इस प्रकार कर सकते हैं कि श्रृंगार-साहित्य केवल यौन कल्पनाओं पर आधारित काव्य है, जो केवल यौवनावस्था में ही सम्मोहित कर सकता है। राज-दरबारों में विरचित श्रृंगार ग्रंथ केवल धन-धान्य सम्पन्न सम्राटों और सामन्तों की लिप्सातृप्ति के ही साधन-मात्र हैं।[23]

---

22. Following divine and devotional poetry, we have Shringar or the poetry of passion. As long as youth, spring and dreams are with us, so long will this kind of poetry be fascinating. (P. 127) Love without base is unthinkable, at least on this earth.Youth soaked with the reddest wine of this feeling is the image of that higher and hidden life, where sex, in the shape of love, is the only vesture of Soul.
—Puran Singh : *The Spirit of Oriental Poetry*, Page 166-67.

23. सत्तसई दा मजमून...उस सिंगार ते रसाँ दी मूरती वाला है जो प्राचीन हिन्दुसतानी नायक नायिका दे रती विवहार विच बज्झदीआँ ते उड्डदीआँ इस्त्री पुरष दे वियोग संयोग विच बणदीआँ मूरताँ सन्। दहीं, दुद्ध, धन-पदारथ आम सी ते अमीराँ दे राजिआं दे रती चौंचले, अजीब अदाबाँ, मुसकराहटां, नैनां-नैन, नजाकताँ, नखरिआं ते रती भावां, दिखावां, मनेविअत रुसेविआँ, बताविआं, चुप्पां, गशाँ, बेहोशीआँ, गुलाब छिणकाविआँ, खुशामदाँ, दरामदाँ नाल भरी पई इक लिटरेचर है। कदी कंगन दी आवाज़ ते दोहरे लिखे जा रहे हन, कदी पंजेब दी छिणकार ते कदी कपड़े दी सजण ते कदी सुरमे दी छबन ते। इस तहीं दी तुकबंदी कविता विच इस्त्री, उरदू कविता दी इस्त्री वाँग इक गाइन वाली नृतय करन वाली, शोशल दिल बहलावे लई इक नाइका रूप विच बरनण कीती गई है...इस्त्री दी कुदरती ते सादा तसवीराँ दी छबीआँ नहीं कुछ मखौली जिहे लिबास ते ओस थीं बद्ध हासो हीणीआं नज़ाकतां दिल कच्चा करन वालीआं चीज़ाँ हन। इस तहीं दे सामान मद दे दीविआँ दी रोशनी विच भावें शोभन ते ओहो जिही सोसाइटी विच मिल मद पी

(Contd. on p. 253)

वैराग्य तो शांत ध्यानावस्था की पृष्ठभूमि था। किन्तु इसे शृंगार के वियोग-पक्ष में 'जीवन रहस्य के प्रति उदासी' की भावना बना दिया गया। इस प्रकार पौर्वात्य शृंगारिक कविता की जातीय-अभिव्यक्ति और अर्थ से मुक्त स्वाभाविक भोलेपन तक सामान्य युवक नहीं पहुँच सकता था।[24] इसीलिए पूर्ण सिंह जी ने वैराग्य की सही अभिव्यंजना

(Contd. from p. 252)

घड़ी दी घड़ी भावें दिल इस सारी कचयाण विच लग भी जावे, पर रंग सारा वहशी ते बनावटी है। ते बहुत करके कुछ ऐसा नंगा जिहा वर्णन है, जिसनूं कविता दा विशा मित्थणा ही भुल्ल है।

—Puran Singh Studies Journal, January 1979, Vol. I, Page 38-39 (कावय विदया दा रस चमतकार—सत्तसई क्रित पंडत पदम सिंह)।

24. Vairagam is our greatest preparation for serene contemplation. The thorn of ignorance that has pierced our mind can only be taken out by another thorn of Vairagam, an error to be corrected by another error. Like Shringar, Vairagam is a preparation for the traveller's march to the infinite within. Vairagam, Shringar, devotion, love,all find their fulfilment in God-union within our own soul. (Page 235)......

All lyrical poetry and most of the artistic productions of the world are Shringar, often blending with "Vairagam" or "Sadness of life's mystery." Compared with the poetry of passion, the poetry of sadness has little resemblence to the highest lyrics of tho Seers of Simrin. The effect of the poetry of Shringar lasts but as long as the rosiness of youth. It is the passion of sweet illusion, that revels in wasting life...The young do not care for philosophy, for God's youth has come to them

(Contd. on p. 254)

भर्तृहरि के ग्रन्थों में प्राप्त की। इन्होंने भर्तृहरि जी की समाधि का चित्रण अपने 'पवित्रता' निबंध में किया था। आगे चलकर पंजाबी निबन्ध 'कवी दा दिल' में इन्हें कालिदास एवं शैक्सपियर से भी श्रेष्ठ बताया गया। प्रोफ़ेसर साहब ने अपनी नामरहित अंग्रेज़ी रचनाओं में से एक कृति 'अपराह्न का आत्म-चिंतन' (An Afternoon with the Self) का लेखक ही भर्तृहरि को बना डाला। भाई वीर सिंह की पंजाबी रचना 'भर्तृहरि में व्यक्त वैराग्य-भाव के संदर्शन के लिए इन्होंने 'वैराग्य : महान भ्रान्ति की उदासी' (Vairagam : The Sadness of the Great Illusion) के नाम से अंग्रेज़ी में भावानुवाद करके अपनी पुस्तक के सातवें अध्याय के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

कुछ भी हो वियोग-श्रृंगार वर्णन में प्रोफ़ेसर साहब को रुचि जम नहीं पाई। पंजाब की प्राचीन प्रेम-कथाओं (हीर-रांझा, सोहणी-महिवाल आदि) में इन्होंने कहीं भी वियोगाग्नि की झुलसन का वर्णन नहीं किया। ये प्रेमी पात्र तो ईश्वरीय रहस्यानुभूति एवं ज्ञान के प्रकाश के प्रतीक बनकर उभरे हैं। संयोग-श्रृंगार के संदर्भ में नख-शिख एवं षोड्श-श्रृंगार चित्रण के नाम पर श्रृंगार ग्रन्थों में कृत्रिमता तथा विलासिता के नग्न चित्रों ने इतना घर कर लिया था कि हमारे साहित्यकार को उससे एकदम वितृष्णा ही हो गई थी। इन वर्णनों के दर्पण में झांककर देखना चाहिए कि क्या प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह अब भी 'नरगसवाद' के झूठे अभियोग से मुक्ति पाने योग्य नहीं हैं ?

नवीन रस योजना—'रति' को ही पहले-पहल श्रृंगार-रस का स्थायीभाव माना गया। किन्तु कालांतर में हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने अपने सर्वाधिक लोकप्रिय विषयों को 'माधुर्य रति'[25] की संज्ञा प्रदान कर दी, जिसे सामान्य काव्यशास्त्र में श्रृंगार ही माना गया।

(Cotd. from p. 253)

in abundance;they are little people who have suddenly got a purse full of gold, which does not permit them to seek more till they have spent it. (Page 28)

—Puran Singh : *The Spirit of Oriental Poetry.*

25. डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 205।

पौराणिक ग्रन्थों में मान्य नवधा भक्ति में कवि सूरदास[26] तथा परमानंद दास[27] ने दसवीं विधा 'प्रेमलक्षणा भक्ति' का विधान कर दिया। 'नारदभक्तिसूत्र' में वर्णित ग्यारह ग्रासक्तियों में से केवल सख्य, वात्सल्य, रूप, कान्ता ग्रौर तन्मय का व्यापक वर्णन हुग्रा।[28] कान्ताभाव में परकीया-प्रेम को ग्रादर्श प्रेम का प्रतीक मान लिया गया ग्रौर नन्ददास ने तो एक नए रस 'उपपति-रस' की स्थापना भी 'रूप मंजरी' (पद 59) तथा 'भाषा दशमस्कंध' (ग्रध्याय 29) में कर दी। चैतन्य संप्रदाय के कृष्णभक्त कवियों ने तो 'भक्ति रस' ग्रौर 'उज्ज्वल रस' नामक नवीन रसों की उद्भावना भी कर डाली थी।

ग्रध्यात्म-रस : कृष्णभक्त कवियों से प्रेरणा लेकर ही पूर्ण सिंह जी ने एक नई रस-सृष्टि का विचार बनाया होगा। इन्होंने 'शिगार, वैराग्य, वीर ग्रौर करुण रस ग्रादि को ग्रपने कवि के ग्रालंकारिक रंग माना'। इसका ग्रर्थ यह हुग्रा कि ग्राप इन्हें ही ग्रपने कवि के शोभनीय रंग मानकर इन्हीं के सामूहिक रूप को नवीन-रस की उपाधि देना

---

26. श्रवणकीर्तन स्मरण पादरत, ग्ररचन, बन्दन, दास।
    सख्य ग्रौर ग्रात्म-निवेदन, प्रेमलक्षणा जास॥
    —सूर सारावली

27. जिन जिन कीनी तिने मन ते नेकु न ग्रनत चलो।
    श्रवण परीक्षत तरे राजरिषि कीर्तन कर शुकदेव॥
    बलि ग्रातम समर्पन करि हरि राखे ग्रपने पास।
    ग्रविरल प्रेम भयो गोपिन को बलि परमानन्द॥
    —परमानन्द सागर

28. 'नारदभक्तिसूत्र' के ग्रनुसार ग्रासक्ति के एकादश रूप इस प्रकार हैं—गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कांतासक्ति, वात्सल्यासक्ति, ग्रात्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति ग्रौर परम विरहासक्ति। यद्यपि सूर ने इन सभी का वर्णन किया है, किन्तु उनका मन सख्य, वात्सल्य, रूप, कांता ग्रौर तन्मयासक्ति में ग्रधिक रमा है। प्रेमाभक्ति में विरह की स्वीकृति इस सम्प्रदाय में प्रारम्भ से मिलती है।
    डॉ. नगेन्द्र (संपा.) हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 168-69।

चाहते थे। वास्तव में इनको वितृष्णा थी तो एकमात्र श्रृंगार के नाम से। इसी के फलीभूत आप नूतन-रस-सृजरा के लिए प्रेरित हुए। किन्तु कवि महोदय इसके लिए कोई उपयुक्त नाम नहीं ढूँढ़ सके। इन्होंने इसे 'रसिक बैराग' कहा है। सामान्य सौंदर्य के प्रति विरक्ति और जीव के रूपाकार में ईश्वर का दर्शन मात्र ही 'रसिक बैराग' की व्याख्या है :—

...सच्चीं मैं वेखिआ
करतार ने सुहणप्प बना सारी रक्खी इक मिट्टी दे बुत्त साहमरो
मते देख अनंत नानत्व नूं बुत्त जागे जिन्द हो
पर बुत्त हाले निरजिंद सी

× × ×

करतार आप बुत्त जिहा होके अंदर धुर वड़िआ,
बुत्त नूँ हत्थ नाल झंभूणदा
खा झंभूड़ा जागिआ, मिट्टी दा बुत्त,
नूर दा पुतला चमकदा।
ते जद जागिआ बुत्त मिट्टी दा,
शादिआने चौहां कूटां ते वज्जे
ते वज्जीआं लक्ख ढुंबक ढोरीआं
गगन फुल्लां दे हड़ हो वग्गे,
बरखा होई चार चुफेरीआँ
करतार दा जग्ग परण होइआ, शंख वज्जे
दमामिआं ते चोट लग्गी
सभ साज आरण होए इक सुर
जगत सारा पिआर राग जागिआ,
तां करतार आखिआ :
इस जीउंदे दे बुत्त नूँ मेरे
जीउँदा बस रक्खरण लई
सभ क़ुदरत दा ते मन दा साज-रंग बखशिआ
सो तद थीं जीउंदे लई
सभ आरट दा सामान है

'रसिक बैराग' साहिब ग्राखदे ।[29]

(रब्ब नूं ग्रौकड़ ग्राण बणी इक दिन[30]—खुल्हे घुण्ड)

कवि बहुत दिनों तक उपयुक्त शब्द की खोज में भटकता रहा। इन्होंने इसके लिए 'साध बचन',[31] 'धुर की बाणी', 'दिव प्रकाश,' 'इलाही ग्रवस्था,'[32] 'रूहानी करिशमे'[33] ग्रादि शब्दों का प्रयोग किया

---

29. सचमुच मैंने देखा कि करतार (ईश्वर, सृष्टिकर्ता) ने सारे सौन्दर्य को एकत्र करके ग्रज्ञानी मनुष्य (मिट्टी की मूर्ति) के सामने रख दिया। संभव है अनंत की ग्रनेकरूपता को वह मिट्टी का माधो सजगता पूर्वक पहचान ले, किन्तु वह ग्रज्ञानी मनुष्य ग्रभी निर्जीव ही बना रहा। भगवान् ने स्वयं उसके हृदय में प्रकाश मूर्ति (ज्ञान) बनकर प्रवेश किया और ग्रज्ञानी मनुष्य को झंझोड़ा। इस झकझोर से ग्रज्ञानी सचेत हुग्रा, उसके सामने ज्योतिपुंज प्रकट हुग्रा। इस प्रकार ग्रज्ञानी मनुष्य (मिट्टी दा बुत्त) के जागने पर चारों ग्रोर मंगलवाद्य बज उठे, ग्राकाश से फूलों की बाढ़ ग्रा गई, चारों ग्रोर से वर्षा होने लगी। सभी वाद्ययंत्र एक सुर से 'प्रेम-राग' ग्रलापने लगे क्योंकि ईश्वर का संसार से परिणय हो गया था। तब करतार ने कहा—'इस मनुष्य को चिरजीवी रखने के लिए मैंने प्रकृति ग्रौर मन का सारा साज-सामान सौंप दिया है।' इसलिए तभी से प्रत्येक जीवित प्राणी के लिए (शृङ्गार के ग्राधार प्रेम तथा सौन्दर्य) केवल कला की सामग्री हैं। गुरु साहब इसे 'रसिक वैराग्य' की संज्ञा देते हैं।

30. 'एक दिन भगवान् को भी संकट ग्रान पड़ा' शीर्षक कविता।

31. पूरब दे देशाँ विच 'साध बचनाँ' नूं ही कविता ग्रथवा उच्च साहित्य मन्निग्रा है।...(कविता)।

32. (क) इह समूह है बिजलीग्रां ग्रनेकाँ दे सुहणप्प दा, लिशकाँ इलाही।

(पारस मैं—खुल्हे घुण्ड)

(ख) मैं उस इलाही पिग्रार दा उडारी मारदा

(काली कूंज जिहड़ी मर गई—खुल्हे घुण्ड)

33. हैवान ग्रादमी दे रूप रंग ते हैवान कुदरत दे रूपरंग इक उपजाऊ रस-किरत दी सामिग्री हन...कवी चित्त इक्क चित्तर खिच्चण वाली

(Contd. on p. 258)

था। किन्तु कोई भी शब्द इनके मानसिक तोष का कारण न बन सका। 'बैराग-रसिक' ही हमारे विचार में कवि की रस-चेतना के अनुकूल एक शब्दवाचक 'अध्यात्म-रस' हो सकता है। इस 'अध्यात्म-रस' की उपलब्धि के समय, सौंदर्य और प्रेम परस्पर संयुक्त हो कर क्रमशः अद्भुत और शांत के सन्निविष्ट रूप में अध्यात्म-रस का आभास करवाते हैं। इस अध्यात्म-रस में आत्मा से उच्चदशा (अधि+आत्म) की उपलब्धि होती है, जिसे अकथनीय स्थिति कहा जा सकता है। ब्रह्मरस रूप इस अलौकिक दशा का वर्णन कवि के शब्दों में ही सुनिए :—

"कवि को देखिए, अपनी कविता के रस-पान से मत्त होकर वह अन्तःकरण के भी परे आध्यात्मिक नभोमंडल के बादलों में विचरण करता है। ये बादल चाहे आत्मिक जीवन के केन्द्र हों, चाहे निर्विकल्प समाधि के बाहर के घेरे, इनमें जाकर कवि जरूर सोता है। उसका अस्थि-मांस का शरीर इन बादलों में घुल जाता है। कवि वहां ब्रह्म-रस का पान करता है और अचानक बैठे बिठाए श्रावण-भादों के मेघ की तरह संसार पर कविता की वर्षा करता है। हमारी आंखें कुछ ऐसी ही हैं। जिस प्रकार वे संसार के कर्ता को नहीं देख सकतीं उसी प्रकार आध्यात्मिक देश के बादल और धुंध में सोए हुए कलाधार पुरुष को नहीं देख सकतीं[34]। उसकी कविता जो हमको मदमत्त करती है वह एक

(Contd. from p. 257)

बुत्तशाला है, जित्थे मादा जगत्, मुरदा जिन्दगी, रूहानी जगत् दी सदा जीवी जोत जिंदगी दी सामिग्री है...लोकी हैवान लोकी बड़े धोखे खाँदे हन। मन दे पदारथिक विचारां दे मारू रूहानी करिशमे थीं नावाकफ़ हुंदे हन... (कवी दा दिल)

34. Beauty is neither outside, within the reach of the Realist, nor inside within the reach of Idealist, as both are seeking an intellectual Abstraction. It is beyond the intellectual Abstractions, in the actual subjective spiritual union of the spirit of man with that of the universe as nature. The union takes place rarely as a cosmic phenomenon.

—Puran Singh : *The Spirit Born People*, P. 131.

स्थूल चीज़ है और यही कारण है कि जो कलानिपुण जन प्रतिदिन अधिक से अधिक उस आध्यात्मिक अवस्था का अनुभव करता है, वह अपनी एक बार अलापी हुई कविता को उस धुन से नहीं गाता जिससे वह अपने ताजे से ताजे दोहों और चौपाइयों का गान करता है। उस की कविता के शब्द केवल इस वर्षा के दाने हैं। यह तो ऐसे कवि के शांत रस की बात हुई। इसी तरह के कवि का वीर रस इसी शांत रस के बादलों की टक्कर से पैदा हुई बिजली की गरज और चमक है।... कवि की कविता और उसका आलाप उसके दिल और गले से नहीं निकलते। वे तो संसार के ब्रह्मकेन्द्र से आलापित होते हैं। केवल उस आलाप करने वाली अवस्था का नाम कवि है। फिर चाहे वह अवस्था हरे हरे बाँस की पोरी से, चाहे नारद की वीणा से और चाहे सरस्वती के सितार से बह निकले। वही सच्चा कवि है जो दिव्य सौंदर्य के अनुभव में लीन हो जाए और लीन होने पर जिसकी जिह्वा और कण्ठ मारे ख़ुशी से रुक जाएं, रोमाँस हो उठे, निजानन्द में मत्त होकर रोने लगे और कभी हंसने।" (कन्यादान)

लेखक की इस लम्बी वक्तृता से दो प्रश्न सामने आते हैं— (i) ब्रह्मकेन्द्र से आलाप (ii) शांत रस से वीर रस की उत्पत्ति। ब्रह्मकेन्द्र से आलाप का अभिप्राय है— 'अक्षर ब्रह्म' अथवा 'शब्द ब्रह्म'। यह रस के मूल आधार शब्द को पकड़ने वाली बात है। डॉ. विनयमोहन शर्मा के शब्दों में—

"कोई भी 'कला' व्यक्ति के दायरे में बंधकर जीवंत नहीं रह सकती। उसे समष्टि ग्राह्य बनना ही होगा।

कविता का बाह्य अंग शब्द और आंतरिक अंग अर्थ है। इसीलिए भामह ने काव्य में शब्द और अर्थ की समभावावस्था स्वीकार की है (शब्दार्थ सहित काव्यम्)। कविराज जगन्नाथ ने भामह के विशेष्य शब्द को विशेषण प्रदान कर कहा 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दं काव्यम् केवल शब्द काव्य कैसे हो सकता है? शब्द में रमणीयार्थ को व्यंजित होना ही होगा। विश्वनाथ ने 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' की व्यंजना को और आगे बढ़ाकर कहा 'रसात्मकं वाक्यं काव्यम्'। केवल रमणीयार्थक पद काव्य नहीं हो सकेगा—पूरा रसमय वाक्य ही काव्य की संज्ञा का अधिकारी है। यहां 'वाक्य' से तात्पर्य पूर्ण काव्य से है।

शब्द और अर्थ की विभिन्नता कालिदास और तुलसीदास ने भी प्रतिपादित की है :—

'गिरा अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।'

(कविता का शाश्वत रूप)

प्रो. पूर्ण सिंह ने शब्द की महिमा को पूरी तरह पहचाना है। इन्होंने शब्द की अनेक अर्थ-छवियां अपनी रचनाओं में प्रकट की हैं। उपनिषदों ने अक्षर ब्रह्म को पहचाना था। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भी इसकी चर्चा हुई। किन्तु आगे चलकर सिक्ख गुरुओं की वाणी में तो इसी ने मूलमन्त्र और उसकी व्याख्या, टिप्पणियों, भाष्य का रूप धारण कर लिया। इन सभी प्रभावों को समेटते हुए प्रोफ़ेसर साहब ने 'गुरमति' को अपनी अधिकांश रचनाओं का आधार बनाया। उनकी पंजाबी एवं अंग्रेज़ी कृतियों के आधार पर स्वर्गीय डॉ. हरबंस सिंह बराड़ का निर्णय विचारणीय है :

"पूर्ण सिंह के अनुसार मनुष्य बौद्धिक अथवा भावुक होने से ही कवि नहीं बनता, प्रत्युत् कलात्मक जीवन व्यतीत करने वाला ही कवि हो सकता है। पूर्ण सिंह का यह विचार 'सच्चो ओरे सभि को उपर सच आचारु' की ओर ही संकेत करता है। पूर्ण सिंह लिखता है—"They (Gurus) insist first on artistic life and mostly on artistic inside, on the flame of inspiration burning within the centre. (The Spirit Born People, Page 131).

यह दिव्य प्रकाश एक आनंद की अवस्था अथवा इलाही अवस्था है। ऐसी अवस्था से निकले बोल 'साध बचन' हैं या उच्च काव्य हैं। वास्तविक अर्थों में पूर्ण सिंह कवि को ऐसी अवस्था में पहुँचाकर कवि के काव्य को वाणी के समीप ले आया है। वैसे यह भी सत्य है कि जब काव्य अपने शिखर की ओर पहुंच रहा होता है, तब वह वास्तविक अर्थों में धर्म काव्य की ओर ही विकास कर रहा होता है—

"I am saying that logically the aesthete is united with the religionist in his research for an ultimately harmonized world. (Von Ogdon Vogt : Art and Religion, Page 22)."[35]

35. अमरजीत सिंघ ढिल्लों (संपा.) : प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ—इक शरधांजली, पृष्ठ 74 (डॉ. हरबंस सिंघ बराड़: पूरन सिंघ दा पंजाबी कावि शासतर)।

डॉ. बराड़ के इसी तर्क में शांत से वीर रस की उत्पत्ति का तंतु पकड़ा जा सकता है। प्रो. पूर्ण सिंह ने अपने हिन्दी निबन्ध 'सच्ची वीरता' में न चाहते हुए भी शौर्य भावना की सही-सही व्याख्या करते समय अधिकांशत: ऐसे व्यक्तियों के उदाहरण दिए हैं जो कि अपने त्याग, सेवा और बलिदान के कारण धार्मिक तथा दार्शनिक जगत् में अद्वितीय माने जाते हैं। हज़रत मुहम्मद साहब, गुरु नानक देव, ईसा मसीह तो क्रमश: इस्लाम, सिक्ख और ईसाई धर्म के संस्थापक हैं हो। इन्हें 'धर्मवीर' की उपाधि से अभिषिक्त किया जा सकता है। शम्स तबरेज़ को 'दानवीर', नैपोलियन बोनापार्ट तथा महाराजा रणजीत सिंह को 'युद्धवीर' एवं फ्लोरेंस नाइटिंगेल को 'दयावीर' की श्रेणियों में रखा जा सकता है। कारलायल, टॉल्सटॉय और इमर्सन जैसे दार्शनिकों के अतिरिक्त जापानी वीर ओशियो, पोप विरोधी लूथर अपने-अपने देश के धार्मिक इतिहासों में गण्यमान्य महापुरुष माने जाते हैं। भारत के स्वाधीनता यज्ञ के अनुकूल ये सभी सात्विक भावनाएं प्रतीत होती हैं। निबन्धकार ने वीर के लक्षण, सात्विक गुणों, स्वत: भाव-प्रस्फुटन और उसके पतन के कारणों की ओर भी संकेत किया है, यथा—

(i) वीरों के बनाने के कारखाने कायम नहीं हो सकते।

(ii) अपने को हर घड़ी और हर पल महान् से भी महान् बनाने का नाम वीरता है।

(iii) जहाँ किसी ने एक-दो काम किए...तहां हिन्दुस्तान के सारे अखबारों ने हीरो (Hero) की पुकार मचाई। बस एक नया वीर तैयार हो गया। यह तो पागलपन की लहरें हैं।

कवि का यह निबन्ध अध्यात्म-रस मूलक (धर्म काव्य) होने की हामी इन शब्दों में भरता है—

"सत्य की सदा जीत होती है...जय वहाँ होती है जहां हृदय की पवित्रता और प्रेम है...दुनिया धर्म और अटल आध्यात्मिक नियमों पर खड़ी है। जो अपने आप को उन नियमों के साथ अभेद करके खड़ा हुआ, वह विजयी हो गया।"

कवि की पंजाबी कविता 'हिमाला दीआं बलदीआं जोताँ' भी देश

के स्वाधीनता सेनानियों को अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का संदेश देते हुए अध्यात्म-रस के मूलतत्वों—सौन्दर्य और प्रेम—से सम्पन्न होने की शिक्षा देती है—

सुहणप्प रब्बानी सारी फट्टदी इत्थे,
वांग इक सहंसरदल कंवल फुल्ल दे,
× × ×
धार इह जोताँ,
कर इह पिआर तू,
खलोईं नांह, खलोई नांह,
वध, उट्ठ, जाग, टुर, जाह तूं,
ना ढिल्ल ला तूँ, ना ढिल्ल ला तूं।[36]

गुरमति और गुरु साहिबान के जीवन से सम्बद्ध गद्य और पद्य रचनाओं में तो अध्यात्म-रस की पवित्र स्रोतस्विनो पूर्ण वेग के साथ प्रवाहित हुई है।

अन्ततः यही कहा जा सकता है कि कवि का यह अध्यात्म-रस संसार-नामना सभी धर्मों की सीमाओं से ऊपर उठ जाता है। यह तो गुरमति के सहज सरल उच्चादर्श की भांति औदार्य-तत्व में पूरी तरह निमज्जित है। तभी तो शब्द-ब्रह्म के उदारचेता प्रो. पूर्ण सिंह सिक्ख प्रतीकात्मकता की चर्चा करते हुए पाँचवें गुरु श्री अर्जुनदेव जी—जिनकी देखरेख में श्री गुरु ग्रंथ साहिब की वाणी का संग्रह हुआ था—का हवाला देकर अपनी विशालहृदयता का परिचय देते हैं :—

"Worship of the Word—After all it may be said, there is a good deal of symbolism with Sikh. He has the Golden Temple, the Akal Takhat, his worship of relics similar to the Buddhists, his worship of 'The Book', his submission to the authority of his unique church, like that of the Vatican and a hundred other symbols and traditions. True. All this shows that there is a

36. सहस्रदल कमल के समान यहाँ पर समस्त ईश्वरीय सौंदर्य प्रस्फुटित हो रहा है। इन ज्योति पुंजों को धारण करो। इस प्रकार तुम अपना प्यार दर्शाओ; रुकना मत, रुकना मत। बढ़ो, उठो, जागो, तुम चल पड़ो तुम आलस्य न करो (कदापि न करो)।

genuine religious feeling, for whenever there has been a genuine feeling, it clothes itself in similar forms. Symbolism is dead if the feeling is absent; and if feeling is there, it cannot live without creating its clay. To think of a genuine religious feeling without its Cherished Symbolism is to think of a soul without a body. Dead Symbolism however, hugs the pictures of other people's love, and as such is empty self-deception; it is the glorification of a corpse, in the words of Guru Arjan Dev."

—(*Spirit of the Sikh*, Part I, Page 13)

प्रयोगधर्मिता : शब्द-ब्रह्म के रसिया प्रो. पूर्ण सिंह की स्थिति कीटभृंग जैसी हो गई थी। शब्द–ज्योति का कणमात्र भी इन्हें पतंगे की भांति आकर्षित कर लेता था। आप जो कुछ भी पढ़ते थे, उसे समुचित विधि से गुनते भी थे। आध्यात्मिक चेतना ने आपको चिंतन, मनन और निदिध्यासन की गुड़ती, सरस्वती के वरदान के रूप में, प्रदान की थी। इसीलिए आपने प्रत्येक शब्द में ब्रह्म सदृश अलौकिकता का दर्शन किया और उसे अपने उक्ति-वैचित्र्य का कुसुमबाण बनाकर साहित्य-रसिकों का हृदयवेधन आरंभ कर दिया। आपके निजी शब्द ज्ञान के कारण निघंटु पर आधारित अनेक शब्द छटाओं ने तो पाठकों को रसास्वादन करवाया ही, फिर भी आपने एक भाषा में निबद्ध मनोहर वचनों का दूसरी भाषा में उल्था करते समय कठिनाई आने पर मूल शब्द की गरिमा को ही सुरक्षित रखने की चेष्टा की। अंग्रेज़ी और हिन्दी में भावाभिव्यक्ति के समय आपकी वाणी अल्पांश में ही अविरुद्ध हुई है। पंजाबी गद्य—वह भी केवल मनोभावमूलक निबन्धों—में आपकी भाषा कहीं कहीं उखड़ी हुई प्रतीत होती है। उसका मुख्य कारण यही है कि ऐसे अस्पष्ट-से स्थलों पर आप दर्शन एवं विज्ञान की सारी की सारी लेई पूंजी को एक साथ भर देना चाहते हैं। पकी पकाई खाने वाला पाठक अवश्यमेव ऐसे प्रयोगों को देखकर बहक जाता है, किन्तु थोड़ा–सा भी प्रबुद्ध पाठक तथ्य की तह तक पहुँचकर विचार मणियों का संभरण कर ही लाता है।

यह मानना ही पड़ेगा कि प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह हिन्दी और पंजाबी के ऐसे कुशल लेखक हैं, जिन्होंने दर्शन तथा विज्ञान-जगत् की शब्दावलि को साहित्य का जामा पहनाने का साहस दिखाया है। हिन्दी के

प्रयोगवादी कवियों ने जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, उसे पूर्ण सिंह जी पंजाबी काव्य में कम-से-कम दो दशक पहले प्रस्तुत कर चुके थे। केवल अरबी-फ़ारसी शब्दावलि ही नहीं प्रत्युत् उन्होंने तो अंग्रेज़ी शब्दावलि के तत्सम रूपों को भी अपनी भाषा में जड़ना आरम्भ कर दिया था। एतदर्थ कुछेक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(i) सुहणप्प तेरे घर आई
तूं अक्ख उघाड़ न तक्कें
× × ×
रूह नूं शिंगारे नाँह,
मंट मिट रूह नूं मारे वांग अक्खीआं
(इक जगली फुल—खुल्हे मैदान)[37]

आत्मा का शृंगार नहीं करता। कविता की नायिका का बूढ़ा पति केवल व्यापारी होने के कारण पैसे गिनना जानता है। उसकी आत्मा तो सरकारी टकसाल में बने सिक्कों (Mint meant=टकसाल से संबद्ध) की भांति है, जिनसे नायिका के सौन्दर्य को पत्नी रूप में खरीदा (प्रेम किया) गया है।

(ii) जीवन-उनर दी सोझी कदम-कदम सिखदी
× × ×
सिमरन दा दीवा घट बले जद
तद (उनर) **आरट** सुरति नूं सवारदा
(भूमिका—खुल्हे घुण्ड)

शिक्षार्थी बना सिक्ख हर पग पर जीवन-कला को सीखता है। प्रभु स्मरण का दीपक उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश करता है तब उसे कला (हुनर > उनर=Art) की सूझ-बूझ प्राप्त होती है।

(iii) हड्डीआं मेरीआं हिमाला दी कड़ीआं, सिद्धीआं ग्रैनाइट

---

37. (क) सुन्दरता तुम्हारे घर आई है, तू आंखें खोलकर झाँकता भी नहीं। आत्मा का शृङ्गार नहीं करता। टकसाल के बने सिक्कों की भाँति आत्मा को आंखें मटकाता है।
(ख) कोठरी में लौ बढ़ाकर दीप की
गिन रहा होगा महाजन सेंत की। (अज्ञेय)

(बज्जर) दे हड्डाँ नाल वज्ज वज्ज कूकदीग्रां—
"इह मैं हां"—
खुल्हे मैदानां दे घाह
मेरे केसाँ दा नाम पए लैंदे
कन्नीं सुणीग्राँ मैं सभ कन्नसोग्रां।

(नाम मैं पुच्छदा नाम मेरा की है—खुल्हे घुण्ड)

हिमालय के निर्माण में वज्र पहाड़ (Granite) के उल्लेख के साथ ही अपनी पहली रचना 'खुल्हे मैदान' में उल्लिखित कविता 'हिमाला दीग्रां बलदीग्रां जोतां' में प्रकट भावनाओं (case, matter) से संबद्ध केशधारी—पूर्ण सिक्ख—सरदार पूर्ण सिंह का आत्म-परिचय इन पंक्तियों में मिलता है :

(iv) आदमी नूं हत्थ ला पलासटीक (मोम) बणाइआ, सदीग्राँ
घाड़ सिमरन दे उनर दी,
फरमाउण इस 'धरमसाल' प्रिथवी ते रब्ब दे
चितर हो —सभ आदमी

× × ×

टक, टक, ठक, ठक
बुत्तशाला गूँजे
दम बदम वाहिगुरू
घड़नहार घड़े मिट्टी पलासटिक (मोमी) —सभ आदमी

[सुरति ते हंकार (Consciousness & Ego)—खुल्हे घुण्ड]

ईश्वर ने मोमी (Plastic) खिलौने की भांति मनुष्यों को बनाया है। इसे बनाने में उसने सदियों तक स्मरण-कला (Memorizing Art) का पाठ पढ़ा (और पढ़ाया) है। (इसलिए भक्तजन) मनोहर शब्दों में कहते हैं—यह पृथ्वी प्रभु के चित्र निर्माण की धर्मशाला है। क़दम क़दम पर उस मूर्तिकर्ता ईश्वर की लीला खिलौने-मात्र बन रहे सभी मनुष्यों में दृष्टिगोचर हो रही है। कवि ने ईश्वर को सर्वकला-संपन्न मनुष्य के रूप में उपस्थित करके अपने मानवतावाद की स्थापना की है।

प्रोफ़ेसर साहब ने ईश्वर की अद्भुतता का वर्णन करते समय एक ही अक्षर से आरम्भ होने वाले शब्दों की झड़ी लगाकर मानो 'अ' के

आद्याक्षर से निर्मित 'अनुप्रासालंकार' को गौरवान्वित करने का निश्चय कर रखा हो—

इह समुंदरां दा की भेत है ?
इह लक्ख दरिआवाँ दी न्हाती धोती आब नँ
मेरी मैं' ते चढ़िआ रंग मिलवां मिलवां लक्खां सुहण्णपां दा

× × ×

इह 'नांह', 'नांह' होके
इह की अद्‌भुत जिही खेड है ?
अनंत, अमित, अतोल, अमोल, अडोल, अगम्म, अथाह,
असगाह जिहड़ी 'उह'।
इउं खेड जिही विच अंत, मित, तोल, मोल, डोल, गम्मता,
बाहत, गाहता जिही 'इस' विच आउंदी वस्सदी, हस्सदी
हुंदी अचरज है !

'उह' (परमात्मा) के असीम गुणों का 'इस' (आत्मा) में समावेश की दृश्यात्मक शब्दावलि वास्तव में आश्चर्य ('अचरज', 'अद्‌भुत' एवं 'भेत' < भेद) पूर्ण खेल (खेड) है। पंजाबी और हिन्दी का ज्ञान रखने वाला पाठक सुहण्णप (सौंदर्य) के शाब्दिक विश्लेषण को 'लक्ख दरिआवां दी नहाती धोती आब (लाखों नदियों में नहाई-धोई आब= स्वच्छ शोभा) को मुहावरे की गहराई में व्यंजित होते देख सकता है।

पूर्ण सिंह जी के हिन्दी निबन्धों में सामान्य जीवन की अनुभूतियों से वैज्ञानिक उदाहरणों का सामंजस्य बैठाने की प्रवृत्ति उनके नए प्रयोगों की हामी भरती है। पहले उद्धरण से इनके भौतिकी (Physics) और दूसरे से भौमिकी (Geology) विज्ञान में रुचि की स्थापना हो जाती है, यथा—

(क) उनके शब्द मानो आग की चिंगारियां हैं जो आदमी के दिलों में आग-सी लगा देती हैं। सब कुछ बदल जाए मगर कारलायल की गरमी कभी कम न होगी। यदि हज़ार वर्ष संसार में दुखड़े और दर्द रोए जाएं तो भी बुद्धि की शांति और दिल की ठंडक एक दर्जा भी इधर उधर न होगी। यहां आकर फिजिक्स (Physics) के नियम रो देते हैं। हज़ारों वर्ष आग जलती रहे तो भी थर्मामीटर जैसा का तैसा ही रहेगा।

(सच्ची वीरता)

(ख) पवित्रता का देश, भारतनिवासियों का देश है, जहां ब्रह्म कांति का भान होता है। खुले दर्शन दीदार होते हैं। भला हड्डी, मांस और चाम के शरीरों और हज़ारों मील लम्बी-चौड़ी मुर्दा की हुई (sterlised) ज़मीन (land) से भी कभी भारत बनता है।...भारत-निवासियों का राज्य तो आध्यात्मिक जगत् पर है। अगर यह राज्य न हुआ तो (Sterialised past) मुर्दा भूमि के ऊपर राज्य किस काम का ?

(पवित्रता)

आपके हिन्दी निबन्धों में 'राम का लाल', 'विजय का फुरेरा,' 'कभी उधर रोलता हूँ', 'सोहने नौजवान' (कन्यादान), 'खुला दरबार,' 'गोली न लग जाए उन दिलों को,' 'सड़े सड़ाए चेहरे' घड़े (गढ़े) हुए आश्रम (पवित्रता), कूच का घड़ियाल, ज्ञान का वह सेहरा (आचरण की सभ्यता) सदृश पंजाबी शब्दावलि हिन्दी भाषा को सजीवता प्रदान करती है। 'उन्मदिष्णु' (आचरण की सभ्यता), अगर-रगड़ (पवित्रता) मेरीअत (अपनापन, ममत्व : "करम करम करदे कौण करदा—खुल्हे घुण्ड); रब्बानीअत (ईश्वरीय—इनसानियत के वज़न पर—गारगी : खुल्हे मैदान) भी कवि-कल्पना की टकसाल के नए सिक्के हैं। निम्नोक्त उदाहरण में प्रयुक्त 'गुरुमन्त्र फूंकना' शब्द पंजाब में आम प्रचलित है; और 'रामरोला'[38] को तो स्वतन्त्रता संग्राम के पंजाबी कर्णधारों ने 'रोलट एक्ट' के विरोध में ख़ूब अपनाया था। निबन्धकार के प्रयोग द्रष्टव्य हैं :

(क) ईश्वर तो सदा मौन है...वह केवल आचरण के कान में गुरु मन्त्र फूंक सकता है।

---

38. In the Punjab, Sir Sydney Rowlatt came to be known by the *sobriquet raula* (turmoil). The drastic changes he proposed were summed up in the slogan : na dalil, na vakil, na apil (no argument, no lawyer, no appeal). Nevertheless, the bills became law in March 1919 (Indian Criminal Law Amendment Bill and the Criminal Law (Emergency Powers) Bill].

—Khushwant Singh : *A History of the Sikhs*, Vol. II, P. 162

(ख) अंग्रेज़ी भाषा का व्याख्यान चाहे वह कारलायल ही का लिखा हुआ क्यों न हो—बनारस में पण्डितों के लिए रामरोला है।

(आचरण की सभ्यता)

पिंगल जगत् : प्रो. पूर्ण सिंह के समस्त काव्य में मुक्तक छँद (Blank verse) का ही एकमात्र प्रयोग हुआ है। भाई जोध सिंह का मत है कि पंजाबी कविता में इस छन्द का सूत्रपात दशम गुरु श्री गोविन्द सिंह जी की 'चण्डी दी वार' रचना से हुआ[39]। तदनन्तर भाई वीर सिंह ने इसे 'राणा सूरत सिंघ' में अपनाया और पूर्ण सिंह जी ने भी जी भरकर इसका सदुपयोग अपनी कविताओं में किया। प्रोफ़ेसर साहब ने इसे 'सैलानी छन्द' की संज्ञा प्रदान की है। यह ऐसा छन्द है जिसमें तड़क भड़क नहीं, 'नवाबी कैद' से मुक्त है। इसमें यदि उल्टे सीधे शब्द भी रख दिए जाएं तब भी होठों पर लगे शहद की भांति पाठक इसका माधुर्य निरंतर चखता ही रहता है। किन्तु डॉ. मोहन सिंह दीवाना ने पूर्ण सिंह जी की इस छंद प्रणाली में संगीत की सूझ, तुकों की लम्बाई

---

39. अमरजीत सिंह ढिल्लों (संपा.): प्रोफ़ेसर पूरन सिंघ—इक शरधाँजली (जोध सिंघ : प्रो. पूरन सिंघ) पृष्ठ 2।

40. छन्द सैलानी का जिक्र आया है, छन्दाबन्दी में आम तौर पर फ़ॉक, कोट और (नेक) टाई और काले रंग की जुत्ती आदि की नवाबी क़ैद मुझे कविता के प्रभाव के लिए सज़ा दिखाई पड़ती है। कवि मैं हूं नहीं और छन्द की चाल पता नहीं। किन्तु शैले की फ़िलॉसफी ऑफ़ लव का अंदाज़ मालूम है, वह ऐसा है कि उल्टे सीधे शब्द भी रख दिए जाएं तब भी शहद से होंठ ज़रूर जुड़ जाते हैं। वे जुड़े होंठ और उस दसवें द्वार पहुंचे स्वाद का एक छन्द है, जिसे मैंने निडर होकर सैलानी छन्द का नाम देने की दलेरी की है। मतलब यह है कि घड़ी का पैंडुलम थोड़ा असलियत की ओर फेंका जाए, काव्य के शहद का रस अधिक चखा जाए, और तुकबंदी से वास्तव में आम लोगों और विशेष रूप से पढ़े-लिखे लोगों का मन कुछ उपराम हो। किसी समय तुकबन्दी का कृत्रिम राज्य हमारे कानों को आदत डाल देता है कि हम सच की सादगी को सच रूप होने के कारण सुनें ही नहीं। तब यह छन्दबन्दी से बेसब्री मेरी तबीयत की कमज़ोरी समझो... ('खुल्हे लेख' का मुक्खबंद)

और तुकाँत में आने वाले शब्दों के मूल्यों के अज्ञान का आरोप लगाया है।[41]

हमारे विचार में दीवाना साहब कवि पूर्ण सिंह के भाव को और मुक्तक छन्द के सही अर्थ को समझे ही नहीं। हिन्दी साहित्य में मुक्तक छन्द का उपयोग धड़ल्ले से हुआ है। इसे रबर छंद की उपाधि भी दी गई, जैसे रबर के टुकड़े को खींचकर लम्बा किया जा सकता है और खिचाव के हटते ही वह फिर अपनी पूर्व स्थिति में आ जाता है। अतएव छन्द की तुक की लम्बाई कवि के भावावेश के प्रवाह पर निर्भर है। जहां तक संगीत की बात है वहां हम प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के कुछेक उद्धरणों से इनके संगीत-कौशल के नमूने प्रस्तुत करके इस आक्षेप का खण्डन कर सकते हैं, यथा—

(क) 'मरद दा चेला' छड्डदा तिलीअर आपणे,
अध असमानां विच उडदे
रब्ब मेरा भेजदा मिहरां दे पँछी
उह कुट कुट, टुक टुक,
मेरे करमां दे टिड्डोदल मारदे।

× × ×

मैं ताँ सदा सुणदा सुहणी करमां दी काट नूं,
सुहणी टुक टुक होंदी जद,
ओए ! मौतां दा मींह किहा पैंदा, मौतां डिगदीआं, त्रिम
त्रिम, मौताँ दा मींह वस्सदा, त्रिम, त्रिम, त्रिम।

(करम, करम कूकदे, कौण करदा—खुल्हे घुण्ड)

---

41. Both out of necessity and effective imitation verse libre has come into Punjabi to stay. Puran Singh who first brought it in had not the requisite sense of music. He shows absolutely no knowledge of the only *Sine qua non of verse libre*—the control of the value of line-lengths and line ending words. There is no flow, either. Again, his, stanzic arrangements leave out a whole desirable world.

—Dr. Mohan Singh Diwana : Dhup Chhan, Page 2
(1932 Ed.)

कवि ने अपने कृषक जीवन के शब्द-चित्र में कितना सुन्दर दार्शनिक तथ्य भर दिया है। 'टिड्डीदल' का आकाश में विचरने वाले पक्षियों द्वारा सफ़ाया मानो मौत की वर्षा बनकर आया हो। पक्षियों के काटने (कुट कुट, टुक, टुक) और हल्की हल्की बूंदा बांदी (त्रिम त्रिम त्रिम) की बोधक शब्दावलि क्या नाद-सौंदर्य का उदाहरण नहीं हैं? सुर-ताल और लय संयुक्त एक अन्य उदाहरण भी विचारणीय है :

(ख) शरीर लखां तुले तेरी बाँसरी दी आवाज़ 'ते
कड़े, कस्से, लिशकण नच्चदे, नच्चदे वांग वजदीआं ताराँ
दे, सितारां दे
सभ कम्बदे सूरज दी खुशी-फुलीआं सवेर दीआँ किरनां
वाँग, सहंसर झणकाराँ,लक्खां झणकारां, छाण छाण
ताण ताण झमाँ-झम्म झम, थमां थम्म थम्म,
थर थर कम्बे असमान सार नाच नाल...

(अद्धी मीटी अक्ख भाई नंदलाल जी दी—खुल्हे घुण्ड)

'ख़ालसा समाचार' में प्रकाशित सन् 1916 की एक कविता 'दाज' (दहेज) में इन्होंने इसे 'अछंदन छन्द' की संज्ञा प्रदान की है। इसमें तुकों की लम्बाई में तो अन्तर है, किन्तु तुकांत पर 'अग्ग', 'रज्ज', 'गल्ल,' 'कज्ज', 'अज्ज,' 'जग्ग' आदि शब्द रखकर हल्का हल्का तुकांत साम्य दिखाई पड़ता है। इसी पत्र में छपी सन् 1911 की कविता को भी 'अछंदन छंद' में विरचित बताया गया है। 13 जनवरी, 1920 के 'ख़ालसा समाचार' में उद्भूत 'गुरपरब गुलज़ार सच्ची पातशाही' में लोहड़ी-माघी के अवसर पर 'ख़ालसा पंथ' के संस्थापक दशम पातशाह जी को भावभीनी श्रद्धांजलि भेंट करते समय कवि ने एक साथ कई तुकों में 'वाला', 'है', 'दित्ते' 'मिट्ठे' और 'वो' शब्द को रखकर तुकांत-साम्य भी प्रकट किया है। इस रचना के आरम्भ में प्रोफ़ेसर साहब ने 'झिलमिले छंद' (मिश्रित छंद) शब्द का प्रयोग भी किया है। एक नमूना पेश है—

इह कुल जगत् नूं सुजै[42] दे सुख दा दाता

---

42. सुन्दर विजय (चालीस मुक्तों का प्रसंग)।

इह ग़रीबां दा यार अमीरां दी पनाह ।[43]
इह मोइआं नूं जिवालण वाला ।[44]
इह हिस्सिआं नूं[45] जगाण वाला ।
इह कंगालां दी झोली इकबाल दे सतारे अमलकणे पाण वाला ।[46]
इह कवी, इह शबद दाता, इह इनसानीयत दा करतार
(Creator of Humanity) ।[47]

प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने अपनी रचनाओं में अलंकारों को भर्ती करने की चेष्टा नहीं की। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, यमक और श्लेष के सुन्दर उदाहरण इनके तीनों काव्य ग्रन्थों में ही नहीं, वरन् हिन्दी निबन्धों में भी मिल जाते हैं। मानवीकरण अलंकार तो इनके पंजाबी काव्य-ग्रन्थों एवं अंग्रेजी कविताओं के अतिरिक्त हिन्दी निबन्धों में भी कहीं-कहीं मिल जाता है। इन्होंने तो 'हवा' का भी मानवीकरण (Personification) कर दिया है;सौन्दर्य तो न जाने कितनी जगह मानवीय रूप धारण करके उपस्थित हुआ है। किन्तु लेखक ने अलंकार-चर्चा के लिए उतने अधिक पन्ने नहीं रंगे, जितने रस और भाषा के स्वरूप के परिज्ञान हेतु। एकाध स्थल पर अलंकार विशेष का वर्णन हुआ है, वह भी कविता के शीर्षक और दार्शनिक गहनता की ओर ध्यान दिलाने के प्रयोजन से, यथा—

'इह मैं इंझ ते उंझ, आपे विच्च कुझ नांह, मिट्टी, रब्ब विच,
करतार दी छुह नाल, मिहर दी बरकत पा, अनंत है,
जी है, जान है, सदैवता
इह मैं इउं इक 'कावय अलंकार' है ।[48]
(पारस मैं—खुल्हे घुण्ड)

लोक काव्य-तत्व : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के 'खुल्हे मैदान' में संगृहीत

---

43. शरणदाता।
44. मृतकों को सजीव बनाने वाले।
45. कायरों को; शरीर के अंग-प्रत्यंग (श्लेषार्थक शब्द)।
46. भाग्य के सितारे रूपी खेल-पदार्थ देने वाले।
47. Puran Singh Studies, Vol. I, Part I, Jan. 1979.
48. यह 'मैं' इस प्रकार एक 'काव्य अलंकार' है।

'पूरननाथ जोगी और 'इक जंगली फुल' लम्बी रचनाएं लोक कथाओं पर आधारित है। 'पूरननाथ (जोगी)' के क़िस्से तो पंजाब में बड़े लोक प्रसिद्ध हैं। कवि कादरयार का पंजाबी क़िस्सा अत्यन्त पुराना है। प्रोफ़ेसर साहब की यह रचना बहुत कुछ नाट्य-शैली का रूप धारण कर गई है। प्रोफ़ेसर तालिब के अनुसार कुएं तथा अन्य कुछेक प्रसंगों पर यूसुफ़-जुलेखाँ के क़िस्से का प्रभाव दिखाई पड़ता है।[49]

इँग्लैंड की हरित-आरण्यक गाथाओं (Greenwood Ballads) में रॉबिनहुड नामक लुटेरे (outlaw) का वर्णन आता है। वह राजकीय शासन की अवहेलना करके धनियों को लूट खसूट कर ग़रीबों और निःसहायों की उस धन से रक्षा करता है। किन्तु इन गाथाओं में इसका चरित्र नितांत उदात्त, शुद्ध तथा दिव्य दिखलाया जाता है।[50] 'खुल्हे मैदान' के 'इक जंगली फुल' के बलोच युवक के चरित्र में बलोचों की क्रूरता के संबंध में प्रचलित लोक कथाओं के स्थान पर पवित्र स्नेह भावना का प्रदर्शन हुआ है। फिर भी कविता के शीर्षक में विद्यमान 'जंगली' (Wood, Wild, आरण्यक) शब्द की सूझ लेखक को इन गाथाओं से अवश्यमेव मिली है।

रॉबिनहुड से मिलता जुलता उदात्त-चरित्र पंजाब के सांदल बार (ज़िला मिंटगुमरी) में प्रसिद्ध दुल्ला भट्टी में दिखाई पड़ता है।[51] पंजाब के 'लोहड़ी' पर्व के लोकगीतों के प्रमुख व्यक्ति दुल्ला भट्टी का हल्का-सा संकेत 'देश नूं असीस साडी गरीबां दी' (खुल्हे मैदान) में मिलता है। डॉ. उपाध्याय ने लोक कथाओं की जिन आठ विशिष्टताओं[52] का उल्लेख किया है, वे सभी 'पूरननाथ जोगी' और 'इक जंगली फुल' में उपलब्ध हो जाती हैं। इनकी कसौटी पर हम पूर्ण सिंह की दोनों रचनाओं को कस लेना चाहते हैं—

(1) प्रेम का अभिन्न पुट—'पूरननाथ जोगी' में सत्व, रज और

---

49. अमरजीत सिंघ ढिल्लों (संपा.) : प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ—इक शरधांजली, पृष्ट 154–56 (प्रो. गुरबचन सिंघ तालिब—समालोचना)।
50. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 122।
51. डॉ. नवरत्न कपूर : लोहड़ी: समन्वयात्मक लोकपर्व, पृष्ठ 12-14।
52. डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय : लोक साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 132।

तम तीनों प्रकार का प्रेम है ! 'इक जंगली फुल' में सात्विक प्रेम है।

(2) अश्लील शृंगार का अभाव—लूणां के चरित्र (पूरननाथ जोगी) में इसकी क्षीण-सी झलक मिलती है। किन्तु अंत में उसके पश्चाताप से यह मन की मैल उतर जाती है। 'इक जंगली फुल' में तो ऐन्द्रिकता कहीं छू ही नहीं पाई।

(3) मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य—पूर्ण सिंह जी की दोनों रचनाओं में प्रेम तथा सौंदर्य का सतत प्रवाह है, जिसमें मानव प्रकृति और भौतिक प्रकृति में विचित्र तादात्म्य दिखाई पड़ता है।

(4) मंगल-कामना की भावना—हम पहले ही स्पष्ट कर आए हैं कि 'पूरननाथ जोगी' का आरम्भ 'खुल्हे मैदान' का मंगलाचरण है और 'इक जंगली फुल' इस संग्रह का भरतवाक्य।

(5) संयोग में कथाओं का अंत—'पूरननाथ जोगी' में घर से निकला पूरन घर लौट आता है। 'इक जंगलो फुल' में नायिका को मुस्लिम जाति के बिलोच पुरुष में भाई का दर्शन होता है। दोनों रचनाएं सुखांत हैं।

(6) रहस्य, रोमांच और अलौकिकता की प्रधानता—'पूरननाथ जोगी' में यौगिक शब्दावलि का माँ के व्यक्तित्व में समावेश, ईश्वरनिष्ठा तथा 'इक जंगली फुल' में जीव एवं वृक्ष के प्रतीक द्वारा लोकोत्तर भावनाएं संनिहित हैं।

(7) उत्सुकता की भावना—जिज्ञासा तत्व दोनों रचनाओं में विद्यमान है।

(8) वर्णन की स्वाभाविकता—'पूरननाथ जोगी' में प्रेम के तीन रूपों को बड़े सरल ढग से समझाया गया है। 'इक जंगली फुल' के प्रतीक स्वत: सौन्दर्य एवं प्रेम का मानवीकृत रूप बनकर उभरते हैं।

प्रो. पूर्ण सिंह की 'इक जंगली फुल' कविता के छठे खण्ड की 30 तुकों में 'झोक'[53] काव्य-शैली के गुण दिखाई पड़ते हैं। इसका श्रीगणेश

53. (क) झोक (अथवा ढोक) किसी प्रेमी के रहने के ठिकाने का नाम प्रतीत

(Cotd. on p. 274)

भाई गुरदास की वारों सें हुआ प्रतीत होता है। भाई साहब की तत्सबधी वार उद्धरणीय है :

हउ तिस घोल घुमाइआ, गुरमति रिदे गरीबी आवै
हउ तिस घोल घुमाइआ, पर नारी दे नेड़ न जावै
× × ×

(Contd. from p. 273)

होता है, जिस प्रकार महिवाल की 'झुग्गी' (झोंपड़ी) अथवा 'झुग्गी' से ही 'झोक' का अभिप्राय हो। और इसे सम्बोधित करके 'झोक' की रचना की गई हो...इस चाल में प्राय: बिछोड़े अथवा वैराग्य के ही गीत गाए जाते हैं। इसमें लगभग 26 मात्राएं होती हैं और पन्द्रह, ग्यारह पर विश्राम; उदाहरणार्थ—

झोक मेरे रांझे वाली, कितनी कु दूर वे
अक्खीआँ तों नेड़े, कदमां तों दूर वे
× × ×
जो टुर चलिउं तेरे नाल मैं जावाँ वे
जिन्द निमाणी तैथों घोल घुमावाँ वे

—डॉ. अवतार सिंघ दलेर : पंजाबी लोक-गीत-बणतर ते विकास, पृष्ठ 56।

(ख) हमारे विचारानुसार भाई गुरदास की वारों में उल्लिखित 'घोल घुमाइआँ' शब्द को जोड़कर लोकगीतों के रचनाकारों ने भक्तिभाव को शृङ्गार का रंग दे दिया। प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह ने शृङ्गार से वितृष्णा के कारण ही इन शब्दों का प्रयोग स्वच्छ प्रेम एवं भक्ति-भाव के संयोगात्मक वर्णनों में किया है। 'पंजाब के लोकगीतों में विरह का स्वर' (रेडियोवार्ता, आकाशवाणी जालन्धर 3 नवम्बर, 1980) में हमने सिद्ध किया है कि 'झोक' शब्द 'नोंक-झोंक' पद समूह का अंतिम भाग है। बाल-विवाह के बाद वय: सन्धि अवस्था में नायिका की सखियाँ उसके पतिदेव द्वारा गौने की माँग में विलंब के कारण चिढ़ाती होंगी। उसी नोंक-झोंक में ये लड़कियाँ हल्के फुल्के लोकगीत बनाने लगी होंगी, जो सामान्यत: तुकबन्दी से बढ़कर गहन शृङ्गार प्रतिपन्न हो गए होंगे।

हउ तिस घोल घुमाइश्रा, थोड़ा सवै थोड़ा ही खावै
गुरमुख सोई सहिज समावै ।।4।।

× × ×

सेवक होइ संजीद न हस्सरग रोवरगा
दर दरवेस रसीद पिरम रस भोवरगा
चंद मुखारख ईद पुग खलोवरगा ।।18।। (भाई गुरदास)

तुलनार्थ 'इक जंगली फुल' को कुछेक पक्तियां दृष्टव्य हैं :—

जोबन जान ते रूह ते जिसम मेरा
कसम रब्ब दो अज़ल थीं होइश्रा तेरा ।
तेरे रूप नूं, रब्ब विश्राहीश्रा वे
धुर दरगाह थीं चल मैं श्राइश्रा वे ।
घोल घुमाइश्रा घोल घुमाइश्रा वे
तेरे सदके सदके साईश्रां वे

× × ×

जि़न्द जान घोलीं, मेरे नैरग घोलीं
घोल श्रापरगे विच समा मैंनूं
थक्की 'चाश्र' दी विच 'श्राराम' घोलीं
रख श्रापरगे विच थका मैंनूँ ।
घोल घुमाईश्रां घोल घुमाईश्रां वे
तेरे सदके सदके साईश्रां वे ।

× × ×

पर पता नहीं सी लगदा
कौरग किस दा मालक सी ?

× × ×

उस हुसन दे असमान विच वांग कूंजाँ उडारीश्राँ मारदीश्रां सन

× × ×

श्रापरगे पिश्रार फंधाँ नाल चाहरग ढक्करगा
उस श्रापरगे ईद दे चन्न नूं ।

प्रोफ़ेसर साहब ने बड़े सुन्दर ढंग से भाई गुरदास की वारों के रहस्यात्मक प्रेम को अपनी कविता के पात्रों में हू-ब-हू श्रारोपित कर

दिया है। साथ ही इन्होंने 'घोल घुमाइआ'[54] शब्द की व्याख्या करके अपनी नवीन उद्भावना का परिचय दिया है। 'Spirit of the Sikh' में भी प्रोफ़ेसर साहब ने भाई गुरदास की दसवीं वार उद्धृत करके भक्तों के युग युगांतर के सम्बन्धों (Kinship through ages) की व्याख्या की है। 'झोक' में वर्णित सांसारिक पति-पत्नी के सम्बन्धों के स्थान पर प्रोफ़ेसर साहब ने भाई और बहन का स्निग्ध स्नेह अपनी रचना में संचरित करके प्रेम की दिव्यता को गौरवान्वित किया है।

कवि ने 'खुल्हे घुण्ड' की 'सुफ़ना' और 'तड़फदी घुग्गी' में पंजाब के 'डाची' या 'करहला' लोकगीत[55] की अधिकांश सामग्री का व्यवहार बड़ी कुशलता से किया है। 'करहले' लोकगीत श्री गुरु रामदास की देन हैं, जिसमें आतमा और परमात्मा के प्रेमपूर्वक सम्बन्धों को दर्शाया गया है। ये 'करहले' ही कालांतर में ऊंटों के काफ़िले वालों के गीत बन गए, जिनका पजाब के सांदलबार, जांगली बार आदि क्षेत्रों (पाकिस्तान के मिंटगुमरी, शेखूपुरा, मुलतान जिले) में विशेष प्रचलन रहा। 'खुल्हे मैदान' की कविताओं में 'डाची (करहला)' के प्रभाव की हल्की सी झाँकी देखिए :

गानी इह तक्की आ, गल मेरे विच
इह गानी आ उस उच्ची सरकार दी,
उह साईं मैंनूं दिस्से नाँह[56]
मेरी गानी पई दस्सदी दिल नूं
मैं वी सुहागण नार नी !![57]

(तड़फदी घुग्गी—खुल्हे मैदान)

'डाची गीत' में इसी प्रसंग का उल्लेख ईदृश हुआ है :—

---

54. 'गुरपुरब गुलज़ारे सच्ची पातशाही' (खालसा समाचार, अमृतसर, 13 जनवरी, 1920) में भी इसी प्रवृत्ति को अपनाया गया है।

55. पंजाबी दुनीआ, (पटियाला); अप्रैल 1980 (डॉ. नवरतन कपूर : करहले अधिआतमक यातरा दा रूपक विधान), पृष्ठ 68–75।

56. दिखाई नहीं पड़ता।

57. मेरे गले की मनकों की माला मेरे दिल को बता रही है कि मैं भी सधवा हूँ।

'डाची तेरी दे गल गानिश्राँ
मैं तां पीर मनावरण जानिश्रां।''[58]

'कर्हे (करहे, करहले)' लोकगीत में यही भाव इस प्रकार निबद्ध हुए हैं—

कर्हे वी नाहीं, चांदी दियां उल्लियां
× × ×
भारी गरदन, ऊठां दी जंदू लाहवियाँ तल्लिश्रां
लम्मियां गिच्चां करहिश्रां दियां ते कन्न सिपाहा ने खल्लियाँ
उन्हाँ नूं सोंहदे गरमक गानियां...[59]

प्रोफ़ेसर साहब ने 'सुफ़ना' (खुल्हे मैदान) में निद्रालीन 'सस्सी' को स्वप्न में पुन्नूं का दर्शन करवाया है; वहाँ पर 'डाचीश्रां' श्राकाश में उड़ती दिखाई गई हैं। यही काफ़िला लोक गीत का मूलभाव होता है, यथा :—

सुत्ती सस्सी नूं दिल श्रापरणा सक्खरणां जिहा दिस्सिश्रा
ते वेखदी की है ?
डाची उच्ची किसी दे कचावे
पा लै गई, कोई पुन्नूं नूं उड़ा।

(सुफ़ना—खुल्हे मैदान)

श्रागे चलकर तो कवि ने एक रचना में सूर्यास्त के समय बिलोच के घर लौटने की दृश्य-योजना के श्रवसर पर पंजाबी 'ऊंठ' (ऊंट) संज्ञा श्रौर हिन्दी 'उठना' क्रिया की विभिन्न छटाएं दिखाकर श्रपने भाषा ज्ञान का बहुत बढ़िया नमूना पेश किया है :

साहमरणे उस उचे नोले श्रसमान-छप्परण विच सी
सूरज डुब्ब रिहा
ते पैलीश्रां दे विच दी साहमरणे ऊंठ
'ते चढ़ी श्रा रही सी बिलोच दी

58. मैं तो पीरों की पूजा के लिए जा रही हूं।

59. पंजाब दे लोकगीत (नागरी श्रक्षरों में)—भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला, पृष्ठ 83।

नवीं जवानी चढ़ी देवी उह कंनिम्रा ।[60]

× × ×

ऊंठ सी सोच जिही विच
तुरिम्रा पिम्रा म्राउंदा[61]

× × ×

ते उह्दे **उठदे** जोबनां दे इरद गिरद[62]
कुड़ते दा लाल रंग सी पिम्रा कूकदा
उह देवी पैलीम्रां विच दी सी
पई **ऊंठ**' ते लगी लंघदी म्राउंदी

× × ×

ते मैं इक बेहोश जिही लटक विच
बिन सोचे बोल **उठिम्रा**[63]
पता दे बैठा बिन पते म्राप नूं, कुरलाँदे उन्हां गगनां नूं
डुब्ब गए प्रकाश दा
उन्हां जंगली वहिशी बिलोचां दे गरां...[64]

(पंजाब बार दी बिलोच दी धी—खुल्हे असमानी रंग)

सुरति ते हंकार [(Consciousness and Ego); खुल्हे घुण्ड] की कविता के ग्यारहवें खण्ड की तुकबन्दी इस प्रकार है :

म्रादमो नूं हत्थ ला पलासटीक (मोम) बणाइम्रा
सहीम्रां घाड़ सिमरण दे उनर दी,

---

60. वह कन्या ।
61. ऊंट भी चिंतित-सा चला म्रा रहा था ।
62. म्रौर उसके उठते यौवनों (उमड़ती जवानी) के इर्द गिर्द ।
63. म्रौर इस बेसुध-सी धुन में बिना सोचे-समझे बोल उठा ।
64. म्रनजाने में ही चीख पुकार करते उस म्राकाश को मैं डूबते प्रकाश का पता दे बैठा कि मैं (ने यह कविता-सृष्टि) जाँगली पाशिवक वृत्तियों वाले बिलोचों का ग्रामवासी हूं । (कवि ने जाँगली बार के बिलोचों को सिकन्दर के साथ म्राए यूनानी सिपाहियों की सन्तान मानकर इनकी वीरता की सराहना की है । यहाँ पर इन्हें जंगली नाम से सम्बोधित करने वालों पर व्यंग्य है ।)

फरमाउण इस 'धरमसाल' प्रिथवी ते रब्ब दे
चित्तर हो —सभ आदमी

× × ×

दसवें दवार, जगे अंदर रब्ब दे,
लाटां इउं जगाण रब्ब दीआं —सभ आदमी

× × ×

घड़नहार घड़े मिट्टी पलासटीक (मोमी) —सभ आदमी

× × ×

करतार दे हथौड़े दी अवाज़ आवे,
रोम रोम वसे पिआर... —सभ आदमी

प्रयोगवादी शैली के इस पद्यांश में पंजाब के लोहड़ी और स्यापा सम्बन्धी लोकगीतों का अनुकरण स्पष्ट रूपेण अवलोकित हो रहा है। कवि ने इन पंक्तियों में मनुष्य को भगवान् के हाथों गढ़ा हुआ मोम (प्लास्टिक) का खिलौना बताया है। नवजन्मा व्यक्ति बच्चा ही होता है। पंजाब में लोहड़ी पर्व (मकर संक्रांति से एक दिन पूव) पर लड़कियों के गीतों में नवजात शिशु का मंगलगान करके लोहड़ी का दान इस प्रकार मांगा जाता है :

समूह की नेता	**समूह की अन्य लड़कियों का सम्मिलित स्वर**
नी तिरचौलिए रोटी वेला होइआ[65]	नी तिरचौलिए[66]
रोटी कौन पकावे तिरचौलिए	नी तिरचौलिए
रोटी भावो पकावे नी तिरचौलिए	नी तिरचौलिए
भावो कुच्छड़ घोघा[67] नी तिरचौलिए	नी तिरचौलिए
× ×	×
नी ओह मेरा वीरा[68] तिरचौलिए	नी तिरचौलिए[69]

65. भोजन पकाने का समय हो गया है।
66. तिल-चावल मांगने वाली लड़कियां।
67. भाभी की गोद में (नवजन्मा) पुत्र है।
68. वह मेरा भाई है ।
69. श्रीमती सरोजबाला कपूर एवं डा. नवरत्न कपूर : लोक पर्वीय बाल-किशोर गीत, पृष्ठ 88 ।

लोहड़ी पूजन के समय अग्नि जलाकर पूजा की जाती है, क्योंकि यह पर्व 'सती (शिव की पहली पत्नी) दहन' का प्रतीक होता है। मनुष्य के दाह संस्कार के समय भी अग्नि-प्रदीप्त की जाती है। प्रभु के हाथ के (मोमी—प्लास्टिक) खिलौने मनुष्य की अन्तिम दशा भी यही है–प्राणांत; काल कवलित होना। मृतक से सम्बन्धित शोकगीत 'नाइन' (Barber's Wife) अथवा मरासिन गाती है। इन्हीं के गीत की टेक को 'स्यापा' (शोक सभा) में सम्मिलित होने वाली स्त्रियां प्रत्येक पंक्ति के बाद बोलती चलती हैं, यथा—

युवती का मृत्युगीत

नाइन या मरासिन	**अन्य स्त्रियां**
की होया की होया धीए ![71]	हाया धीए!
की होया है रानो धीए !	हाया धीए !
तैनूं मारू झोला[72] पिश्रा धीए	हाया धीए !
हाय विछोड़ा दीवा[73] धीए	हाया धीए !
हाय मत्थे संधूर धीए[74]	हाया धीए !

प्रो. पूर्ण सिंह ने 'कविता' नामक अपने पंजाबी निबन्ध में 'वैण' (स्यापा लोकगीत) को पंजाबी-साहित्य की एक विशेष निधि माना है। 'लोहड़ी' के लोकगीतों के मुख्य पात्र का वर्णन 'देश नूं असीस साडी गरीबां दी' (खुल्हे मैदान) और 'लोही' के माध्यम से लोहड़ी–पर्व का संकेत 'पुराणे पंजाब नूं अवाजाँ' (खुल्हे मैदान) शीर्षक कविताओं में हुआ है। पंजाब के अन्य लोकगीतों का उल्लेख भी यत्र-तत्र इस प्रकार हुआ है :—

(i) उह ढोलकी दे गीत जिहड़े रात दी रग रग छेड़दे
उह कुड़ीआं कंवारीआं दे मन दे चाअ दे टप्पे

---

70. श्रीमती सरोजबाला कपूर एवं डा. नवरत्न कपूर : पंजाबी लोक चिन्तन और पर्वोत्सव, पृष्ठ 40।
71. बिटिया।
72. मौत की झपट।
73. बिछुड़ने वाली।
74. माथे सिन्दूर (सौभाग्यवती) थी।

निक्के निक्के कोइलां दीआं भाँत भाँत बोलीआं
उह घोड़ीआं, उह सुहाग
उह लोहीआं दी लक्कड़ां दी मंग बूहे
(पुराणे पंजाब नूँ अवाजाँ—खुल्हे मैदान)

(ii) तेरे अंबाँ ते पींघा उल्लरदीआं
× × ×
किरकिलीआं पाण रल मिल के, खेडण छुपण लुकीआं
× × ×
त्रिंझणां विच मुड़ गाण कुड़ीआं
(पंजाब नूं कूकाँ मैं—खुल्हे मैदान)

चर्खा तो स्वाधीनता आन्दोलन में स्वदेशी का प्रतीक बन गया था। 'कुड़ीआँ दा सी त्रिंझण दा त्रिंझण' (खुल्हे मैदान) कविता में चर्खा कातती स्त्रियों का उल्लेख करने के अतिरिक्त कवि ने तो चर्खे की बहनें (Sisters of the Spinning Wheel) शीर्षक से पूरा ग्रन्थ ही रच डाला था। 'The Spirit of Oriental Poetry' के पांचवें अध्याय में एक 'बारहमासा' संकलित है। इसमें परम्परागत बारहमासों की तरह विरह वर्णन नहीं है। प्रस्तुत रचना के अन्तर्गत श्री गुरु नानक देव के 'बारहमाह तुखारी राग' तथा श्री गुरु अर्जुन देव के 'बारहमाह माझ राग' की परम्परा को निभाने की चेष्टा बहुत कम दिखाई पड़ती है। इसमें पंजाबी के अन्य बारहमासों के समान प्रत्येक मास में आने वाले त्योहारों तथा प्रकृति की सुषुमा पर अधिक बल दिया गया है।

'सोहणी-महिवाल', 'सस्सी पुन्नू' और 'हीर रांझा' के प्रसिद्ध पंजाबी किस्सों को आलोकित करने वाली दसों कविताएं मिलती हैं। भारत में मान्यता प्राप्त मुसलमान सूफ़ी संत भी लेखक की दृष्टि से नहीं बच पाए। शम्स तबरेज़ एक प्रसिद्ध सूफ़ी फ़क़ीर हुआ है,जो मौलाना रूमी का गुरु था। यद्यपि इसका सम्बन्ध क्यूनिया अथवा इकोनियम (फ़ारस) (Qunia or Iconium—Asia Minor) से था, फिर भी इसकी एक मज़ार मुलतान में भी बताई जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि शम्स तबरेज़ के बलिदान की गाथा[75] इतनी लोकप्रिय हुई कि मुसलमान फ़क़ीर इसे

75. (क) इसे ज़िक्रे करामात (करामातों का वर्णन) शम्स तबरेज़ साहब कहा जाता है।
(ख) R. C. Temple : *The Legends of the Punjab*, p. 89.

काव्यबद्ध करके स्थान-स्थान पर गाने लगे। कालांतर में इसी फ़क़ीर की मौत के बाद आने वाली पीढ़ियों ने इस लोकगीत के गायक का सम्बन्ध मुलतान के इस पीर-फ़क़ीर के साथ जोड़ दिया। स्वामी रामतीर्थ और प्रो. पूर्ण सिंह ने अपनी कई रचनाओं में शम्स तबरेज़ का वर्णन किया है, यथा—

(क) शम्स तबरेज़ को भी ऐसा ही काफ़िर समझकर बादशाह ने हुक्म दिया कि इसकी खाल उतार दो। शम्स ने खाल उतारी और बादशाह को, दरवाज़े पर आए हुए कुत्ते की तरह भिखारी समझकर, वह खाल खाने के लिए दी। देकर वह अपनी यह ग़ज़ल बराबर गाता रहा—'भीख मांगने वाला तेरे दरवाज़े पर आया है; ऐ शाहे दिल! कुछ इसको दे दे।' खाल उतार कर फेंक दी! वाह रे सत्पुरुष!

(सच्ची वीरता)

(ख) When Shams Tabrej prayed for the resurrection of a dead prince of Persia, and thrice failed to bring to life the dead man, his cheeks glowed, his eyes flashed, and his forehead sparkled as it had never shone before, and he said with authority, "Arise my son Not in the name of Allah, but in my name, I bid thee rise." It was not Shams Tabrez who spoke, it was God himself.

(*The Spirit of Oriental Poetry*)

प्रोफ़ेसर साहब ने हिन्दी निबन्धों के रचना-काल से ही पंजाब के लोक जीवन और कृषि के महत्व को शिरसा स्वीकार किया था। 'खुल्हे मैदान' 'खुल्हे घुण्ड' और 'खुल्हे असमानी रंग' में किसान के जीवन की कर्मठता का ही अधिकतर चित्रण हुआ है। 'फ़लसफ़ा ते आरट (उनर)' (खुल्हे घुण्ड) में इन्होंने खेती की सारी प्रक्रिया समझा दी है। किसान कई-कई महीने कड़कती गर्मी-सर्दी और धूप-बरसात की आपदाएं झेलता है। उसकी मेहनत के मीठे फल को हड़पने के लिए उमड़ा हुआ टिड्डी दल मानो जमींदारों-साहूकारों का शोषक-वर्ग है। 'भोले भाव मिले रघुराई' में निष्ठावान किसान की पकी खेती की रक्षा के लिए ईश्वर चिड़ियों को भेजकर अपने कृपा-कटाक्ष की व्याप्ति का शंखनाद करता है।

उपसंहार : प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह बचपन से ही भ्रमणशील रहे। इन्होंने जीवन भर घाट-घाट का पानी पिया। इस प्रकार आप मानव मूल्यों और मानवीय मनोविज्ञान को भली भांति समझ गए थे। हरेक प्रकार की परिस्थिति में पड़कर इन्होंने मनुष्य के स्वार्थ भरे हृदय को अत्यन्त निकट से देखा, परखा और पहचाना। जीवन के पहले तीन दशकों में ही इन्होंने विरक्त साधु तथा आसक्त गृहस्थ बनकर अपने लिए सही-सही मार्ग ढूँढ़ निकाला। उनकी स्वतः निश्चित जीवन-दिशा थी कि सदा फूंक फूंक कर क़दम धरो। पुराने सम्बन्धों को मत तोड़ो, नए सम्बन्धों को कम से कम जोड़ो। ईश्वर पर निष्ठा रखकर अपना कर्त्तव्य निभाते जाओ और प्रत्येक दीन-दुःखी को—भले ही उठाई गिर, चोर, उचक्का भी वेश बदलकर पारसा साधु के रूप में तुम्हारे द्वार पर आ जाए—कभी निराश न मोड़ो। इस स्वभाव को इन पंजाबी उक्तियों में चरितार्थ किया जा सकता है :

(i) किरत करो नाम जपो ते वण्ड छको

(ii) मंगन गिआ सो मर रिहा
उस तों पहलां ओह मरे
जिहड़ा हुंदिआँ देवे जवाब।

पहला त्रिगुणात्मक वाक्य अन्तिम की व्याख्या मात्र है। इन्होंने नेक कमाई की, भगवान् का नाम जपा और बाँटकर खाने में पूर्ण निष्ठा रखी—क्योंकि ये जानते थे कि जो भी हाथ फैलाता है वह आत्म सम्मान खोकर आता है। किन्तु यदि दाता अपने सामर्थ्यानुसार भिक्षार्थी की मांगपूर्ति नहीं कर पाता तो उसकी नैतिक मौत मांगने वाले से पहले हो जाती है। इसी कारण इन्होंने अनेक मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक कष्ट झेलकर एक ओर अपने परिवार का पालन-पोषण किया तो दूसरी ओर सम्पर्क में आने वाले क्राँतिकारी लाला हरदयाल, डॉ. खुदादाद एवं अन्य अनेक परखे हुए विश्वसनीय मित्रों को वित्तीय सहायता भी पहुँचाई। नौकरी के नाम पर लाहौर, देहरादून, पटियाला, ग्वालियर, सुरैया आदि स्थानों की भटकन इन्हीं मित्रों के सम्पर्क का फल था। फिर भी आपने इनके साथ जीवन-पर्यन्त सम्बन्ध निर्वाह किया। जान पर आफ़त मोल लेकर इन मित्रों के परिवारों की खोज-खबर भी रखी और विदेश में

छपने वाले 'ग़दर' अख़बार को बौद्धिक—सम्भवतः आर्थिक—योगदान भी दिया।

पूर्ण सिंह विरचित साहित्य के पाठकों को स्थान-स्थान पर धर्म, राजनीति और सामाजिक व्यवस्था के प्रति कटाक्षों की भरमार मिलेगी। यहां तक कि इस कटाक्ष-व्यंग्य प्रणाली से प्रोफ़ेसर साहब ने स्वामी राम तीर्थ,श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि महानुभावों के प्रति श्रद्धा रखने वालों के हृदय को अवश्य छलनी किया है। किन्तु इससे यह बात अवश्य निश्चित हो जाती है कि आप अपनी समकालीन किसी भी राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक लहर के भावुकतापूर्ण अन्धानुकरण से प्रायः दूर ही रहे। इसीलिए यथावसर आपने अपने समसामयिक अकाली आंदोलन,रामकृष्ण मिशन पर ही नहीं प्रत्युत् हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख और ईसाइयों पर भी ढेरों फब्तियाँ कस दीं। आपकी इस कार्यविधि से यही प्रकट होता है कि आपने देशकालानुकूल आत्म-चिंतन करके नीर-क्षीर-विवेक का परिचय ही दिया।

जापान को छोड़कर आपने जर्मनी, सोवियत रूस,अमेरिका,फ्रांस और इंग्लैण्ड से उद्भूत विभिन्न विदेशी राजनैतिक, बौद्धिक एवं प्रशासनिक व्यवस्थाओं पर मीठी चुटकी ली : सार-वस्तु-ग्रहण और निस्सार पदार्थ के परित्याग के द्वारा ही आपने मानव-संस्कृति की एकता का उद्घोष किया। आपने भावुकता में बहकर न तो भारत को जगद्गुरु ही कहा, और न ही पराधीनता के दुखड़े रोकर दैन्य भाव ही दिखाया। 'श्रम गौरव' को इन्होंने सर्वसिद्धियों की जननी और 'गृहस्थी' को साधना मार्ग बनाकर सच्चे साधक की भांति अपने पथ का परिचालन किया।

प्रोफ़ेसर साहब का जन्म किसान-कुल में हुआ था और अंतिम दिन भी संयोगवश कृषि कार्य में ही बीते। इस प्रकार आपके जीवन में बद्धमूल आस्था 'उत्तम खेती, मद्धम व्यापार और निषिद्ध चाकरी' को जीवन गाथा की कड़ियों से जोड़ते समय कहीं पर भी नफ़ी, जमा, गुणा और भाग की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः आपका जीवन एक खुला चिट्ठा है, जिसे पढ़ने के लिए आंख, सुनने के लिए कान और स्पर्श करने के लिए हाथ नहीं चाहिएं। इसके लिए चाहिए एक स्वच्छ तथा निष्कपट हृदय।

आपने विशाल कर्मयज्ञ की पूर्ति हेतु ऐसे हविष्य-संकलप की

कामना की है, जिसका भण्डार भरने के लिए एकमात्र साहित्यकार ही नहीं, चित्रकार, मूर्तिकार, स्थापत्यकला निपुण भी संगठित रूप में योगदान करें। समाज में विद्यमान छोटे बड़े के भेद को मिटाने का एक ही नुस्खा आपने सुझाया है कि कला के क्षेत्र में उच्च और निकृष्ट कोटियों की बन्दर बांट को रोक कर अध्यापक, भाषणकर्ता (राजनीतिज्ञ एवं साधु दोनों ही), कृषक, बढ़ई, कुम्भकार तथा लघु कुटीर उद्योगों में लगे—'हाथ की मेहनत' करने वाले सभी को सहकर्मी के धरातल पर ला कर खड़ा कर दिया जाए। प्रत्येक व्यक्ति का मूल्यांकन कर्मठता की ज्योति में किया जाए। कर्मठ व्यक्ति की साधना का फल सदैव मोठा होता है, जिसमें उसकी एकाग्रता, मनोयोग और तल्लीनता की सामूहिकी पर अवस्थित तादत्म्यता 'अध्यात्म रस' को संचरित करती है। फलत: आपने जीवन के प्रत्येक कार्य को 'उत्पादक रसिक किरत' (Productive juicy Creation) 'करतारी रसिक किरत' (Creation with God's sweet grace) की संज्ञाओं से विभूषित किया है।

यह सत्य है कि ऐसे साहित्य और ऐसी कलाकृतियों का निर्माण दूर की कौड़ी लाने वाली भटकन-सा प्रतीत होता है। फिर भी इसके मूल में एक सच्चे सिक्ख को 'नाम जपो, किरत करो' से भी पहले, 'भारणा मन्नो' (ईश्वरेच्छा बलीयसी) का सिद्धांत निहित है। ऐसे प्रयोजन को दृष्टि में रखकर क्षुद्र मानव को दैनंदिनी क्षुधा पिपासा-तृप्ति के क्षणिक आवेगों को क्षीण-सी शांति प्रदान करने वाले साहित्य की क्षणभंगुरता स्वतः सिद्ध है। फलत: ऐसे साहित्य का सृजन किया जाए जो एकमात्र युगवर्तिनी चिंताधारा को ही न ढोता चले, प्रत्युत् आध्यात्मिक सत्य को उद्भासित करके शाश्वत की अमिट छाप भी छोड़ जाए। यही कारण है कि प्रोफ़ेसर पूर्ण सिंह के हृदय-मंथन से उपलब्ध प्रणयन-शक्ति का नवनीत आज भी बासी नहीं लगता—उनके साहित्य ने छः दशकों के बाद भी अपनी प्रासंगिकता को अभी तक नहीं खोया है। यह अत्यन्त अभिनंदनीय है।

संदर्भिका

अंग्रेजी

A. C. Majumdar	Indian National Evolution.
Basant Kumari Singh	Reminiscences of Puran Singh.
Dharmvira (Ed.)	Letters of Lala Hardyal.
Edward Thompson	Ravindra Nath Tagore : Poet and Dramatist.
Fauja Singh (Dr.)	(a) Eminent Freedom Fighters of Punjab.
	(b) Who's Who : Punjab Freedom Fighters.
Ganda Singh (Dr.)	Ahmad Shah Durrani—Father of Modern Afghanistan.
Gurcharan Singh (Ed.)	Patiala and its Historical Surroundings.
H.A. Rose	A Glossary of the Tribes and Castes of the Punjab and North-West Frontier Province.
Jagdish Saran Sharma (Dr.)	The National Biographical Dictionary of India.
James Douie (Sir)	The Panjab, North-West Frontier Province and Kashmir.
Jarmany Dass	Maharaja.
Khushwant Singh	A History of the Sikhs, Vol. II.
Lepel H. Griffin	The Rajas of the Punjab.
Monier Williams	A Sanskrit-English Dictionary.
Punjabi Uni., Patiala	(a) Proceedings of Panjab History Conference, Sixth Session.
	(b) Puran Singh Studies Journal.

Puran Singh (Prof.)
(a) An Afternoon with the Self.
(b) At His Feet.
(c) Bhagirath.
(d) Guru Gobind Singh : Reflections and Offerings.
(e) Life and Teachings of Guru Tegh Bahadur.
(f) Nargas
(g) On Paths of Life.
(h) Prakashina—A Buddhist Princess.
(i) Seven Baskets of Prose Poems.
(j) Spirit of the Sikh.
(k) The Book of Ten Masters.
(l) The Bride of the Sky.
(m) The Jap Ji.
(n) The Sisters of the Spinning Wheel.
(o) The Son of God the Man
(p) The Spirit Born People.
(q) The Spirit of Oriental Poetry.
(r) The Story of Swami Rama :The Poet Monk of the Punjab.
(s) The Temple Tulips.
(t) The Unstrung Beads

R.C. Temple (Captain) — The Legends of the Punjab.
S. Halim — New Persian English Dictionary.
S. P. Sen (Ed.) — Dictionary of National Biography.
Stella Kramrish — Indian Art—Its Creative Power
Vidya Dhar Mahajan (Dr.) — Leaders of the National Movement.
W. G. Moore — A Dictionary of Geography.

पंजाबी

अमरजीत सिंह ढिल्लों (संपा.) — प्रोफ़ैसर पूरन सिंघ : इक शरधांजली।

अवतार सिह दलेर	पंजाबी लोकगीत : बणतर ते विकास।
ईशर सिंघ अटारी	प्रो. पूरन सिंघ : जीवन अते रचनावां।
कान्ह सिंघ (भाई)	महान कोश (गुरू शबद रतनाकर)।
क्रिपाल सिंघ कसेल	(अ) पूरन सिंघ।
	(आ) लोढे वेले दा आतम चिंतन।
जगजीत सिंघ (डॉ.)	चार प्रमुख वारतककार।
जोगिन्दर सिंघ (डॉ.)	आधुनिक पंजाबी साहित्त दी रूपरेखा।
देविन्दर सिंघ विदिआरथी	कंनिआदान ते होर लेख।
पूरन सिंघ (प्रो.)	अबचली जोत।
	कलाधारी ते कलाधारी पूजा।
	खुल्हे मैदान।
	घाह दीआं पत्तीआँ।
	चुप प्रीत।
	पूरन सिंघ स्टडीज रसाले की रचनाएं।
	प्रीत।
	बलदे दीवे।
	बिपता दी घड़ी।
	मोइआं दी जाग।
भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला	(अ) पंजाबी दुनीआ (मासिका पत्रिका)।
	(आ) पंजाबी पत्तर कला।
	(इ) पूरन सिंघ जनम (शताबदी) साहित्त गोशटी दे खोज पत्तर।
	(ई) पोठोहारी शबद कोश।
	(उ) भाई वीर सिंघ रचनावली ('कविता' खंड)।
महिन्दर सिंघ रंधावा (डॉ.) (संपा.)	(अ) पूरन सिंघ : जीवनी ते कविता।
	(आ) पूरन सिंघ दी वारतक।
मोहन सिंघ दीवाना (डॉ.)	धुप्प छांह।
साहिब सिंघ (भाई)	गुरु ग्रंथ साहिब।
सूबा सिंघ	पंजाबी पत्तरकारी दा इतिहास।

संस्कृत एवं हिन्दी

अमर सिंघ — अमरकोश।

आदित्यनाथ झा अभिनन्दन ग्रन्थ समिति, दिल्ली। — संस्कृति।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। — प्रज्ञा (अर्द्ध वार्षिकी पत्रिका)।

कृष्णदेव उपाध्याय (डॉ.) — लोक साहित्य की भूमिका।

गंगा शंकर मिश्र — भारत में ब्रिटिश साम्राज्य।

गीता प्रेस, गोरखपुर — (अ) कल्याण (विष्णु अंक)। (आ) तुलसीदास कृत 'रामचरित मानस' (इ) श्रीमद्भगवद्गीता।

गुरमुख निहाल सिंह — भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास।

धर्मवीर — लाला हरदयाल।

धीरेन्द्र वर्मा [डॉ. (संपा.)] — हिन्दी साहित्य कोश।

नगेन्द्र [डॉ. (संपा.)] — हिन्दी साहित्य का इतिहास।

नवरत्न कपूर (डॉ.) — (अ) लोहड़ी : समन्वयात्मक लोकपर्व। (आ) हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की मूलभूत प्रवृत्तियां और प्रेरक शक्तियां।

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी — नागरी प्रचारिणी पत्रिका।

पट्टाभि सीतारमैया — कांग्रेस का इतिहास।

परमानन्द — परमानन्द सागर।

पवन कुमारी गुप्त (डॉ.) — पातंजल योगसूत्र—एक समालोचनात्मक अध्ययन।

प्रभात शास्त्री (संपा.) — सरदार पूर्ण सिंह अध्यापक के निबंध।

बलदेव उपाध्याय — भारतीय दर्शन।

भर्तृहरि — भर्तृहरि शतक।

भानुदेव — उज्ज्वलनीलमणि।

भाषा विभाग, पंजाब, पटियाला — (अ) पंजाब दे लोकगीत। (आ) पंजाब सौरभ (मासिक पत्रिका)।

भास — उत्तर राम चरित।

भोजदेव	भोजदेव वृत्ति।
रामचन्द्र वर्मा	प्रामाणिक हिन्दी कोश।
रामचन्द्र शुक्ल	हिन्दी साहित्य का इतिहास।
लोक संपर्क विभाग, पंजाब, चण्डीगढ़।	'जागृति' (हिंदी मासिक पत्रिका)।
वाचस्पति मिश्र	तत्व वैशारदी।
वामन शिवराम आप्टे	संस्कृत हिन्दी कोश।
विज्ञान भिक्षु	योगवार्तिक।
सत्यानन्द स्वामी	एकादशोपनिषद्।
सदाशिवेन्द्र सरस्वती	योग सुधाकर।
सरदार कवि (टीका.)	केशव कृत 'कविप्रिया' की टीका।
सरोजबाला कपूर एवं नवरत्न कपूर (डॉ.)	(अ) लोक-पर्वीय बाल-किशोर गीत। (आ) पंजाबी लोक-चिन्तन और पर्वोत्सव।
सूरदास	साहित्य लहरी।
हरिवंश लाल शर्मा (डॉ.)	सूर और उनका साहित्य।
हरिहरानन्द आरण्यक	भास्वती।